प्रकाशन क्रमांक : SKNAU/2025/81

एग्री एक्सपो 2025

"पगड़ी रो मान, खेतां रो अभिमान
सक्षम किसान, समृद्ध राजस्थान"

10-11 मार्च, 2025

कृषि स्मारिका 2025

नाबार्ड

प्रसार शिक्षा निदेशालय, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर
एवं
कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन अभिकरण (आत्मा), कृषि विभाग, राजस्थान सरकार

प्रकाशित	:	मार्च, 2025
प्रेरणा	:	प्रो. बलराज सिंह, कुलपति श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर
मार्गदर्शक	:	प्रो. शीशराम ढ़ाका, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर
संपादकीय मण्डल		
प्रधान संपादक	:	डॉ. बसन्त कुमार भींचर
संपादक	:	डॉ. शीला खर्कवाल डॉ. कैलाश चन्द्र डॉ. हिना सहीवाला डॉ. विनोद भटेश्वर
प्रकाशक	:	प्रसार शिक्षा निदेशालय श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर-जयपुर (राज.) - 303329 ई मेल - Director.ext@sknau.ac.in वेबसाइट - www.sknau.ac.in
मुद्रक	:	AMS FORMS, JAIPUR # 9829017779

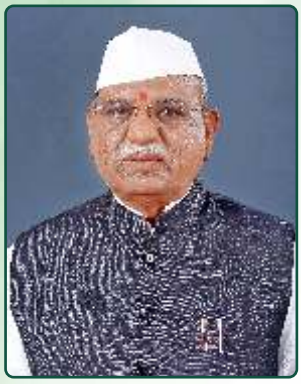

श्री हरिभाऊ बागडे

सत्यमेव जयते

राज्यपाल
राजस्थान सरकार

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय द्वारा 'कृषि स्मारिका-2025' का प्रकाशन किया जा रहा है।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। कृषि एवं पशुपालन का राष्ट्र की समृद्धि में भी महती योगदान है। यह सुखद है कि जलवायु परिवर्तन और नवीन वैश्विक संदर्भों में भारतीय कृषि के आधुनिकीकरण के लिए विश्वविद्यालय स्तर पर निरंतर प्रयास हो रहे हैं। मैं प्राकृतिक खेती के साथ डेयरी और सहकारिता क्षेत्र को बढ़ावा देने के कार्य का आरंभ से पक्षधर हूं। चाहता हूं प्रसार शिक्षा के अंतर्गत किसानों के उत्पादों के विपणन के लिए भी महती कार्य हो।

प्रकाश्य स्मारिका पाठकोपयोगी होगी, ऐसा विश्वास है।

मेरी हार्दिक शुभकामनाएं है।

(हरिभाऊ बागडे)

श्री भजन लाल शर्मा

सत्यमेव जयते

मुख्यमंत्री
राजस्थान सरकार

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, राजस्थान के प्रगतिशील कृषि परिदृश्य को समर्पित एग्री एक्सपो 2025 ''पगड़ी रो मान, खेतां रो अभिमान-सक्षम किसान, समृद्ध राजस्थान''का आयोजन कर रहा है। इस अवसर पर कृषि स्मारिका 2025 का प्रकाशन भी किया जा रहा है।

''पगड़ी रो मान, खेतां रो अभिमान-सक्षम किसान, समृद्ध राजस्थान''की थीम हमारे किसान भाइयों और बहनों की कठिन मेहनत, समर्पण और गौरव को प्रदर्शित करती है। यह राज्य सरकार के अन्नदाता के प्रति सम्मान और उनके समग्र कल्याण के प्रति गहरी प्रतिबद्धता को भी उजागर करती है।

राजस्थान के किसान हमारे प्रदेश की प्रगति और समृद्धि के आधार हैं। केंद्र और राज्य सरकार किसानों के कल्याण एवं उनके समग्र विकास के लिए पूरी तरह से प्रतिबद्ध होकर कृषि क्षेत्र को उन्नत, समृग और आत्मनिर्भर बनाने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं। इन प्रयासों से किसान भाई-बहन अब कृषि कार्य के साथ कृषि से जुड़ी नवीनतम तकनीकी और नवाचारों में भी अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं।

मुझे विश्वास है कि इस एग्री एक्सपो के माध्यम से हमारे किसान भाई-बहन आधुनिक कृषि तकनीक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सरकार की किसान हितैषी योजनाओं के बारे में समग्र जानकारी प्राप्त करेंगे, जिससे वे अपनी खेती को और अधिक लाभकारी बना सकेंगे। कृषि में नवाचारों और प्रौद्योगिकी के साथ देश और प्रदेश सरकार की योजनाओं के माध्यम से वे अपनी पूरी क्षमता का उपयोग कर पाएंगे और कृषि क्षेत्र में समृद्धि और प्रगति की नई संभावनाएं खुलेंगी।

मैं एग्री एक्सपो 2025 के आयोजन और कृषि स्मारिका 2025 के प्रकाशन की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

(भजन लाल शर्मा)

Dr. Prem Chand Bairwa
Deputy Chief Minister
Government of Rajasthan

सत्यमेव जयते

Technical Education, Higher Education
Ayurveda, Yoga & Naturopathy, Unani
Siddha & Homeopathy (Ayush)
Transport & Road Safety Department

डॉ. प्रेम चन्द बैरवा

संदेश

कृषि में नवाचार और प्रगति के लिए कृषि साहित्य, वैज्ञानिक संगोष्ठियाँ और प्रसार गतिविधियाँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर के प्रसार शिक्षा निदेशालय द्वारा 10-11 मार्च, 2025 को आयोजित, एग्री एक्सपो 2025 ''पगड़ी रो मान, खेतां रो अभिमान-सक्षम किसान, समृद्ध राजस्थान'' कार्यक्रम किसानों के कठिन प्रयासों, संघर्षों और सफलता को सम्मानित करने का एक महत्वपूर्ण मंच प्रदान करेगा।

इस कृषि स्मारिका के संकलन से कृषि क्षेत्र में तकनीकी सुधारों, नवाचारों, जल प्रबंधन, उन्नत बीज और कृषि यांत्रिकीकरण से संबंधित नवीनतम जानकारी राज्य के किसानों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण और लाभकारी साबित होगी।

कृषि हमारी असली धरोहर है, और इसे संरक्षित और समृद्ध बनाने के लिए हमें लगातार प्रयास करते रहना होगा।आशा है कि यह स्मारिका किसानों एवं वैज्ञानिकों के लिए मार्गदर्शन का मूल्यवान स्रोत सिद्ध होगी।

(प्रेम चन्द बैरवा)

Office: 4125, Main Building, Government Secretariat, Jaipur-302005
Resident: 384, Civil Lines, Jaipur-302006
Ph. No. 0141-2227852, Email: dcm.drpcbairwa@rajasthan.gov.in

Dr. Prem Chand Bairwa
Deputy Chief Minister
Government of Rajasthan

सत्यमेव जयते

Technical Education, Higher Education
Ayurveda, Yoga & Naturopathy, Unani
Siddha & Homeopathy (Ayush)
Transport & Road Safety Department

डॉ. प्रेम चन्द बैरवा

संदेश

कृषि में नवाचार और प्रगति के लिए कृषि साहित्य, वैज्ञानिक संगोष्ठियाँ और प्रसार गतिविधियाँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर के प्रसार शिक्षा निदेशालय द्वारा 10-11 मार्च, 2025 को आयोजित, एग्री एक्सपो 2025 ''पगड़ी रो मान, खेतां रो अभिमान-सक्षम किसान, समृद्ध राजस्थान'' कार्यक्रम किसानों के कठिन प्रयासों, संघर्षों और सफलता को सम्मानित करने का एक महत्वपूर्ण मंच प्रदान करेगा।

इस कृषि स्मारिका के संकलन से कृषि क्षेत्र में तकनीकी सुधारों, नवाचारों, जल प्रबंधन, उन्नत बीज और कृषि यांत्रिकीकरण से संबंधित नवीनतम जानकारी राज्य के किसानों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण और लाभकारी साबित होगी।

कृषि हमारी असली धरोहर है, और इसे संरक्षित और समृद्ध बनाने के लिए हमें लगातार प्रयास करते रहना होगा।आशा है कि यह स्मारिका किसानों एवं वैज्ञानिकों के लिए मार्गदर्शन का मूल्यवान स्रोत सिद्ध होगी।

(प्रेम चन्द बैरवा)

Office: 4125, Main Building, Government Secretariat, Jaipur-302005
Resident: 384, Civil Lines, Jaipur-302006
Ph. No. 0141-2227852, Email: dcm.drpcbairwa@rajasthan.gov.in

डॉ. किरोड़ी लाल मीणा

सत्यमेव जयते

डॉ. किरोड़ी लाल मीणा
कृषि एवं उद्यानिकी विभाग
राजस्थान सरकार

संदेश

कृषि के विकास के लिए शिक्षा, अनुसंधान और प्रसार के प्रयासों को प्रोत्साहित करने में कृषि साहित्य और वैज्ञानिक मंथन का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर के प्रसार शिक्षा निदेशालय द्वारा 10-11 मार्च 2025 को आयोजित एग्री एक्सपो - 2025 ''पगड़ी रो मान, खेतां रो अभिमान-सक्षम किसान, समृद्ध राजस्थान'' के इस ऐतिहासिक अवसर पर कृषि तकनीकी ज्ञान से समृद्ध और अनुसंधान आधारित ''कृषि स्मारिका - 2025'' का प्रकाशन किया जा रहा है। यह स्मारिका कृषि क्षेत्र में किए गए नवीनतम शोध, तकनीकी सुधार और कृषि प्रक्रियाओं को किसानों तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम बनेगी।

मुझे पूरा विश्वास है कि यह स्मारिका किसानों और उद्यमियों के लिए अत्यंत उपयोगी और लाभकारी साबित होगी। साथ ही यह स्मारिका छात्रों और वैज्ञानिकों के लिए अनुसंधान एवं विकास के नए रास्तों को खोलने का काम करेगी।

मैं प्रसार शिक्षा निदेशालय, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर द्वारा इस दिशा में किए गए प्रयासों की सराहना करता हूँ और इस महत्वपूर्ण आयोजन के सफल संचालन के लिए शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

(किरोड़ी लाल मीणा)

कर्नल राज्यवर्धन राठौड़
ए वी एस एम
पद्मश्री, खेल रत्न, अर्जुन अवार्ड

सत्यमेव जयते

मंत्री, राजस्थान सरकार
उद्योग एवं वाणिज्य विभाग
सूचना प्रौद्योगिकी और संचार विभाग
युवा मामले और खेल विभाग
कौशल, नियोजन एवं उद्यमिता विभाग
सैनिक कल्याण विभाग
सांसद (2014-2023)
पूर्व केन्द्रीय मंत्री

कर्नल राज्यवर्धन राठौड़

संदेश

यह अत्यन्त गर्व और प्रसन्नता का विषय है कि श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर के प्रसार शिक्षा निदेशालय द्वारा दिनांक 10-11 मार्च, 2025 को ''पगड़ी रो मान, खेतां रो अभिमान-सक्षम किसान, समृद्ध राजस्थान'' नामक एग्री एक्सपो - 2025 का आयोजन किया जा रहा है। इस गौरवमयी अवसर पर माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व और आदरणीय मुख्यमंत्री श्री भजनलाल शर्मा जी के मार्गदर्शन में ''कृषि स्मारिका-2025'' का प्रकाशन भी किया जा रहा है जो कृषि क्षेत्र के विकास, शोध और नवाचार के महत्व को उजागर करने का एक अद्वितीय प्रयास है।

कृषि क्षेत्र में उच्च शिक्षा, अनुसंधान और प्रसार को बढ़ावा देने में इस तरह के प्रकाशन एक अभिन्न भूमिका निभाते हैं। कृषि की वैज्ञानिक और तकनीकी विधियों से संबन्धित आलेखों के माध्यम से यह स्मारिका किसानों और कृषि समुदाय के अन्य सदस्यों को अत्याधुनिक जानकारी और नवाचारों से अवगत कराएगी।

मैं इस प्रदर्शनी के सफल आयोजन के लिए हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ। आशा है कि यह आयोजन कृषि क्षेत्र में नवाचार, तकनीकी सुधार और समृद्धि की दिशा में नए आयाम स्थापित करेगा जिससे इस मंच के माध्यम से कृषि क्षेत्र को नई ऊँचाइयां मिलेगी और प्रदेश के किसान समृद्ध व सशक्त होंगे।

(कर्नल राज्यवर्धन राठौड़)

19, राम विहार, सिरसी रोड, पांच्यावाला जयपुर, राजस्थान - 302034
0141-2990000 I Mob: 9460996611 I colrvs@gmail.com I www.rajyavardhanrathore.in
Col Rajyavardhan Rathore I Rathore I Ra_THORe I Ra-rathore

सी. आर. चौधरी, भा.प्र.से. (से.नि.)
अध्यक्ष
राजस्थान किसान आयोग
राजस्थान सरकार
पूर्व केन्द्रीय राज्य मंत्री
वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय
और
उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण
भारत सरकार

सत्यमेव जयते

C.R. CHAUDHARY, IAS (Retd.)
Chairman
Rajasthan Kisan Ayog
Govt. of Rajasthan
Former Union Minister of State
Commerce & Industry
And
Consumer Affairs, Food & Public distribution
Government of India

श्री सी. आर. चौधरी
अध्यक्ष, किसान आयोग

श्री सी. आर. चौधरी

संदेश

''पगड़ी रो मान, खेतां रो अभिमान - सक्षम किसान, समृद्ध राजस्थान ''के संकल्प को साकार करने की दिशा में किसान मेला - एग्री एक्सपो 2025 एक महत्वपूर्ण पहल है। यह आयोजन किसानों को नई तकनीकों, वैज्ञानिक नवाचारों और सतत कृषि पद्धतियों से जोड़ने का अवसर प्रदान करता है।

कृषि को लाभकारी एवं टिकाऊ बनाने के लिए हमें जलवायु अनुकूल तकनीकों, जैविक व प्राकृतिक खेती, तथा मूल्य संवर्धन को बढ़ावा देना होगा। मुझे विश्वास है कि यह मेला और इसकी स्मारिका किसानों के लिए ज्ञानवर्धक एवं मार्गदर्शक सिद्ध होगी।

मैं इस आयोजन से जुड़े सभी वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं एवं किसानों को बधाई देता हूँ और उनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित

(सी. आर. चौधरी)

कार्यालय -: पंत कृषि भवन, जनपथ, सी-स्कीम, जयपुर-302005
फोन : 0141-2227266, 0141-2227271 I E-mail : kisanayog@rajasthan.gov.in

प्रो. बलराज सिंह, कुलपति

प्रोफेसर बलराज सिंह
कुलपति
कुलपति सचिवालय
श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय
जोबनेर (जयपुर), राजस्थान

संदेश

''पगड़ी रो मान, खेतां रो अभिमान – सक्षम किसान, समृद्ध राजस्थान'' इस प्रेरक संदेश के साथ, मैं किसान मेला – एग्री एक्सपो 2025 में आप सभी का हार्दिक स्वागत करता हूँ। यह आयोजन हमारी समृद्ध कृषि परंपरा, नवीनतम तकनीकों और किसानों की उन्नति के प्रति हमारी प्रतिबद्धता का प्रतीक है। इस आयोजन को और अधिक सार्थक बनाने के लिए विश्वविद्यालय द्वारा ''कृषि स्मारिका – 2025'' का प्रकाशन किया जा रहा है।

यह स्मारिका आधुनिक कृषि तकनीकों, नवीनतम शोधों और व्यावहारिक समाधानों का एक संकलन है, जो किसानों की चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होगी। हमें विश्वास है कि यह स्मारिका न केवल ज्ञानवर्धक होगी, बल्कि किसानों को नवाचार और उन्नति की दिशा में प्रेरित भी करेगी।

राजस्थान की भूमि परिश्रम, नवाचार और कृषि कौशल का पर्याय रही है। यह मेला किसानों, वैज्ञानिकों, कृषि विशेषज्ञों और उद्यमियों के लिए एक महत्वपूर्ण मंच प्रदान करेगा, जहाँ वे अपने अनुभव साझा कर सकते हैं, नवीनतम तकनीकों को अपना सकते हैं और कृषि के भविष्य को एक नई दिशा दे सकते हैं।

मैं सभी लेखकों, शोधकर्ताओं और संपादकीय टीम को इस सराहनीय प्रयास के लिए शुभकामनाएँ देता हूँ और आशा करता हूँ कि यह संकलन कृषि क्षेत्र में नई संभावनाओं को उजागर करेगा। साथ ही, मैं इस आयोजन से जुड़े सभी वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं और किसानों को उनकी सहभागिता के लिए बधाई देता हूँ तथा उनके सफल और उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित

(बलराज सिंह)

प्रो. शीशराम ढ़ाका

प्रो. शीशराम ढाका
निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय
जोबनेर (जयपुर), राजस्थान

संदेश

राजस्थान की कृषि हमारी समृद्धि और संस्कृति का आधार है। ''पगड़ी रो मान, खेतां रो अभिमान - सक्षम किसान, समृद्ध राजस्थान'' केवल एक नारा नहीं, बल्कि हमारे किसानों की मेहनत, संकल्प और स्वाभिमान का प्रतीक है। किसान मेला - एग्री एक्सपो 2025 का उद्देश्य न केवल आधुनिक कृषि तकनीकों को बढ़ावा देना है, बल्कि किसानों को उनकी समस्याओं के व्यावहारिक और वैज्ञानिक समाधान प्रदान करना भी है।

प्रसार शिक्षा निदेशालय द्वारा आयोजित इस मेले में, हमने किसानों की समस्याओं के समाधान के लिए वास्तविक और प्रायोगिक तकनीकी सुझावों का संकलन किया है। यह स्मारिका उस दिशा में एक कदम और बढ़ाने का प्रयास है, जिसमें कृषि उत्पादन, भूमि स्वास्थ्य, जल संरक्षण, फसल सुरक्षा और अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर शोध आधारित समाधान प्रस्तुत किए गए हैं।

हमारा प्रयास है कि इस आयोजन के माध्यम से किसानों को एक मंच पर लाकर, उनके सामने उन्नत कृषि पद्धतियों, संसाधनों के बेहतर उपयोग और बाजार से जुड़ी जानकारी उपलब्ध कराई जाए। हमें विश्वास है कि इस मेला और स्मारिका से प्राप्त ज्ञान से हमारे किसान भाई-बहन अपने कार्य में नई ऊर्जा और दिशा पाएंगे।

मैं इस अवसर पर सभी वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं और विशेषज्ञों का आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस आयोजन में अपनी महत्वपूर्ण भागीदारी दी। साथ ही, मैं सभी किसानों से अनुरोध करता हूँ कि वे इस मेले का अधिकतम लाभ उठाएं और अपने कृषि कार्यों में इन जानकारियों का उपयोग करें।

(शीशराम ढाका)

National Bank for Agriculture and Rural Development

Our Mission: Promotion of sustainable and equitable agriculture and rural prosperity through effective credit support, related services, institution development and other innovative initiatives.

- Research and Development on matters of importance pertaining to agriculture, agricultural operations and rural development including the provision of training and research facilities.
- Consultancy services related to Agriculture & Rural Development through subsidiary (NABCONS).

Our Functions:

- Provide Credit/Refinance for production credit and investment credit to eligible banks and financing institutions.
- Development functions undertaken through Farm Sector Promotion Fund (FSPF), Financial Inclusion Fund (FIF), Watershed Development Fund (WDF), Tribal Development Fund (TDF), Rural Infrastructure Development Fund (RIDF), etc.
- Supervisory functions in respect of Cooperative Banks and Regional Rural Banks.

Head Office Plot C-24, 'G' Block Bandra Kurla Complex, Bandra (East) Mumbai - 400 051

विवरणिका

क्र.सं.	विषय सूची एवं विवरण	पेज सं.
	कृषि वानिकी, फल–फूल, सब्जी और बीजीय मसालों का उन्नत उत्पादन	
1	पार्थेनोकार्पी खीरा : महत्त्व एवं उत्पादन तकनीक धनेश्वरी आर्य, बलराज सिंह, ओम प्रकाश गढ़वाल, सतपाल सिंह एवं राजू यादव	1–4
2	कलिंगड़ा : पश्चिमी राजस्थान में शुष्क व अर्धशुष्क जलवायुवीय परिस्थितियों में लाभदायक राजीव कुमार नारोलिया एवं पुरूषोत्तम शर्मा	4–5
3	शुष्क और अर्द्ध-शुष्क पारिस्थितिकी के लिए अरडु आधारित कृषिवानिकी प्रणाली : एक अतिरिक्त आय का स्रोत धर्मेन्द्र त्रिपाठी, सी. एल. खटीक, के. सी. वर्मा, हरफूल सिंह एवं उम्मेद सिंह	5–6
4	कद्दुवर्गीय सब्जियों का उत्पादन अदिति गुप्ता, बलबीर सिंह एवं शौकत अली	7–8
5	स्वास्थ्यवर्धक ब्रोक्कोली की खेती दिलीप सिंह, राहुल यादव एवं सचिन कुशवाह	9–10
6	प्राकृतिक खेती के लिए सूक्ष्मजीवों का बागवानी फसलों में योगदान राजीव कुमार नारोलिया, आशा कुमारी, ममता यादव एवं विकास शर्मा	11–12
7	सब्जियों की फसलों में पादप वृद्धि नियामकों की भूमिका पुष्पा उज्जैनिया, उत्तम शिवरान एवं कमलेश कुमार यादव	12–13
8	फार्म पोंड और बेर बागवानी : जल संकट से समृद्धि की ओर श्री सिंह राज	14–15
9	शुष्क क्षेत्र में तरबूज की उन्नत खेती कमलेश कुमार यादव, पुष्पा उज्जैनिया, एम आर चौधरी, उत्तम शिवरान एवं ओम प्रकाश जीतरवाल	16–17
10	जलवायु-स्मार्ट कृषि: सतत कृषि की और कदम अंजु कँवर खंगारोत, कविता भादू, श्वेता गुप्ता, भीम पारीक, प्रतिभा सिंह, रामनिवास चौधरी, सीमा शर्मा एवं आर समौरिया	18–18
11	अर्द्ध-शुष्कीय क्षेत्र में अनार की खेती: किसानों के लिए आय का स्रोत मुकेश चंद भठेश्वर एव ओम प्रकाश जितरवाल	18–21
12	टमाटर नर्सरी विकास : राजस्थान में टमाटर की अच्छी फसल के लिए मार्गदर्शिका आकांक्षा, एस. के. गोयल एवं शैलेश गोदिका	21–22
13	हल्दी की अंतरफसल खेती एवं प्रसंस्करण से अधिक मुनाफा दिलीप सिंह एवं सुभाष चंद यादव	23–25
14	अमीनो अम्ल युक्त नैनो फर्टिलाइजर का लाभ : बढेगी उत्पादकता महेंद्र मीना, मधु बाई मीना एवं सागर सैनी	25–26
15	फलों और सब्जियों का प्रसंस्करण: कृषि आय में वृद्धि की नई राह पूजा शर्मा, एम. आर. चौधरी एवं मुकेश चंद भठेश्वर	26–28
16	पॉलीहाउस में खीरे की खेती महेन्द्र कुमार गोरा एवं विरेन्द्र सिंह	29–31
17	जयपुर क्षेत्र में फूलों की खेती : राजस्थान के कृषि विकास में महत्वपूर्ण योगदान पवन कुमार	31–33
18	बीजीय मसालों की जैविक खेती रोशन चौधरी, एस. के. शर्मा, बी. एल. दुदवाल एवं एन. के. गुप्ता	33–36
	फसल उत्पादन प्रबंधन और जैविक खेती के नवीन दृष्टिकोण	
19	वर्मीकम्पोस्टिंग : जैविक खेती का सफल मार्ग छत्रपाल बागड़ा, देवराज गुर्जर एवं उदय लाल गुर्जर	37–37
20	टिकाऊ खेती में हरी खाद की उपयोगिता सुमित्रा देवी बम्बोरिया, अमरचंद शिवरान एवं शान्ति देवी बम्बोरिया	38–39
21	प्राकृतिक खेती के लिए जीवामृत है एक वरदान जितेंद्र सिंह बम्बोरिया, सुमित्रा देवी बम्बोरिया एवं शान्ति देवी बम्बोरिया	40–41

22	राजस्थान में सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) की खेती की वतर्मान स्थिति और संभावनाएं रमाकांत शर्मा, दिनेश अरोड़ा एवं डी. एस. भाटी	42-43
23	एकीकृत कृषि प्रणाली का खाद्य, पोषण, रोजगार मे महत्व राजवीर सिंह एवं दुष्यन्त वर्मा	44-45
24	मेंथा की अन्तर फसल खेती गेहूँ के साथ इन्दुबाला सेठी, उम्मेद सिंह एवं नरेन्द्र कुमार पारीक	46-48
25	मौसम परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव राम स्वरुप चौधरी, रोशन चौधरी, बोलता राम मीणा एवं दीपिका यादव	49-50
26	वर्षा आधारित क्षेत्रों में जल बचत तकनीकें और किसानों की आय को बढ़ाने हेतु सुझाव कविता भादू	50-51
27	प्राकृतिक खेती में खरपतवार प्रबंधन सुमित्रा देवी बम्बोरिया, अमरचंद शिवरान एवं मीना चौधरी	51-53
28	राजस्थान के बदलते जलवायु परिदृश्य में सरसों की उन्नत खेती गणेश कुमार कोली, सुरेश कुमार एवं गोपाल लाल चौधरी	53-55
29	रबी फसलों में सिंचाई प्रबन्ध - क्रान्तिक अवस्थाएँ सुपर्ण सिंह शेखावत, रामप्रताप यादव, रेनू कुमारी गुप्ता एवं सरदार मल यादव	55-56
30	बीज उपचार: किसानों के लिए खुशहाली का आधार सरोज ओला एवं आनंद कुमार मीना	56-57
31	कृषि में जैंव कारकों का महत्व : एक विस्तृत विश्लेषण मनीषा खीचड़, एस. के. गोयल, निकिता कुमारी एवं कोमल चौधरी	58-59
32	कृषि में जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका एम. के. मीणा, कैलाश चन्द्र एवं आशीष शीरा	60-60
	पौध संरक्षण और कीट एवं नेमाटोड प्रबंधन के प्रभावी उपाय	
33	जीरे में रोग और कीट प्रबंधन उत्तम शिवरान एवं एम आर चौधरी	61-62
34	राजस्थान में दलहनी फसलें, उनके रोग और प्रबंधन मनीषा कुमावत, जितेंद्र सिंह एवं एस. के. गोयल	62-63
35	एपिडेमियोलॉजी और रोग प्रबंधन में इसका महत्त्व हरीश कुमावत एवं शैलेश गोदीका	63-64
36	कीटनाशकों की खरीद और उनके सुरक्षित इस्तेमाल के लिए किसान उपयोगी कुछ सुझाव देवा राम बाज्या, सुमन चौधरी एवं शंकर लाल शर्मा	65-65
37	सरसों में कीट एवं रोग प्रबंधन ममता देवी चौधरी, सुमन चौधरी एवं पिंकी शर्मा	66-67
38	स्मार्ट एपिकल्चर की आवश्यकताएं निकिता पाटीदार, देवा राम बाज्या, शंकर लाल शर्मा एवं अख्तर हुसैन	67-68
39	मधुमक्खी पालन एक सफल व्यवसाय सुनीता कमुारी, अक्षय चित्तौडा, बनवारी लाल जाट एवं विवेक राठौर	69-70
40	जैविक एजेंट और जैविक फफूंदनाशकों के उपयोग द्वारा कृषि रक्षा प्रबंधन रोहिताश कुमार, आर. पी. घासोलिया एवं अर्चना कुमावत	70-71
41	अमरुद का अदृश्य शत्रु जड़-गाँठ सूत्रकृमि, मेलोइडोगायनी स्पीशीज हेमराज गुर्जर, अकलेश गोचर एवं बी. एस. चंद्रावत	71-73
42	नींबू वर्गीय फलों में जड़-गाँठ सूत्रकृमि की समस्या एवं वैज्ञानिक समाधान अकलेश गोचर एवं हेमराज गुर्जर	73-74
43	ट्राइकोग्रामा कार्ड का कार्य एवं महत्व मनीषा शर्मा, सुमन चौधरी, पिंकी शर्मा एवं शंकर लाल शर्मा	75-75

	आनुवांशिकी, पादप प्रजनन, मृदा प्रबंधन एवं जैव प्रोद्योगिकी	
45	कुपोषण उन्मूलन में जैव-संवर्धित बाजरा किस्मों की भूमिका एस. के. जैन, एस. के. शर्मा, वी. शर्मा एवं बी. एल. ढाका	75-76
46	राजस्थान में दलहनी परिवार की महत्वपूर्ण व्यावसायिक फसल - ग्वार वेद प्रकाश यादव, दिनेश कुमार यादव एवं बी.एल. कुम्हार	77-79
47	कृषि में जड़ों का स्वास्थ्य और वृद्धि : उत्पादकता बढ़ाने के लिए स्मार्ट खेती समाधान बसंत कुमार दादरवाल, मनोज कुमार शर्मा एवं डी. एल. बागड़ी	79-80
48	कृषि महाविद्यालय जोबनेर द्वारा विकसित की गई बीजीय मसालो की उन्नत किस्मे शैलेश मार्कर, अमर चन्द शिवरान, दिनेश कुमार गोठवाल, गिरधारी लाल कुमावत, कैलाश चन्द्र एवं आशीष शीरा	80-82
49	आनुवांशिक रूपांतरित फसलें निकिता कुमारी, एस. के. गोयल, मनीषा खीचड एवं राजेश कुमार बोचल्या	83-84
50	स्मार्ट खेती के लिए पौधों की जीन संपादन तकनीक हिना सहीवाला एवं पारुल	84-85
51	मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन में ह्युमिक पदार्थों का महत्व राजहंस वर्मा, पार्वती दीवान, एस. एस. यादव एवं निरंजन बरोड़	85-87
52	कृषि में लाभकारी सूक्ष्म जीवों की क्षमता प्रणाली किरण दुधवाल, गजानंद जाट, अशोक चौधरी एवं बसंत कुमार दादरवाल	87-88
53	बायोचार : एक प्राकृतिक खाद रोशन चौधरी, बी. एल. दुदवाल, सन्तोष देवी सामोता एवं सुरेश दुदवाल	89-89
54	समस्याग्रस्त भूमि का सुधार और प्रबंधन किरण दुधवाल, गजानंद जाट एवं अशोक चौधरी	89-90
55	आखिर मृदा पीएच मान पौधों के लिए इतना महत्वपूर्ण क्यों है ? एस. एस. शर्मा, प्रेरणा डोगरा, के. के. शर्मा, बबीता मीना एवं अजय कुमार यादव	91-92
56	अतिरिक्त आमदनी के लिए ढींगरी मशरूम की खेती जे. के. बाना, एम. एल. मीना एवं आर. के. मीना	93-94
	डिजिटल और स्मार्ट कृषि : आर्थिक प्रबंधन, पशुपालन, तकनीकी नवाचार और नीतियाँ	
57	कार्बन क्रेडिट : किसानों के लिए आय का नया अवसर शीला खर्कवाल, बसंत कुमार भींचर एवं प्रियंका कँवर	95-95
58	ब्लॉकचेन और कृषि : स्मार्ट खेती की नई दिशा शिवराज कुमावत एवं शोभना बिश्नोई	96-97
59	कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) : डेयरी उद्योग में क्रांतिकारी नवाचार उर्मिला चौधरी	98-99
60	कृत्रिम बुद्धिमत्ता : दूध उद्योग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग भानुप्रिया चौधरी	99-100
61	भारतीय कृषि में ड्रोन और एआई तकनीकी का भविष्य उपेन्द्र सिंह एवं नवीन कुमार	101
62	स्वचालित पारिस्थितिकीय खेती की विभिन्न पद्धतियां पारुल, हिना सहीवाला एवं नरेंद्र	102-103
63	टिकाऊ खेती में रिमोट सेंसिंग : संभावनाएँ और भविष्य निधि कुंडू	103-104
64	कृषि अर्थव्यवस्था में स्मार्ट कृषि की भूमिका प्रेम सिंह शेखावत, धर्मेंद्र लाखराण एवं दीपिका वर्मा	104-105
65	पशु आहार में बाईपास वसा का महत्व भूपेंद्र कस्वां, अरुण प्रताप सिंह एवं उर्मिला चौधरी	106
66	छोटे जुगाली करने वाले पशुओं का आर्थिक महत्व प्रियंका कंवर एवं शीला खर्कवाल	107-108
67	पशुओं में मुख्य खाद्यजन्य विषाक्तता तथा बचाव के उपाय भूपेंद्र कस्वां	108-109

68	लम्पी स्किन डिजीज - वर्तमान संदर्भ में एक उभरती हुई बीमारी अरुण प्रताप सिंह, भूपेंद्र कस्वां एवं अरविन्द कुमावत	110
69	नमो ड्रोन दीदी : कृषि महिलाओं का सशक्तिकरण प्रिया वैष्णव, सोनू जैन एवं शिवराज कुमावत	111-112
70	किसानों के लिए फायदेमंद आधुनिक कृषि तकनीकें मृणाल पांडे एवं संदीप कुमार	113-114
71	प्रधानमंत्री कुसुम योजना: किसानों के लिए सौर ऊर्जा की ओर एक कदम सुन्दर, सुभिता कुमावत एवं प्रेम सिंह शेखावत	114-115
72	पीएम धन-धान्य कृषि योजना सोनू जैन, धर्मेन्द लाखराण एवं आकांक्षा पारीक	115-116
73	प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना सोनू जैन, आकांक्षा पारीक एवं एस. एस. शर्मा	116-117
74	मरुभूमि में विविध परिदृश्य: फतेहपुर-शेखावाटी और कृषि-पर्यटन संगीता झाझड़िया एवं सुभिता कुमावत	118-119
75	कृषि अनुसंधान और नवाचार को समर्थन देने में डिजिटल पुस्तकालयों की भूमिका राजेश ऐचरा एवं तगाराम चौधरी	119-120
76	वर्तमान परिपेक्ष्य में कृषि एवं किसानों का डिजिटल सशक्तीकरण चरत लाल बैरवा	121
77	भारत में कृषि शिक्षा: वर्तमान स्थिति और भविष्य की संभावनाएँ बी. एल. ढाका एवं शीशराम ढाका	122
78	खिलाड़ी की कार्यक्षमता को प्रभावित करने में पर्यावरण की भूमिका नरेंद्र	123

पार्थेनोकार्पी खीरा : महत्त्व एवं उत्पादन तकनीक

धनेश्वरी आर्य, बलराज सिंह, ओम प्रकाश गढ़वाल, सतपाल सिंह एवं राजू यादव
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

खीरा (कुकुमिस सैटाइवस एल.) आर्थिक महत्व के कारण कुकुरबिटेसी परिवार का सबसे महत्वपूर्ण सदस्य है। यह भारत के पहाड़ी और मैदानी क्षेत्रों में व्यापक रूप से उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण और लोकप्रिय सब्जी है। खीरा कम कैलोरी वाला आहार है, जो विटामिन और खनिजों का मुख्य स्रोत होने के साथ–साथ गुर्दे के संक्रमण, पीलिया, पेट की समस्याओं और अपच में सहायक होता है, इसे सलाद, अचार, रायता और पकी हुई सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है; इसका शीतल प्रभाव कब्ज को रोकता है और भूख बढ़ाने में मदद करता है, यह स्वादिष्ट, उच्च ऊर्जा युक्त और शीतलता प्रदान करने वाली सब्जी है; आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण खाद्य फसल होने के साथ इसके बीज पोषण मूल्य में दालों के बराबर होते हैं और आयुर्वेदिक दवाओं में भी उपयोग किया जाता हैं। भारत में उपभोक्ताओं की प्राथमिकता इसकी लंबी, बेलनाकार, मध्यम मोटाई वाली स्वदेशी किस्मों की ओर अधिक होती है, जो अधिक उत्पादन देने की क्षमता रखती हैं। पार्थेनोकार्पिक खीरे की खेती संरक्षित खेती के तहत की जाती है, क्योंकि यह स्वतः फलने वाली किस्म होती है और इसे परागणकर्ताओं की आवश्यकता नहीं होती। इसकी उच्च क्रॉस–परागण प्रवृत्ति के कारण, इसे संरक्षित वातावरण में उगाया जाता है, जिससे इसका उत्पादन अधिक और गुणवत्ता बेहतर होती है। उत्तर भारत की परिस्थितियों में संरक्षित खेती के तहत पार्थेनोकार्पिक खीरे की खेती किसानों के लिए आय का एक बेहतर विकल्प है।

पार्थेनोकार्पी खीरा का महत्त्व

पार्थेनोकार्पिक खीरा पारंपरिक खीरे की तुलना में कई लाभ प्रदान करता है। इसकी प्रमुख विशेषताओं में उच्च उत्पादन क्षमता, बेहतर गुणवत्ता और कम समय में पकने की क्षमता शामिल है, चूंकि इनमें केवल मादा फूल होते हैं, इसलिए फल बनने की प्रक्रिया अधिक प्रभावी होती है और उत्पादन भी अधिक प्राप्त होता है। यह विशेषता इसे उन किसानों के लिए अधिक लाभदायक बनाती है जो कम समय में अधिक उत्पादन प्राप्त करना चाहते हैं चूंकि यह जल्दी पक जाता है, इसलिए किसान इसे जल्दी बाजार में बेच सकते हैं और अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसके कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार है :

बिना परागण फलन – पारंपरिक खीरे की किस्मों के विपरीत, पार्थेनोकार्पिक खीरे को परागण की आवश्यकता नहीं होती। अतः इसे नियंत्रित वातावरण (ग्रीनहाउस, पॉलीहाउस) में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

1. **बीजरहित फल** – इसके बीज रहित फल अधिक कोमल और स्वादिष्ट होते हैं, जिससे उनकी बाजार में अधिक मांग होती है।
2. **उच्च उत्पादन क्षमता** – पार्थेनोकार्पिक खीरे अधिक उत्पादन देते हैं, क्योंकि पौधों की ऊर्जा बीज उत्पादन में खर्च नहीं होती, जिससे फल अधिक स्वस्थ और बड़े होते हैं।
3. **जलवायु अनुकूलता** – इन किस्मों को गर्मी और ठंड जैसे प्रतिकूल वातावरण में भी उगाया जा सकता है, जिससे किसानों को पूरे वर्ष खेती करने का अवसर मिलता है।
4. **रोग प्रतिरोधकता** – पारंपरिक खीरे की किस्मों में कई प्रकार के रोग, जैसे पाउडरी मिल्ड्यू, डाउनी मिल्ड्यू और वायरस जनित रोग होते हैं, जो उत्पादन को प्रभावित कर सकते हैं। पार्थेनोकार्पिक खीरे में अधिक रोग प्रतिरोधकता पाई जाती है।
5. **गुणवत्तापूर्ण उपज** – यह खीरा दिखने में सुंदर, समान आकार और एक समान गुणवत्ता का होता है, जो उपभोक्ताओं को अधिक पसंद आता है।

खीरे की संरक्षित वातावरण में फसल

संरक्षित खेती के लिए उपयुक्त खीरे की उन्नत किस्में : भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) तथा निजी क्षेत्र के अंतर्गत विकसित कई किस्में हैं, जो व्यावसायिक खेती के लिए उपयुक्त हैं। इन किस्मों को संरक्षित वातावरण के अंतर्गत उगाने से अधिक उपज, बेहतर गुणवत्ता और रोग प्रतिरोधक क्षमता प्राप्त होती है, जिससे किसानों को अधिक लाभ मिलता है। संरक्षित खेती (Polyhouse) में सफलतापूर्वक उगाई जाने वाली खीरे की कुछ महत्वपूर्ण पार्थेनोकार्पिक किस्में निम्नलिखित हैं–

सार्वजनिक क्षेत्र की किस्में	निजी क्षेत्र से विकसित किस्में
पंत पार्थेनोकार्पिक खीरा 2 - जी. बी. पंत विश्वविद्यालय कृषि एवं प्रौद्योगिकी, पंतनगर	हिल्टन – एचएम क्लॉज एक अंतर्राष्ट्रीय कंपनी
पंजाब खीरा 1 - पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना	कियान और इसाटिस – सिंजेन्टा
पूसा पार्थेनोकार्पिक खीरा 2- पूसा पार्थेनोकार्पिक खीरा 6 और पूसा पार्थेनोकार्पिक खीरा संकर-1- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली	मल्टीस्टार, डेल्टास्टार, सनस्टार और किंगस्टार – रिज़वान

पॉलीहाउस में पूसा पार्थेनोकार्पिक खीरा की खेती

जलवायु एवं भूमि चयन

खीरे की खेती के लिए मिट्टी की तैयारी बुवाई से 3-4 सप्ताह पहले करनी चाहिए, जिससे मिट्टी की कठोरता कम हो और जड़ों को गहराई तक बढ़ने में मदद मिले। खीरे की खेती के लिए गर्म और समशीतोष्ण जलवायु अनुकूल होती है। यह फसल अच्छे जल निकास वाली दोमट मिट्टी में सर्वश्रेष्ठ रूप से उगती है। मिट्टी का pH 6.5-7.5 के बीच उत्तम होता है। अत्यधिक क्षारीय या अम्लीय मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती है।

बीज दर एवं बुवाई का समय :

बुवाई का समय क्षेत्र की जलवायु और फसल की आवश्यकताओं के अनुसार तय किया जाता है। बुवाई का समय भौगोलिक क्षेत्रों के अनुसार भिन्न होता है। उत्तर भारत में गर्मी की फसल के लिए फरवरी–मार्च और बरसात की फसल के लिए जून–जुलाई में बुवाई की जाती है, जबकि पश्चिम भारत में सितंबर से फरवरी तक बुवाई की जा सकती है। दक्षिण और मध्य भारत में यह अक्टूबर–नवंबर में उगाई जाती है, तथा पहाड़ी क्षेत्रों में इसकी बुवाई अप्रैल–मई की जाती है। राजस्थान में गर्मी फसल के लिए जनवरी–फरवरी और बरसात फसल के लिए जून–जुलाई का समय उपयुक्त माना जाता है। संरक्षित वातावरण (पॉलीहाउस) में इसे पूरे वर्ष उगाया जा सकता है। खीरे की खेती के लिए 1.5-2 किग्रा/हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है।

बीज उपचार :

बीज को बीमारियों से बचाने के लिए इसे पहले कार्बेन्डाजिम/2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की मात्रा से उपचारित करना जरूरी है। इसके बाद, ट्राइकोडर्मा विरिडे/6-10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से उपचार किया जाता है। यह प्रक्रिया बीज जनित और मिट्टी जनित रोगों से बचाव करने में मदद करती है।

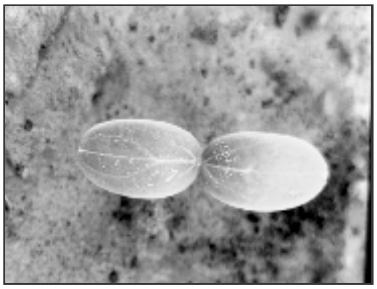

खीरे के बीज का अंकुरण

ड्रिप लाइन बिछाने की विधि और सिंचाई :

प्रत्येक पंक्ति में 30 सेमी अंतराल वाली इनलाइन ड्रिप लेटरल लगाई जाती है, जिसमें 2 लीटर प्रति घंटे (LPH) की जल निकासी क्षमता होती है। इसे बुवाई से पहले उठी हुई क्यारियों पर लगाया जाता है। पौधों की रोपाई से पहले, ड्रिप सिंचाई प्रणाली को चालू किया जाता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सभी एमिटर (Emitters) से पानी समान रूप से निकल रहा है। फसल की आवश्यकता और मौसम की स्थिति के अनुसार प्रतिदिन 2 से 3 लीटर पानी प्रति वर्ग मीटर ड्रिप सिंचाई के माध्यम से प्रदान किया जाता है।

खाद–उर्वरक प्रबंधन तकनीक :

खेत की तैयारी से पहले प्रति हेक्टेयर 15-20 टन की दर से अच्छी तरह से सड़ी हुई जैविक खाद डालें। अंतिम जुताई के समय निम्नलिखित उर्वरकों का प्रयोग करें। यूरिया 100 किलोग्राम, सिंगल सुपर फॉस्फेट 200 किलोग्राम, म्यूरिएट ऑफ पोटाश 80 किलोग्राम इसके अतिरिक्त, 8-10 पत्ती अवस्था में 50 किलोग्राम यूरिया को टॉप ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करें। यदि फसल की वृद्धि कमजोर हो तो 1% यूरिया घोल का छिड़काव करें।

फर्टिगेशन

ड्रिप फर्टिगेशन के माध्यम से पौधों को निम्नलिखित जल घुलनशील उर्वरकों का मिश्रण दिया जाता है। फर्टिगेशन सप्ताह में दो बार किया जाता है।

रोपाई के कुछ दिन बाद	N-P-K(19 - 19 - 19)	मात्रा (ग्राम/500 वर्गमीटर)
0 - 14 दिन बाद	19 - 19 - 19	500
14 - 35 दिन बाद	13 - 0 - 45 46 - 0 - 0	200 100
35 - दिन से फसल की अंतिम तुड़ाई तक	13 - 00 - 45 46 - 0 - 0	500 150

छंटाई और प्रशिक्षण

खीरे की बेल को प्रशिक्षित करते समय सिर्फ एक मुख्य तना रखें और बाकी सभी अतिरिक्त शाखाओं को हटा दें। इसके बाद तने को प्लास्टिक के तार की मदद से सहारा देकर ऊपर की ओर बढ़ने में सहायता करते हैं । इससे पौधा अधिक प्रकाश प्राप्त करेगा और बेहतर विकास होगा। यदि खीरे की बेल पर एक साथ बहुत अधिक फल लग जाते हैं, तो फलों की सघनता कम करना आवश्यक होता है ताकि विकृत या छोटे, कम गुणवत्ता वाले फल न बने। ऐसे फलों को जल्दी से निकाल देना चाहिए, विशेष रूप से जब वे गुच्छों में उगते हैं। कमजोर और गैर–उत्पादक शाखाओं को हटाना चाहिए ताकि खीरे की बेल की ऊर्जा स्वस्थ फलों के विकास में लगे।

पत्तियों की छंटाई

खीरे की बेल की पुरानी पत्तियाँ, जो नई वृद्धि के कारण छायांकित हो जाती हैं या मिट्टी की सतह को छूती हैं, उन्हें समय–समय पर हटाना आवश्यक होता है। इससे फंगल संक्रमण और कीटों के जमाव को रोका जा सकता है। प्रत्येक वृद्धि अवस्था में, मुख्य तने से लगभग 1-5 मीटर की ऊँचाई तक पत्तियाँ बनी रहनी चाहिए, जिससे खीरे की बेल की स्वस्थ वृद्धि सुनिश्चित की जा सके।

रोग और कीट प्रबंधन

खीरे की फसल में डाउनी मिल्ड्यू, पाउडरी मिल्ड्यू और एन्थ्रेक्नोज जैसी बीमारियाँ होती हैं, जबकि खीरा ग्रीन मॉटल मोज़ेक वायरस (Cucumber Green Mottle Mosaic Virus) प्रमुख रूप से प्रभावित करता है। साथ ही इसके प्रमुख कीटों में लाल कद्दू बीटल, लीफ माइनर, पत्तियाँ खाने वाली इल्ली (खीरा मॉथ), सोलनोप्सिस मिली बग (Phenacoccus solenopsis) और लाल मकड़ी किट (Red Spider Mite) शामिल हैं, जो फसल को नुकसान पहुंचाते हैं।

रोकथाम के उपाय

खीरे की फसल को बीमारियों से बचाने के लिए विभिन्न फफूंदनाशकों का उपयोग किया जाता है। नीचे दिए गए फफूंदनाशकों की सिफारिश की गई मात्रा और उनके प्रभावी नियंत्रण क्षेत्र बताए गए हैं।

फफूंदनाशक	मात्रा	प्रभावी नियंत्रण
डाइमेथोमॉर्फ	1.5 ग्राम/लीटर	डाउनी मिल्ड्यू, एन्थ्रेक्नोज, अल्टरनेरिया लीफ स्पॉट और ब्लाइट्स
कार्बेन्डाजिम 50% WP	2 ग्राम/लीटर	विल्ट, रूट रॉट और कॉलर रॉट
कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50% WP	2–2.5 ग्राम/लीटर	बैक्टीरियल लीफ स्पॉट, डैम्पिंग ऑफ, रूट रॉट और कॉलर रॉट
मैनकोज़ेब 75% WP	2 ग्राम/लीटर	अल्टरनेरिया लीफ स्पॉट, फाइटोफ्थोरा लीफ ब्लाइट और अन्य पत्तियों की बीमारियाँ

कीट नियंत्रण के उपाय

खीरे की फसल को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों के नियंत्रण के लिए विभिन्न कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। नीचे दिए गए कीटनाशकों की सिफारिश की गई मात्रा और उनके प्रभावी नियंत्रण क्षेत्र बताए गए हैं :

कीटनाशक	मात्रा	प्रभावी नियंत्रण
थायोमेथॉक्साम 25 WG	0.4 मिली/लीटर	थ्रिप्स, सफेद मक्खी, एफिड
इमिडाक्लोप्रिड 17.8 SL	0.2–0.3 मिली/लीटर	थ्रिप्स, सफेद मक्खी, एफिड
स्पिनोसैड 45 SL	0.25 मिली/लीटर	थ्रिप्स और इल्ली (कैटरपिलर)

तुड़ाई और उपज

फूल आने की शुरुआत रोपाई के लगभग 25-30 दिनों के बाद होती है। पहली तुड़ाई बुआई के 35-40 दिनों के बाद की जाती है। उचित प्रबंधन के तहत 300-400 टन प्रति हेक्टेयर (30-40 किग्रा/वर्गमीटर) तक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। संरक्षित खेती में पूरे वर्ष उत्पादन संभव होता है, जिससे औसतन 35 किग्रा/वर्गमीटर तक ताजा फलों की उपज प्राप्त की जा सकती है।

खीरे में मादा पुष्पन एवं फलन अवस्था

पार्थेनोकार्पिक खीरा आधुनिक बागवानी में एक महत्वपूर्ण फसल बन चुका है, जो किसानों को कम समय में अधिक उत्पादन और बेहतर मुनाफा देने में सहायक है। इसकी खेती संरक्षित वातावरण में अधिक सफल होती है, जहाँ यह उच्च गुणवत्ता वाले बीजरहित फल प्रदान करता है। उच्च बाजार मांग और उत्पादन में आसानी के कारण यह व्यावसायिक खेती के लिए एक आदर्श विकल्प साबित हो रहा है। कृषि वैज्ञानिकों और किसानों को पार्थेनोकार्पिक खीरे की खेती को बढ़ावा देना चाहिए ताकि कृषि आय में वृद्धि हो और आधुनिक तकनीकों का अधिकतम लाभ उठाया जा सके।

कलिंगड़ा : पश्चिमी राजस्थान में शुष्क व अर्धशुष्क जलवायुवीय परिस्थितियों में लाभदायक

राजीव कुमार नारोलिया[1] एवं पुरूषोत्तम शर्मा[2]

[1]सह आचार्य, [2]सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

कलिंगड़ा (सिट्रुलस लैनाटस (थुनब.) मात्सुम. और नकाई) जिसे आम तौर पर बीजीय मतीरा या जंगली तरबूज के नाम से जाना जाता है कुकुरबिटेसियस परिवार का सदस्य हैं। कलिंगड़ा और मतीरा, तरबूज के विभिन्न रूप हैं जो कम मीठे होते हैं और जिनके फल छोटे आकार के होते हैं। गुजरात और राजस्थान में उद्योगों द्वारा मगज नामक बीज कर्नेल के निष्कर्षण के लिए कलिंगडा/मतीरा के बीजों का आमतौर पर उपयोग किया जा रहा है। इसकी खेती मुख्य रूप से पश्चिमी राजस्थान के जिलों जैसे बाडमेर, जैसलमेर, बीकानेर, जालोर व जोधपुर तथा गुजरात के कुछ भागों में की जाती है। चूंकि कलिंगडा या बीजीय मतीरा कद्दू वर्ग की एक अत्यंत महत्वपूर्ण फसल है जो पश्चिमी राजस्थान में शुष्क व अर्धशुष्क जलवायुवीय परिस्थितियों की अल्प वर्षा एवं उच्च ताप जैसी विषम वातावरणीय दशाओं में सफलतापूर्वक उगाने के लिए उपयुक्त है इसलिए राजस्थान में कलिंगड़ा पर कृषि अनुसंधान केन्द्र, मण्डोर में अनुसंधान कार्य किये जा रहे है। इसके साथ ही, राजस्थान के श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर में आईसीएआर–राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, पूसा कैम्पस, नई दिल्ली के क्षमतावान फसलों पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान तंत्र द्वारा वर्ष 2022 में कलिंगड़ा पर अनुसन्धान कार्यो के लिए वोलुन्टरी केंद्र की स्थापना की गयी। इस फसल का उत्पादन खरीफ व जायद दोनों मौसम में किया जाता है। परन्तु खरीफ के मौसम में मुख्य रूप से किसान इसे ग्वार, बाजरा, मूंग व तिल के साथ मिश्रित या अंतर–फसल खेती के रूप में उगाते हैं ताकि विषम परिस्थितियों के फलस्वरूप प्रभावित मुख्य फसल के उत्पादन में हुई नुकसान की काफी हद तक भरपाई बीजीय मतीरे के उत्पादन से की जा सके। यह भारतीय थार रेगिस्तान में जंगल और पोषण सुरक्षा का एक स्रोत हो सकता है। कलिंगड़ा एक नकदी फसल है जो नवंबर–दिसंबर में लोकप्रिय है क्योंकि यह कम समय में अच्छा मुनाफा देती है।

कलिंगड़ा की विशेषताएँ

- कलिंगड़ा एक सूखा–प्रतिरोधी लता है।
- यह कम मीठा होता है और इसके फल छोटे होते है।
- इसके बीजों से शरीर में ठंडक महसूस होती हैं और इसे मूत्रवर्धक भी माना जाता है।
- बीजों में कैल्शियम, आयरन, मैंगनीज, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सोडियम, जिंक, कॉपर और मैग्नीशियम जैसे खनिज होते हैं।
- बीजों से निकलने वाला तेल हल्का होता है और इसमें फैटी एसिड होते है।

उपयोग

- कलिंगड़ा के बीज का उपयोग विभिन्न प्रकार के रसोई योग्य उत्पादों में किया जाता है।
- कलिंगड़ा के बीजों को भून कर नाश्ते के रूप में उपयोग लिया जाता है।
- इसके बीज से बाहरी आवरण हटाने के पश्चात् शेष बचा भाग मगत्सरी या मगज कहलाता है जिसका उपयोग मुख्य रूप से मिठाई निर्माण, उसकी साज–सजावट एवं औषधि व दवा निर्माण में किया जाता है।
- विभिन्न प्रकार की सब्जियां बनाने में भी इसकी गिरी का उपयोग ग्रेवी के रूप में किया जाता है।
- इस बहु–उपयोगी फसल में बीज निष्कासन के उपरांत शेष बचा भाग पशुओं के खिलाने के लिए भी उपयोग में लाया जाता है।
- बीजों का उपयोग तेल बनाने के लिए भी किया जाता है जो रेपसीड और सरसों के बराबर होता है।
- इस फसल का उत्पादन गर्मी के मौसम में सब्जी के रूप में भी किया जा सकता है।

इसलिए, इस फसल के उत्तर और उत्तर–पश्चिमी भारत के सूखाग्रस्त क्षेत्रों में विस्तार की जबरदस्त गुंजाइश है। हाल ही में हमारे देश के यशस्वी प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 109 किस्में देश को समर्पित की जिनमे एस. डी. कृषि विश्वविद्यालय सरदार कृषिनगर, गुजरात द्वारा विकसित की गयी किस्म गुजरात कलिंगडा–3 को भी शामिल किया गया। यह किस्म राजस्थान और गुजरात के वातावरण के लिए उपयोगी पाई गई है। इसके अलावा विगत कुछ वर्षों से कलिंगड़ा में किये जा रहे अनुसंधान कार्यों के परिणामस्वरूप तीन उन्नत किस्में सी. ए. जेड. जे. के. 13–2, जी. के. 1 एवं जी. के. 2 विकसित की गयी है ।

कलिंगड़ा की खेती

कलिंगड़ा की खेती के लिये उचित जलनिकास युक्त बलुई व दोमट मृदा सर्वथा उपयुक्त है। जल भराव वाले क्षेत्रों की मृदा कलिंगडा उत्पादन हेतु अच्छी नहीं मानी जाती है। मिश्रित फसल में छिटकवां विधि से बुवाई के लिये प्रति हेक्टेयर 2–3 किग्रा बीज की आवश्यकता होती है, जबकि कतार में बुवाई के लिये 0.2 से 1.0 किग्रा बीज पर्याप्त है। कलिंगड़ा में बुवाई के लिये 1. छिटकवां विधि में बारिश के मौसम के दौरान बीजों को खेत में छिटक कर ऊपर से जुताई की जाती है जिससे बीज मिट्टी में दब जाता है। 2. कतार में बुवाई के लिए कतार से कतार की दूरी 2–3 मीटर व पौधे से पौधे की दूरी 1 मीटर रखी जाती है। इस तरीके से बुवाई करने पर अपेक्षाकृत कम बीज की आवश्यकता होती है तथा निराई व गुडाई में भी आसानी होती है। 3. मिश्रित खेती में बाजरा या ग्वार के साथ कलिंगडा के बीजों को मिश्रित कर खेत में छिटक दिया जाता है। यह विधि मुख्य रूप से शुष्क व बहुत कम वर्षा वाले क्षेत्रों में अपनाई जाती है। यदि कलिंगड़ा की खेती मिश्रित फसल के रूप में की जा रही है तो इसमें कोई अतिरिक्त खाद की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन एकल फसल की स्थिति में प्रति हेक्टेयर 20 किग्रा नाइट्रोजन व 20 किग्रा फास्फोरस की आवश्यकता होती है। बुवाई के समय फास्फोरस की पूर्ण मात्रा तथा नत्रजन की केवल आधी मात्रा ही दें शेष आधा नत्रजन खड़ी फसल में बुवाई के 30 दिन पश्चात् देवें। खेत को खरपतवार से मुक्त रखने पर अधिक उपज प्राप्त होती है। कलिंगड़ा की खेती मुख्य रूप से वर्षा आधारित है इसलिए इसमें सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं है लेकिन यदि बारिश न हो और सिंचाई जल की उपलब्धता हो तो फूल व फल आने की अवस्था में दो सिंचाई दी जा सकती है।

कलिंगड़ा की फसल में रोग व कीट का प्रकोप अपेक्षाकृत कम रहता है फिर भी यदि रस चूसक कीटों का प्रकोप दिखाई दे तो सर्वांगी कीटनाशक प्रयोग में लाये जा सकते हैं जिससे यदि कोई विषाणु जनित रोग फैले तो उसको भी रोका जा सके। बुवाई के लगभग 70–90 दिन पश्चात् फल तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं। जब फल के ऊपर की धारियां पीली पड़ने लगे, ट्रेंडिल सूखने लगे और पत्तियां पीली पड़, सूख कर झड़ने लगे तो फल पक कर तैयार हो जाते हैं। तुड़ाई उपरांत फल को हाथ से तोड़कर या चाकू से काटकर बीज और गूदे को अलग किया जाता है। हालाँकि वर्तमान समय में फल से बीज निकालने की मशीन भी बाजार में उपलब्ध है जिसके उपयोग से बीज शीघ्र निकाला जा सकता है। बेहतर प्रबंधन गतिविधियां अपनाकर एकल फसल के रूप में कलिंगड़ा की खेती से प्रति हेक्टेयर 2.0–3.0 क्विंटल बीज उपज प्राप्त की जा सकती है जबकि मिश्रित खेती में मुख्य फसल की उपज के अतिरिक्त लगभग 50–60 किग्रा बीज उपज प्राप्त होती है।

शुष्क और अर्द्ध-शुष्क पारिस्थितिकी के लिए अरडु आधारित कृषिवानिकी प्रणाली : एक अतिरिक्त आय का स्त्रोत

धर्मेन्द्र त्रिपाठी, सी. एल. खटीक, के. सी. वर्मा, हरफूल सिंह एवं उम्मेद सिंह
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

कृषिवानिकी दृष्टिकोण

कृषिवानिकी भूमि उपयोग कि एक ऐसी वैकल्पिक प्रणाली है जिसके अंतर्गत एक ही भूखंड पर कृषि फसलों एवं बहु–उद्देशीय पेड़ों एवं झाड़ियों के उत्पादन के साथ ही साथ पशुपालन को भी लगातार या क्रमबद्ध तरीकों से पालन पोषण किया जाता है तथा भूमि की उपजाऊ क्षमता को बढ़ाया जाता है। जिससे मनुष्य की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति किया जा सके। इसके अंतर्गत कृषि फसलों और पेड़ों को विभिन्न तरीकों में लगाया जाता है। यह प्रणाली भूमि की क्षमता और उत्पादकता को बढ़ाने का एक ठोस तरीका है, जिसमें फसल, चारा, मिट्टी की उर्वरता, औषधीय और पर्यावरणीय मूल्यों और लकड़ी के उत्पादन में लाभ होता है। कृषिवानिकी दृष्टिकोण अर्थव्यवस्था का स्रोत है और प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग का माध्यम है। यह सामाजिक–आर्थिक स्थिति को सुधारने, वन क्षेत्र को बढ़ाने और क्षेत्रीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी मदद कर सकता है। वर्तमान में, भूमि उपयोग और CO_2 के कारण होने वाले वैश्विक तापमान से संबंधित समस्याओं का समाधान करने के लिए कृषिवानिकी प्रणालियों को बढ़ावा दिया जा रहा है। कृषि भूमि में पेड़ लगाना पर्यावरण में सुधार करता है, संसाधनों के उपयोग और स्थिरता में लाभकारी होता है। पेड़ किसानों को खाद्य फसलों के अलावा फलों या लकड़ी के बायोमास से अतिरिक्त आय भी प्रदान कर सकते हैं। कृषिवानिकी प्रणालियाँ प्राकृतिक संसाधनों को बढ़ाने और सुधारने के लिए नीतियों और प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रही हैं और शुष्क क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन के रूप में भी कार्य करती हैं। यह दृष्टिकोण अन्य भूमि उपयोग प्रथाओं की तुलना में पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं को नियंत्रित बनाए रखने में अपनी प्रभावशीलता साबित कर चुका है। कृषिवानिकी प्रणालियाँ, जो स्थायी प्रबंधन गतिविधियों के साथ एकीकृत भूमि उपयोग प्रथा हैं, सामाजिक और पर्यावरणीय रूप से सकारात्मक और आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए सबसे अच्छा दृष्टिकोण हो सकता है। इसमे अरडु एवं महानीम आधारित कृषिवानिकी प्रणाली मुख्य है।

अरडु (ऐलियन्थस एक्सेल्सा) सामान्य जानकारी

अरडु (ऐलियन्थस एक्सेल्सा) सिमारोबीएसी कुल की प्रजाति है। यह शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में उपयोग में आने वाला एक महत्वपूर्ण वृक्ष है। अरडु को महानीम एवं महारूख भी कहा जाता है। इसकी ऊंचाई 18 से 25 मीटर एवं मोटाई 2.5 से 3 मीटर तक हो सकती है। यह वृक्ष मध्य भारत में और प्रायद्वीप के उत्तरी भाग में पाया जाता है। यह आमतौर पर राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, गंगा के दक्षिणी भाग में पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में भी पाया जाता है। अरडु का उच्च घनत्व राजस्थान के सीकर, जयपुर, अजमेर, टोंक, दौसा और उदयपुर जिलों में पाया जाता है जबकि झुंझुनूं, भरतपुर, नागौर, अलवर, करौली, सवाई माधोपुर, बूंदी और कोटा में यह कम घनत्व में मिलता है। यह ऐसे क्षेत्र में पाया जाता है जहाँ औसत वार्षिक वर्षा 500 मिमी. से अधिक होती हैं। तीव्र वृद्धि की क्षमता के कारण सामाजिक वानिकी, कृषिवानिकी, सड़क किनारे वृक्षारोपण, बेकार भूमि पर कृषि एवं वायु प्रदूषण को रोकने के लिए उपयुक्त है। कृषि वन प्रणाली इसके अन्तर्गत महानीम (अरडू) के साथ कृषि फसलों जैसे मूंग, मोठ, ग्वार, चॅवला एवं बाजरा का उत्पादन पेड कें 3 मी X 8 मी0 के अन्तराल पर वृक्षारोपण कर बीना किसी उत्पादन ह्रास के लिया जा सकता है।

लकड़ी की उपयोगिता

इसकी लकड़ी पीले रंग वाली सफेद और चमकदार होती है। लकड़ी बहुत हल्की (घनत्व 0.45) और वजन 50 से 100 किग्रा/मीटर होता है। राजस्थान में अरडु के तने का मुख्य रूप से प्लाईवुड बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसकी लकड़ी का उपयोग माचिस उद्योगों में माचिस की डिबियाँ और माचिस की तीली बनाने में पैकिंग बक्से, कागज एवं लुगदी बनाने आदि में भी किया जाता है। इसका तना एवं शाखाएँ जलाऊ लकड़ी के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। इस लकड़ी का बड़े पैमाने पर लकड़ी के खिलौने और बल्ले बनाने के लिए कुटीर उद्योगों में प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार, यह गरीब परिवार के लिए आय का एक व्यावहारिक स्रोत बन सकता है।

पत्तियाँ चारे के रूप में उपयोग

अरडु की पत्तियाँ भारत के शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में छोटे, जुगाली करने वाले पशुओं के लिए बेहद पौष्टिक और स्वादिष्ट चारे का स्रोत हैं तथा दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए उपयोगी है। साहित्य में दिये गए तथ्यों के अनुसार अर्ध–शुष्क क्षेत्र में एक औसत पूर्ण विकसित पेड़ एक साल में दो बार हरी पत्तियां (5–7 क्विंटल पैदावार) देता है इसलिए यह काफी हद तक कृषि भूमि पर लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ विशेष रूप से सूखा पड़ने के दौरान पशुओं के चारे के लिए भंडारित की जाती हैं।

अरडु की छाल और गोंद

अरडु की छाल और गोंद का उपयोग आयुर्वेदिक दवाओं में किया जाता है। यह दुर्बलता के मामलों में टॉनिक और ज्वरनाशक के रूप में जाना जाता है। इसका उपयोग गांवों में कृमिनाशक, पेचिश, ब्रोंकाइटिस, दमा, अपच और कान का दर्द जैसी बीमारियों में प्रयोग किया जाता है।

अरडु से आर्थिक लाभ

स्थानीय बाजार में अरडु की लकड़ी का मूल्य 45 से 50 रुपये प्रति क्यूबिक फीट है जबकि फिनिश्ड़ टिम्बर 70–80 रुपये प्रति क्यूबिक फीट मूल्य पर बेची जा रही है। अरडू का पुरा पेड़ जैवभार उत्पादन के आधार पर 20 सेमी मोटाई तक 5 से 7 रुपये प्रति किग्रा प्लाईवुड इडस्ट्रीज को बेचा जाता है । हरे पत्तेदार चारा पूली के रूप में बेचा जाता है और एक पूली का वजन क्रमशः 5 किग्रा और 8 किग्रा होता है। एक पूली 20–30 रुपये का बिकता है। वृक्ष से चारा चौथे वर्ष के बाद से उपलब्ध होता है और चारे का रोटेशन 30 साल तक चलता है। औसतन पाँच क्विंटल पत्ती चारा एक पेड़ से प्रति वर्ष प्राप्त किया जा सकता है, जो पेड़ की उम्र के साथ बढ़ता जाता है। 10 साल के पूरे वृक्ष की कीमत 5000–6000 रुपये है और अगर कोई किसान अपने खेत के चारों ओर 10x10 मीटर की दूरी पर वृक्ष लगाता है तो 10 साल के बाद कम खर्च मे उसे प्रति हेक्टेयर 500,000 रुपये आय मिलेगी।

अनुसंधान और सम्भावना

अरडु एक द्विलिंगी वृक्ष प्रजाति है जिसमें नर एवं मादा पुष्प अलग–अलग वृक्षों पर पाये जाते हैं। इसमें मादा पौधे नर पौधों की अपेक्षा बेहतर वृद्धि दर्शाते है। मादा पौधों के रोपण से सामान्य रोपण की तुलना में अधिक जैवभार का उत्पादन होता है। बीजायन अवस्था में नर एवं मादा पौधों की पहचान करना संभव नहीं है। अतः केवल मादा पौधों का अधिक जैवभार हेतु रोपण नहीं किया जा सकता इसलिए इस प्रजाति में क्लोनीय तकनीक विकसित करने की आवश्यकता है। अरडु के दीर्घ प्रवर्धन एवं सूक्ष्म प्रवर्धन से पौधे तैयार करना अत्यधिक कठिन है और इसके शोध में सफलता भी अभी तक काफी सीमित है। अखिल भारतीय समन्वित कृषिवानिकी अनुसंधान परियोजना के अर्तंगत इस तरह के अनुभव और विशेषज्ञता के साथ विभिन्न क्षेत्रों में कृषिवानिकी इसके होने की सम्भावना और सफलता के बारे में एक विस्तृत अध्ययन किया गया है। इस व्यापक अध्ययन में पेड़ों की प्रजातियां जिसमें अल्पकालिक और दीर्घकालिक रूप से लगाये जाने वाले पेड़, वर्तमान और भविष्य में उनकी अनुमानित कीमतें, पेड़ों के बीच पैदा होने वाली फसलें, पेड़ों के साथ लगायी जा सकने वाले लताएं आदि शामिल हैं। विभिन्न कृषिवानिकी मॉडल (विभिन्न प्रजातियों के समूहों के साथ) विभिन्न मिट्टी के प्रकारों, जलवायु परिस्थितियों और पानी की उपलब्धता के आधार पर मौजूद हैं। कृषिवानिकी निति 2014 के साथ अब कई पेड़ों के लिए वन विभाग की अनुमति की अनिवार्यता समाप्त कर दी गई है जिसमें अरडु एवं महानीम भी है। इससे कृषिवानिकी की रफ्तार बढ़ेगी तथा किसान अपनी की उपज बिना वन विभाग के हस्तक्षेप के इडस्ट्रीज को बेच सकेंगे। इससे वन विभाग को हरियाली का दायरा बढ़ाने में भी मदद मिलेगी और कृषिवानिकी के प्रति इससे खुद–ब–खुद किसानों का रुझान बढ़ेगा।

कद्दुवर्गीय सब्जियों का उत्पादन

अदिति गुप्ता, बलबीर सिंह एवं शौकत अली
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

राजस्थान में कुष्माण्ड कुल की सब्जियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन सब्जियों का उद्गम स्थान कहीं भी रहा हो यह प्रमाणित है की राजस्थान प्रदेश इनकी खेती का अनुकूलतम स्थान है। इस वर्ग की बहुत सी सब्जियों को प्रदेश की स्थानीय जातियों की जेनेटिकल गुणवत्ता की श्रेष्ठता के कारण अपनी ख्याति है। भारत की कुल की सब्जियों के किस्म सुधर कार्यकर्मों में राजस्थान के बहुत से स्थानीय जनन द्रव्य का प्रयोग किया जाता है। यहाँ का रोएंदार टिंडा तथा मध्यम आकार के मोटे छिलके वाले हरे करेले बहुत स्वाद होते है।

आर्थिक महत्व :

कद्दुवार्गीय सब्जियां गरम मौसम में तैयार होने वाली सब्जियाँ है। अधिकतर सब्जियां शरद या वर्षा ऋतू में पैदा की जाती है। गर्मी की ऋतू अधिकतर सब्जियों के उत्पादन के लिए अनुकूल नही मानी जाती है जिसके कारण ग्रीष्म ऋतू में हरी सब्जियों का आभाव आ जाता है। अतः अभाव के इन दिनों में कदुवार्गीय सब्जियों के द्वारा हमारी सब्जियों की मांग पूरी होती है । इस वर्ग की सब्जियां गर्मी में काफी पैदावार देती है। रबी की फसलों की कटाई के बाद खेत खाली ही रहता है। अतः कृषकों द्वारा गर्मियों के दिनो कद्दुवार्गीय सब्जियों को अपने खेत में उगाने से खाली खेतों का सदुपयोग होकर इसकी उचित सार संभाल भी हो जाती है। अन्य सब्जियां इन दिनों उपलब्ध नही होने के कारण बाजार में इनका बढ़िया भाव मिल जाता है।

कुष्माण्ड कुल की फसलों की उन्नत किस्में:

लौकी – पूसा समर प्रोलिफिक लोंग, पूसा समर प्रोलिफिक राउण्ड, पूसा नीवन, अर्का बहार, पूसा मेघदूत (संकर लम्बी) पूसा मंजरी (चूसा गोल)।
कद्दू – पूसा विश्वास, पूसा अलंकार, अर्कचन्दन।
तरबूज – शूगरबेबी, आसाही–यामेटो, दुर्गापुरा मीठा, दुर्गापुरा केसर, अर्काज्योति (संकर किस्म) मधु (संकर किस्म)।
खरबूजा – दुर्गापूरा मधु, पंजाब सुनहरी, पंजाब हाईब्रिड, अर्काजीत, हरामधु, पूसा मधुरस, आर एस–43
चिकनी तुरई – पूसा चिकनी।
धारीदार तुरई – पूसा नसदार।
खीरा – बालम खीरा, पाईनसेट, पूसा संयोग (संकर किस्म)।
करेला – कोयम्बटूर लोंग, पूसा दो मौसमी, प्रिया, अर्काहरित, पूसा विशेष महिको करेला, ग्रीन लोंग।
टिण्डा – बीकानेरी–ग्रीन, दिल पसन्द, टिण्डा लुधियाना (एस–48), हिसार सलेक्शन नं. 1, अर्का टिण्डा।
ककड़ी – अर्का शीतल, लखनऊ अगेती।

बीज की मात्रा, बुवाई का समय व दूरी

नाम फसल	बीज की मात्रा किग्रा प्रति हैक्टेयर	बुवाई का समय
लौकी	4–5	फरवरी–मार्च
		जून–जुलाई
कद्दू	4–5	फरवरी–मार्च
		जून–जुलाई
करेला	4–5	फरवरी–मार्च
		जून–जुलाई
तरबूज	4–4.5	फरवरी–मार्च
		जून–जुलाई
खरबूज	1.5–2.00	फरवरी–मार्च
तुरई	4–5	फरवरी–मार्च
		जून–जुलाई
खीरा	2–2.5	फरवरी–मार्च
		जून–जुलाई
ककड़ी	2.00	फरवरी–मार्च
टिण्डा	4–5	फरवरी–मार्च
		जून–जुलाई

कुष्माण्ड कुल की सब्जियों की बुवाई नालियों में करें तथा एक स्थान पर 2–3 बीजों की बुवाई करें तथा अंकुरण के बाद एक से दो पौधों को रखकर शेष पौधों को हटा देवें।

कद्दुवार्गीय सब्जियों के औषधीय गुण :

लौकी : यह एक बहुउपयोगी सब्जी है। यह तासीर में ठंडी होती है इसलिए इस सब्जी को ग्रीष्म ऋतू में प्राथमिकता दी जाती है। यह कब्ज रोकती है, दस्तावर है तथा शीघ्र पचती है।
विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पाद : विभिन्न मिठाई जैसे दुधिया बर्फी, हलवा, लौकी पाउडर व फलैक्स।

कद्दू : यह एक बहुउपयोगी सब्जी है। यह तासीर में ठंडी होती है। नियमित रूप से सब्जी खाने पर मूत्र विकारों में फायदा पहुँचता है। सब्जी दस्तावर तथा पाचक होती है।
विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पाद : जूस. कैंडी, आचार , पाउडर, मिठाई (पेठा), पेठा, चेरी, बाल आहार आदि।

खीरा : यह एक बहुउपयोगी सब्जी है। नियमित रूप से सब्जी खाने पर मूत्र विकारों में फायदा पहुँचता है। यह पेट के कीड़ो को मारकर बाहर निकलने में हितकारी है। फलों का रस मधुमेह जी बिमारियों के लिए लाभकारी है।
विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पाद : जूस, पाउडर

ककड़ी : यह ग्रीष्मकाल में शरीर को ठंडक पहुचती है। नमक के साथ कच्ची खाने से पेट विकारों व मूत्र विकारों में फायेदेमंद है।
विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पाद : सुखडी (फोफ्लिया), बीजों की ठंडे पैयव शरबत

कचरी एवं फुट : इसके खाने से पेट के विकारों में काफी लाभ होता है। इससे हड्डियों की गांठो में होने वाला दर्द कम हो जाता है। कच्चे फल खाने से मलेरिया नही होता है।
विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पाद : कचरी का चूर्ण, पंचकुटा सब्जी , आचार , चटनी

करेला : यह एक बहुउपयोगी सब्जी है। यह मधुमेह के रोगियों के लिए लाभकारी है। यह सब्जी एक टॉनिक का कार्य करती है तथा पेट साफ करती है। इसके फल, बीज तथा पतियों का उपयोग पेट के कीड़े नष्ट करने में किया जाता है। करेला कड़वा, शीतल, पाचक, कृमिनाशक, ज्वरनाशक होता है। यह बवासीर, पीलिया, मधुमेह, ब्रोंकाइटिस तथा पेट के रोगों में लाभदायक है।
विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पाद : आचार, जूस , पाउडर, चिप्स आदि

तुरई : एक सुपाच्य तरकारी मानी जाती है। इसके प्रयोग से पेट के विकार दूर होते है।
विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पाद : पाउडर. फलैक्स इत्यादि

चप्पनकद्दू : इसकी सब्जी शक्तिवर्धक है। पेट दर्द व मूत्र के विकारों में लाभदायक है।
विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पाद : पाउडर

खरबूजा : जूस, आरटीएस

तरबूजा : जूस, आरटीएस

स्वास्थ्यवर्धक ब्रोक्कोली की खेती

दिलीप सिंह, राहुल यादव एवं सचिन कुशवाह
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

पोषक तत्वों से भरपूर ब्रोक्कोली एन्टी ऑक्सीडेन्ट विटामीन सी की मात्रा संतरे से भी ज्यादा जो कोलेजन के निर्माण में सहायक जोकि त्वचा, मांसपेशियों और दूसरे संधि उत्तको को हिस्सा होता है। इसका फाइवर पाचन में सहायक व कॉलेस्ट्रोल को नियंत्रित कर हृदय सम्बन्धी बीमारियों से बचाव में सहायक होती है। विटामिन 'के' कैलशियम की मात्रा पर सकारात्मक प्रभाव डालकर हड्डियों को मजबूत बनाता है और खुन का थक्के बनाने में सहायक होकर चोट के रक्त स्त्राव को रोकता है। यह कैंसर प्रतिरोधी भी होती है। एन्टी टी ऑक्सीडेंट सुल्फोराफेन (आइसोथिओसिनेट्स) और इंडोल –3–कार्बिनोल केवल गोभीवर्गीय सब्जियों में ही उपलब्ध कैंसर से बचाव में सहायक, करोटेनोइड–लूटेंनएजीजेंथिन और बीटा कैरोटीन आँखों के लिए फायदेमंद होते हैं। कैम्पफेरोल फलेवीनोडस दिल की बिमारियों, कैंसर, सूजन और एलर्जी और क्यूंसेटिन उच्च रक्त दाब वालों के रक्त के दबाब को कम करने मैं सहायक होता है।

यह सलाद व सब्जी के रूप में उपयोग की जाती है। शहरों में इसकी मांग अधिक रहती है।

पोषक तत्व	100 ग्राम ब्रोक्कोली में औसत पोषक तत्व की मात्रा	व्यस्क की 2000 कैलोरी प्रतिदिन की आवश्यकता की कैलोरी की पूर्ति प्रतिशत में
कैलोरी	31 किलो कैलोरी	2
कुल कार्बोहाइड्रेड	6.27 ग्राम	2
डाइट्री फाइबर रेशा	2.4 ग्राम	0
स्टेरॉलस (कॉलेस्टेरॉल, फाइटो स्टेरॉल)	नगण्य	9
कुल वसा	0.34 ग्राम	0
प्रोटीन व 14 अमीनो ऐसिड	2.57 ग्राम	5
विटामिन सी	91.30 मिली ग्राम	10
थाइमिंन	0.08 मिली ग्राम	7
राइबोफ्लेविन	0.11 मिली ग्राम	8
नियासिन	0.64 मिली ग्राम	4
कैल्शियम	4.6 मिली ग्राम	4
लोहा	0.69 मिली ग्राम	4
पोटाशियम	303 मिली ग्राम	6
मैंग्नीशियम	21 मिली ग्राम	5
फॉसफोरस	67 मिली ग्राम	5
जिंक	0.42 मिली ग्राम	4
कॉपर	0.06 मिली ग्राम	7
शैलेनियम	1.60 माइक्रोग्राम ग्राम	3
मैंगनीज	0.20 मिली ग्राम	9
पैण्टोथेनिक एसिड	0.61	12
विटामिन बी 6	0.19	11
कॉलिन	1.9	3
विटामिन ए	7.75 माइक्रोग्राम	1
विटामिन इ	0.15	1
विटामिन के (फाइलोक्यूनोन)	102 माइक्रोग्राम	85
जल	90 प्रतिशत	

भूमि : जलनिकास युक्त बुलई दोमट व उर्वरक भूमि जिसका पी.एच. 5–6.5, उत्तम रहती है।
जलवायु : ठण्डे मौसम की फसल है। दिन पूर्ण धूपयुक्त व औसत तापमान 18–23 सेंटीग्रेड ठीक रहता है।
किस्म : पालम समृद्धि –कसे हुए गोल व हरे लगभग 300 ग्राम वजन के शीर्ष। रोपाई के 70–75 दिन बाद तुड़ाई की जा सकती है। औसत पैदावार 150–200 क्विंटल/हेक्टेयर तक होती है।
पंजाब ब्रोक्कोली : शीर्ष हरे कसे हुए आकर्षक होते हैं। रोपाई के 65 दिन बाद तुड़ाई योग्य व् औसत उपज 175 क्विंटल/हेक्टेयर तक।
पालम कंचनः पीले शीर्ष रोपाई के 140–150 दिन बाद तुड़ाई योग्य व् औसत उपज 250–300 क्विंटल/हेक्टेयर।
पालम विचित्र : बैंगनी शीर्ष रोपाई के 115–120 दिन बाद तुड़ाई योग्य ।
अन्य किस्म : ग्रीन मैजिक ।
बीज व बुवाई : बुवाई सितम्बर के दूसरे सप्ताह से अक्टूबर तक करते हैं। नर्सरी में बुवाई हेतु लगभग 400–500 ग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहता है। बोने से पहले कैप्टान 3 ग्राम प्रति लीटर पानी के साथ मिलाकर 30 सेंटीमीटर गहराई तक नर्सरी की मिटटी को तर (ड्रेन्च) कर 50 माइक्रोन मोटाई की पॉलीथीन शीट से 4–5 दिन ढकते हैं व् बाद में निराई–गुड़ाई कर 1–2 दिन खुला छोड़ते हैं। गर्मियों में नर्सरी की गीली मिटटी का सोलराइजशन तकनीक से सूक्ष्म जीव रहित करने के लिए 50 माइक्रोन की पॉलीथीन सीट से 5–6 सप्ताह के लिए ढकते हैं। बीजों को बोने से पहले गर्म पानी (58 सेंटीग्रेड तापमान) में 30 मिनट् के लिए उपचारित करने से भूमि जनित बीमारियों से बचाव होता है। इसके बाद कैप्टान 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से भी उपचारित कर सकते हैं. या 3 मीटर x 1 मीटर की बेड में 50 ग्राम कार्बोफुरान व् 100 ग्राम बाविस्टिन मिटटी में मिलाते हैं। बीजों को 5 सेंटीमीटर की दूरी पर बनी कतारों में 2 सेंटीमीटर गहरा बोते हैं। 90–100 सेंटीमीटर चौड़ी उठी हुई क्यारियों पर दो ड्रिप लाइन बिछाकर 50 माइक्रोन मोटाई की रंगीन पॉलीथिन बिछाकर पौध रोपण करने से पानी की बचत होती है। बुवाई के 30 दिन बाद 4–5 पत्ती की अवस्था पर दो कतारों के बीच 60–70 सेंटीमीटर स्थान रखते हुए 40–45 सेंटीमीटर की दूरी पर पौधों को रोपते हैं। यूरिया व पानी में घुलनशील उर्वरक भी सिंचाई के साथ दे सकते हैं।

प्लग–ट्रे में कोकोपीट : वर्मीकुलाइट परलाइट को 3:1:1 के अनुपात में भरकर बीजों को बोते हैं। 150 वर्ग मीटर की नर्सरी से एक हेक्टेयर के लिए पौध तैयार हो जाती है। रोपाई से 15 दिन पहले ट्रिकोडर्मा विरिडी व् स्यूडोमोनास 5 किलोग्राम प्रत्येक को 50 किलोग्राम गोबर की खाद में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से मुख्य खेत में मिलाते हैं। पोषक तत्वों की अधिक उपलब्धता बढ़ाने के लिए एजोटोबैक्टर व पी.एस.बी. जीवाणु प्रत्येक की 600 ग्राम मात्रा को 2 लीटर पानी में गाढ़ा घोल बनाकर पौधों की जड़ों को उपचारित कर रोपाई कर सकते हैं। कॉपर ऑक्सी क्लोराइड 3.0 ग्राम प्रति लीटर पानी के साथ नर्सरी की पौध पर छिड़कते हैं।
खाद व् उर्वरक : भूमि की जाँच के आधार पर 250 क्विंटल, यूरिया 125 किलोग्राम,सिंगल सुपर फॉस्फेट 280 किलोग्राम व् म्यूरेट ऑफ पोटाश 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर रोपाई से पहले देते हैं और यूरिया 125 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर रोपाई के एक महीने बाद देते हैं।
खरपतवार प्रबंधन : रोपाई से एक दिन पहले पेंडीमिथेलीन की 3 लीटर मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर भूमि पर छिड़काव करते हैं।रोपाई के 30–40 दिन बाद निराई –गुड़ाई करते हैं।
सिंचाई : रोपाई के तुरंत बाद सिचाई अवश्य करें। भूमि और जलवायु के अनुसार गर्म मौसम में 7–8 दिन और सर्दियों में 10–15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करते हैं।

पौध संरक्षण–

डाउनी मिल्ड्यू : बीमारी में पत्तियों की निचली सतह पर छोटे कोणयुक्त घाव जो नारंगी–पीले रंग के व् पत्तियां ऊपर से भी भूरे धब्बेदार दिखती हैं। रोकथाम हेतु मेटलैक्सिल 8 प्रतिशत मैंकोजेब 64 प्रतिशत घुलनशील पाउडर की 250 ग्राम मात्रा को 250 लीटर पानी के साथ छिड़कें।
कटवर्म की सुंडियां : रात को छोटे पौधों को काटती हैं, कीटनाशी डाइमेथोएट 30% की 1.5 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर पानी के साथ छिड़कें।
डायमंड बैक मोथ : छोटे पौधों की पत्तियों व तने को जमीन से ऊपर से काटकर गिरा देती हैं ,पत्तियों, पुष्प कलिका को खातीं हैं। रोकथाम हेतु –करताप हाइड्रोक्लोराइड 50 प्रतिशत घुलनशील पाउडर 1 किलोग्राम हेक्टेयर या कीटनाशी इमामेक्टिन बेंजोएट 5 प्रतिशत एस. जी. 150–200 ग्राम को 500 लीटर पानी के साथ छिड़कांव करें।
माहू (चेंपा) : पौधों के मुलायम भागों से रस चूसते हैं, डाइमेथोएट 30 ई. सी. की 1.5 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर पानी के साथ छिड़कें।
शीर्ष की तुड़ाई : 250–300 ग्राम वजन व 3–6 इंच साइज के कसे शीर्ष की तुड़ाई डंठल सहित करें, पहली तुड़ाई के 10–12 दिन बाद पुनः शीर्ष की तुड़ाई कर सकते हैं ।

प्राकृतिक खेती के लिए सूक्ष्मजीवों का बागवानी फसलों में योगदान

राजीव कुमार नारोलिया[1], आशा कुमारी[2], ममता यादव[3] एवं विकास शर्मा [4]

[1]सह आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, [2]शोध छात्रा, जूनागढ़ कृषि विश्वविद्यालय, गुजरात,
[3]शोध छात्रा, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, [4]सहायक आचार्य, एस. के. राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

बागवानी फसलें कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और इनमें सूक्ष्मजीवों का प्राकृतिक खेती में उपयोग से उत्पादकता, गुणवत्ता एवं पोषकता में सुधार हुआ है। प्राकृतिक खेती एक टिकाऊ कृषि पद्धति है, जिसमें रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग को समाप्त कर जैविक एवं प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया जाता है। इसमें सूक्ष्मजीवों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि ये मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने, पोषक तत्वों को पौधों तक पहुँचाने, तथा फसलों को रोग एवं कीटों से बचाने में सहायक होते हैं। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र तथा गुजरात के किसानों द्वारा, ऐसा पाया गया कि बागवानी फसलों जैसे टमाटर में ट्राइकोडर्मा और बैसिलस सूक्ष्मजीवों का उपयोग कर रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता को समाप्त कर पैदावार में वृद्धि की गई है। सूक्ष्मजीवों का प्रभावी उपयोग प्राकृतिक खेती में बागवानी फसलों द्वारा किसानों को और अधिक लाभकारी बना सकता है।

प्राकृतिक खेती और सूक्ष्मजीवों का महत्व : प्राकृतिक खेती का उद्देश्य रसायनमुक्त खेती को बढ़ावा देना और टिकाऊ कृषि प्रणाली का विकास करना है। फसल उत्पादन बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका मिट्टी की उर्वरता और उसमें मौजूद सूक्ष्मजीव (माइक्रोब्स) फसल उत्पादन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होते है। मिट्टी में अनेक प्रकार के सूक्ष्मजीव जैसे जीवाणु, कवक और अन्य लाभकारी सूक्ष्मजीवों का प्रयोग किया जाता है, जो मृदा की गुणवत्ता को सुधारने, उर्वरता बनाए रखने के साथ, पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने और कीटों व रोगों से सुरक्षा प्रदान करने में सहायक होते हैं।

सूक्ष्मजीवों की भूमिका :

- **नाइट्रोजन स्थिरीकरण :** राइजोबियम, एजोटोबैक्टर और ब्लू–ग्रीन एल्गी जैसे सूक्ष्मजीव वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर कर पौधों के लिए उपयुक्त बनाते हैं।
- **फॉस्फेट घुलनशीलकरण :** जीवाणु जैसे पीएसबी (फॉस्फेट सोल्युबिलाइजिंग बैक्टीरिया) मिट्टी में उपलब्ध अघुलनशील फॉस्फेट को घुलनशील बनाकर पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं।
- **पोटाश घुलनशील जीवाणु :** यह जीवाणु मिट्टी में उपलब्ध पोटाश को पौधों के लिए उपयुक्त बनाते हैं, जिससे उनकी वृद्धि में सुधार होता है।
- **जैव नियंत्रण एजेंट :** ट्राइकोडर्मा, बैसिलस और प्सूडोमोनास जैसे सूक्ष्मजीव हानिकारक कीटों एवं रोगजनकों को नियंत्रित करने में मदद करते हैं।
- **जैव उर्वरक :** वर्मी कंपोस्ट, जीवामृत, गोमूत्र आधारित उर्वरकों में लाभकारी सूक्ष्मजीव होते हैं, जो मिट्टी की उर्वरता बढ़ाते हैं।
- **माइकोराइजा :** यह लाभकारी कवक पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध बनाकर जल और पोषक तत्वों के अवशोषण को बढ़ाता है।
- **कार्बनिक पदार्थों का विघटन :** सूक्ष्मजीव जैविक अवशेषों का विघटन कर मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं।

बागवानी फसलों में सूक्ष्मजीवों का योगदान

फलों में सुधार : केला, आम, अंगूर, पपीता आदि फलों की गुणवत्ता बढ़ाने एवं रोग प्रतिरोधकता विकसित करने में सूक्ष्मजीवों का उपयोग किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, ट्राइकोडर्मा आधारित जैव नियंत्रण एजेंट आम और अंगूर की फसल में फंगल रोगों को नियंत्रित करने के लिए प्रभावी पाए गए हैं।

सब्जियों में उन्नति : टमाटर, बैंगन, आलू एवं मिर्च जैसी सब्जियों की फसल को अधिक उपजाऊ एवं टिकाऊ बनाने के लिए प्राकृतिक खेती में जैव उर्वरकों एवं सूक्ष्मजीवों का उपयोग किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, बैसिलस सूक्ष्मजीव का उपयोग टमाटर में बैक्टीरियल विल्ट रोग को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

फूलों की खेती : गुलाब, कार्नेशन एवं ऑर्किड जैसी फूलों की किस्मों को अधिक आकर्षक एवं दीर्घकालिक बनाए रखने के लिए सूक्ष्मजीवों आधारित तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है। माइकोराइजा फंगस का उपयोग फूलों की वृद्धि और जल अवशोषण क्षमता को बढ़ाने में किया जाता है।

माइकोराइजा एवं जैव नियंत्रक कारक : यह तकनीक मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने और पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करने में मदद करती है।

राजस्थान सरकार द्वारा संचालित योजनाएँ : राजस्थान सरकार मुख्यमंत्री श्री भजनलाल शर्मा द्वारा वर्मी कंपोस्ट इकाई निर्माण की शुरुआत की गई है। इससे मृदा की जैविक व भौतिक स्थिति में सुधार लाया जा रहा है। प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएँ चला जा रही है, जिनका उद्देश्य किसानों को जैविक एवं प्राकृतिक कृषि तकनीकों के प्रति जागरूक करना और वित्तीय सहायता प्रदान करना है। कुछ प्रमुख योजनाएँ निम्नलिखित हैं:

1. **राजस्थान प्राकृतिक कृषि मिशन :** इस योजना के अंतर्गत किसानों को जैविक खाद, जीवामृत, वर्मी कम्पोस्ट, एवं सूक्ष्मजीव आधारित कृषि तकनीकों के उपयोग पर प्रशिक्षण दिया जाता है। किसानों को जैविक प्रमाणन एवं विपणन में सहायता प्रदान की जाती है।
2. **मुख्यमंत्री किसान कल्याण योजना :** इस योजना में प्राकृतिक खेती को अपनाने वाले किसानों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। बागवानी फसलों में जैविक उर्वरकों और सूक्ष्मजीवों के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए अनुदान दिया जाता है।
3. **परंपरागत कृषि विकास योजना :** केंद्र सरकार की सहायता से चलाई जा रही इस योजना में जैविक खेती को बढ़ावा दिया जाता है। किसानों को जैव उर्वरक, कीट नियंत्रण हेतु जैविक उत्पाद एवं सूक्ष्मजीवों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है।
4. **राष्ट्रीय बागवानी मिशन :** इस योजना के तहत जैविक खेती एवं प्राकृतिक कृषि तकनीकों को बढ़ावा देने के लिए किसानों को वित्तीय सहायता दी जाती है। ड्रिप सिंचाई, सूक्ष्म पोषक तत्वों एवं जैविक खादों के उपयोग को प्रोत्साहित किया जाता है।

5. **राजस्थान जैविक कृषि नीति** : इस नीति के अंतर्गत किसानों को प्राकृतिक खेती को अपनाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। जैविक उत्पादों के विपणन हेतु सहायता एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

चुनौतियाँ और समाधान :

- प्राकृतिक खेती में सूक्ष्मजीवों के सही अनुप्रयोग के बारे में जागरूकता की कमी।
- व्यावसायिक जैव उर्वरकों की उपलब्धता और गुणवत्ता को नियंत्रित करने की आवश्यकता।
- जैविक खेती के प्रसार के लिए सरकारी योजनाओं और अनुदानों का अधिक प्रचार।

सब्जियों की फसलों में पादप वृद्धि नियामकों की भूमिका

पुष्पा उज्जैनिया, उत्तम शिवरान एवं कमलेश कुमार यादव
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादन के लिए सब्जियों में पादप वृद्धि नियामकों (पीजीआर) का व्यावसायिक रूप से उपयोग किया जाता है। पादप वृद्धि नियामक सिंथेटिक या प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला पदार्थ है जो उच्च एवं कम सांद्रता से पौधों में विकासात्मक या चयापचय गतिविधि को प्रभावित करता है। पीजीआर एग्रोकेमिकल उद्योग द्वारा उपयोग किए जाने वाले सिंथेटिक पादप विकास नियामक हैं, जबकि पादप हार्मोन प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले, कार्बनिक पदार्थों का एक समूह है जो कम सांद्रता में प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। पांच महत्वपूर्ण प्राकृतिक पीजीआर जिसमे जिबरेलिन्स, ऑक्सिन, साइटोकिनिन, एब्सिसिक एसिड और एथिलीन हैं। हाल ही में, अन्य पीजीआर की खोज की गई है जैसे सैलिसिलेट्स, जैस्मोनेट, ब्रैसिनोस्टेरॉइड्स और पॉलीमाइन्स। पीजीआर के पौधों में उनकी सांद्रता या स्थानीयकरण के आधार पर विभिन्न कार्य होते हैं, और वे अक्सर अन्य पीजीआर के साथ सहक्रियात्मक या विरोधी संबंधों में कार्य करते हैं। इसके अलावा, एक पीजीआर दूसरे के जैवसंश्लेषण को प्रभावित कर सकता है। परिणामस्वरूप, फलों के पकने और पकने के दौरान अंतर्जात हार्मोन के संतुलन का शारीरिक प्रतिक्रियाओं पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। पीजीआर फल के आकार में वृद्धि और सब्जी की परिपक्वता में देरी या वृद्धि जैसी विशेष प्रतिक्रियाओं को प्रोत्साहित करके फल किसानों को महत्वपूर्ण आर्थिक लाभ दे सकता है। कटाई पूर्व उपचार कभी–कभी कटाई के बाद की गुणवत्ता पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। अंत में, पीजीआर का उपयोग कटाई के बाद भंडारण में सुधार, पकने को बढ़ावा देने या देरी से करने और ताजा उत्पाद की गुणवत्ता का प्रबंधन करने के लिए किया जा सकता है, बशर्ते कि प्रभाव उपभोक्ताओं के लिए खतरनाक न हो। पीजीआर का उपयोग कृषि और बागवानी में विशिष्ट लाभ प्राप्त करने के लिए किया जाता है जैसे कि जैविक और अजैविक तनाव के प्रति कम संवेदनशीलता, कटाई में आसानी, मात्रात्मक और गुणात्मक उपज लाभ, और पौधों के घटक संशोधन।

पादप वृद्धि नियामकों की वाणिज्यिक उपयोगिता

टमाटर–उच्च तापमान पर फलों के जमने को बेहतर बनाएं टोमाटोटीन या टोमैटोलेन (4-सीपीए)। फल सेट, शीघ्रता बढ़ाएँ और पार्थेनोकार्पी में बीज के रूप में 2-4 डी 2-5 पीपीएम का उपयोग किया जाता है। पीसीपीए 50-100 पीपीएम का उपयोग टमाटर में फल लगने के लिए किया जाता है उच्च और निम्न तापमान की स्थिति में।

बैंगन– फूल आने के 60-70 दिन बाद से एक सप्ताह के अंतराल पर 2-4, डी (2 पीपीएम) का छिड़काव करने से बैंगन में फल लगने, शीघ्र उपज और उपज में वृद्धि होती है।

मिर्च– मिर्च में फलों के झड़ने को नियंत्रित करने के लिए ग्रोथ रेगुलेटर का उपयोग किया जाता है, जो ट्रिकोनटिनॉल और प्लेनोफिक्स (एनएए) है। फूल आने की अवस्था में प्लेनोफिक्स (एनएए) 10 पीपीएम का छिड़काव करने से फूल गिरने की दर कम होती है और फल लगने की दर बढ़ती है।

आलू– आलू में जीए3 10-15 पीपीएम 10-20 मिनट के लिए कंद की निष्क्रियता को तोड़ने के लिए और अंकुरण को बढ़ाने के लिए। थायोयूरिया 1 प्रतिशत कंद की निष्क्रियता को तोड़ने के लिए प्रयोग किया जाता है। मैलिक हाइड्राजाइड और क्लोरोप्रोफाम 25 मिलीग्राम/टन कंद. अंकुरण अवरोधक के रूप में उपयोग किया जाता है।

भिंडी– पौध वृद्धि नियामक भिंडी को कई तरह से प्रभावित करते हैं, जैसे जिबरेलिक एसिड (400 पीपीएम), आईएए (20 पीपीएम) या एनएए (20 पीपीएम) द्वारा बीज उपचार से अंकुरण में वृद्धि होती ह, एथेफॉन (100-500 पीपीएम) से वनस्पति वृद्धि कम होती है और शीर्षस्थ प्रभुत्व कमजोर होता है, साइकोसेल (1,000-1,500 पीपीएम) से पौधे की ऊंचाई कम होती है। भिंडी में फली की उपज को जीए3 (50-100 पीपीएम) या आईएए (100 पीपीएम) में बीजों को भिगोने से बेहतर बनाया जाता है। एथेफॉन (250 पीपीएम) या सीसीसी (25 पीपीएम) या एनएए (15 पीपीएम) का प्री-एंथेसिस में पत्तियों पर छिड़काव भी फली की उपज को बढ़ाता है। कटाई के बाद साइकोसेल (100 पीपीएम) से उपचार करने पर फलों की शेल्फ लाइफ बढ़ जाती है और एस्कॉर्बिक एसिड (250 पीपीएम) से क्लोरोफिल की अवधारण सबसे अच्छी होती है, कमरे के तापमान पर 8-9 दिनों के भंडारण के बाद फलों का वजन न्यूनतम घटता है।

लहसुन– बुवाई के 20-25 दिन बाद एथेफॉन 500 पीपीएम या अलार 500 पीपीएम का पत्तियों पर छिड़काव करने से लहसुन की कली का आकार और उपज बढ़ती है। रोपण के 60 और 90 दिन बाद एनएए 50 पीपीएम का पत्तियों पर छिड़काव करने से बल्ब की उपज बढ़ती है। पार्श्व कलियों के निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए जीए3 200-400 पीपीएम का पत्तियों पर छिड़काव करें। भंडारण के दौरान अंकुरण को नियंत्रित करने के लिए कटाई से पहले पखवाड़े में पत्तियों पर एमएच 2500 पीपीएम का पत्तियों पर छिड़काव करें।

प्याज– एनएए 100-200 पीपीएम या आईएए 10 पीपीएम के साथ बीज उपचार बल्ब की वृद्धि और उपज में सुधार करता है। बल्ब की वृद्धि और उपज में सुधार के लिए जिबरेलिक एसिड 40 पीपीएम के साथ अंकुर उपचार। भंडारण के दौरान अंकुरण की जांच के लिए बल्ब खोदने से एक सप्ताह पहले एमएच 2500 पीपीएम का पत्तियों पर छिड़काव करें।

प्याज– एनएए 100-200 पीपीएम या आईएए 10 पीपीएम के साथ बीज उपचार बल्ब की वृद्धि और उपज में सुधार करता है। बल्ब की वृद्धि और उपज में सुधार के लिए जिबरेलिक एसिड 40 पीपीएम के साथ अंकुर उपचार। भंडारण के दौरान अंकुरण की जांच के लिए बल्ब खोदने से एक सप्ताह पहले एमएच 2500 पीपीएम का पत्तियों पर छिड़काव करें।

मटर– विकास के पांच नोड चरण पर ग्रोथ रेगुलेटर सीसीसी के 10 एम घोल के 15 मिली का छिड़काव करने से फसल की वृद्धि और उपज पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। मटर के बीजों को जीए3 (10 पीपीएम) में 12 घंटे तक भिगोने से सबसे अधिक अंकुरण होता है। फूल आने से पहले एमएच (25 पीपीएम) या सीसीसी (500 पीपीएम) का पत्तियों पर छिड़काव करने से फली की उपज बढ़ती है।

फ्रेंच बीन– 2 पीपीएम पर पीसीपीए, 5-25 पीपीएम पर एल-नेफ्थल एसिटिक एसिड जैसे ग्रोथ रेगुलेटर ने फली के खराब होने पर प्रचलित तापमान पर छिड़काव करने पर फल लगने पर अनुकूल प्रभाव दिखाइ है। 50-200 पीपीएम पर जीए3 का छिड़काव फसल की वृद्धि में सुधार करने में प्रभावी है।

खरबूजा– बीजों को 480 मिलीग्राम/लीटर पानी में 24 घंटे तक एथेफॉन में भिगोने से कम तापमान पर खरबूजे में अंकुरण में सुधार होता है। इथ्रेल (250 पीपीएम) के प्रयोग से फलन बढ़ता है और उपज भी बढ़ती है। सिल्वर थायोसल्फेट (300-400 पीपीएम) का बहिर्जात प्रयोग स्त्रीलिंग खरबूजे में नर फूल को प्रेरित करता है। इन रसायनों/पौधों की वृद्धि नियामकों को 2 सच्ची पत्तियों वाली अवस्था में दो बार और 4 सच्ची पत्तियों वाली अवस्था में दूसरी बार प्रयोग किया जाना चाहिए।

तरबूज– तरबूज में फल लगने और फल की उपज बढ़ाने के लिए टीआईबीए (25-50 पीपीएम), बोरान (3-4 पीपीएम), मोलिब्डेनम (3-4 पीपीएम) और कैल्शियम (20-25 पीपीएम) जैसे रसायनों के बाहरी अनुप्रयोग की सिफारिश की जाती है। जीए3 (25-50 पीपीएम), इथ्रेल (500 पीपीएम), एमएच (100 पीपीएम) और एनएए (200 पीपीएम) के पर्ण स्प्रे से भी फल की उपज बढ़ाई जा सकती है। मादा फूलों की संख्या और उपज बढ़ाने में जीए3 (25 पीपीएम) सबसे प्रभावी पाए गए हैं। इन रसायनों/पौधे की वृद्धि नियामकों को दो–सच्ची पत्तियों के चरण में लागू किया जाना चाहिए। 4–सच्ची पत्तियों के चरण में स्प्रे को दोहराएं।

फूलगोभी– फूलगोभी के पौधों को स्टार्टर घोल के रूप में एनएए 10 पीपीएम से उपचारित करना खेत में पौधों की वृद्धि और वानस्पतिक वृद्धि के संबंध में प्रभावी पाया गया है। 80 मिलीग्राम/लीटर पानी की दर से जीए4+ जीए7 का प्रयोग करने से रोपाई से कटाई तक का समय कम हो जाता है। पौधों की जड़ों को आईबीए (0.1 पीपीएम) में डुबाने से पौध की स्थापना में सुधार होता है, 10-15 दिन पहले पक जाती है और कर्ड की उपज बढ़ जाती है। बोरिक एसिड के साथ 2, 4-डी का प्रयोग करने से कर्ड का पीलापन कम होता है। कटाई से 1-7 दिन पहले 2, 4-डी (100-500 पीपीएम) का छिड़काव करने से फूलगोभी में पत्ती का गिरना और वजन कम होना कम हो जाता है।

पतागोभी– गोभी में, बुवाई से पहले बीजों को 0.1 प्रतिशत बोरिक एसिड में भिगोने से वनस्पति उपज में वृद्धि होती है जबकि फूल आने पर 50 पीपीएम बोरिक एसिड का छिड़काव करने से बीज की उपज बढ़ जाती है। 5–10 पीपीएम पर जीए3 में अंकुर की जड़ को डुबाने से अंकुर की स्थापना में सुधार होता है। सीसीसी या एसएडीएच (2,500-5,000 पीपीएम) का छिड़काव गोभी में कम तापमान प्रतिरोध को बढ़ाता है। एनएए 0.1 प्रतिशत या आईबीए 0.4 प्रतिशत या जीए3 5-10 पीपीएम का बीज उपचार/पर्ण छिड़काव गोभी के सिर के आकार और उपज में सुधार करता है। कटाई से 1-7 दिन पहले 2, 4-डी (100-500 पीपीएम) का छिड़काव गोभी में पत्ती के विच्छेदन और वजन में कमी को कम करता है।

पीजीआर अनुप्रयोग विधियाँ

1. **पाउडर के रूप में अनुप्रयोग–** पीजीआर पाउडर को कार्बनिक विलायक में घोलकर नमीयुक्त चारकोल पाउडर, सोयाबीन आटा या गेहूं के आटे के साथ मिलाकर एक समान पेस्ट तैयार करें। विलायक के वाष्पित होने तक पेस्ट को रखा जाता है।
2. **लैनोलिन पेस्ट में अनुप्रयोग–** पीजीआर को बढ़ावा देने वाली अधिकांश जड़ें लैनोलिन में आसानी से घुलनशील होती हैं; लैनोलिन पेस्ट जो पौधे में लाभकारी जड़ों को बढ़ावा देता है, पीजीआर को लैनोलिन में मिलाकर और इसे ठंडा होने देकर बनाया जाता है।
3. **भिगोने की विधि–** पीजीआर की मापी गई मात्रा को अल्कोहल में घोला जाता है और फिर आसुत जल से पतला करके घोल की आवश्यक मात्रा और सांद्रता (20-2000 पीपीएम) बनाई जाती है, कटिंग को रोपण से पहले 24 घंटे के लिए घोल में भिगोया जाता है।
4. **एरोसोल विधि–** यह विधि ग्रीन हाउस में प्रचलित है, जहाँ पीजीआर घोल को एक छोटी एरोसोल बोतल/सिलेंडर के माध्यम से छोड़ा जाता है। तरल गैसें जल्द ही वाष्पित हो जाती हैं और पीजीआर रसायन हवा में रह जाता है।
5. **छिड़काव विधि।**
6. **जड़ पोषण विधि।**
7. **आंतरिक ऊतकों में घोल का इंजेक्शन।**

पादप वृद्धि नियामकों के उपयोग में बाधाएँ

प्रत्येक पौधे की प्रजाति या किस्मों की किसी दिए गए रासायनिक उपचार के प्रति संवेदनशीलता जैविक प्रभावों की आसान भविष्यवाणी को रोकती है। पीजीआर गतिविधियों की जांच में उच्च लागत आती है और यह बहुत कठिन है। कुछ सिंथेटिक प्लांट ग्रोथरेगुलेटर मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा करते हैं।नए पीजीआर विकसित करने की लागत बहुत अधिक है जिसके कारण वे बहुत महंगे हैं। फसल के उचित चरण की पहचान करना मुश्किल है जिस पर ग्रोथ रेगुलेटर को लागू किया जाना चाहिए। सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में कृषि शोधकर्ताओं से समर्थन की कमी। विषाक्तता और कार्रवाई के तंत्र के बुनियादी ज्ञान का अभाव।

फार्म पोंड और बेर बागवानी : जल संकट से समृद्धि की ओर

श्री सिंह राज
किसान : जिला–अलवर

अलवर जिले के किसान, श्री सिंह राज, वर्षों से परंपरागत खेती कर रहे थे। कम वर्षा और जल संकट के कारण उनकी फसलें अक्सर प्रभावित होती थीं, जिससे उनकी आय पर नकारात्मक प्रभाव पडता था।

राष्ट्रीय नवाचार जलवायु अनुकूल कृषि (निक्रा) परियोजना के तहत, कृषि विज्ञान केंद्र नौगांवा, अलवर ने उन्हें फार्म पोंड (खेत तलाई) और बेर बागवानी अपनाने की सलाह दी। इस तकनीकी सलाह से न केवल उनकी जल समस्या हल हुई बल्कि उनकी आय में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

समस्या की पहचान

श्री सिंह राज को परंपरागत खेती में कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था :

- असमय बारिश और जल की कमी, कम वर्षा और जल संरक्षण की व्यवस्था न होने से खरीफ और रबी फसलें प्रभावित होती थीं।
- कम उत्पादन, मिट्टी की नमी बनाए रखने में असमर्थता के कारण फसलों की उपज कम थी।
- मिट्टी की खराब गुणवत्ता : सिंचाई की कमी और पोषक तत्वों की कमी के कारण फसल उत्पादन प्रभावित हो रहा था।
- वैकल्पिक आय स्रोत की कमी : केवल पारंपरिक खेती पर निर्भरता होने के कारण आर्थिक स्थिति कमजोर बनी हुई थी।
- उन्नत किस्मो का प्रयोग नहीं करना

तकनीकी समाधान

कृषि विज्ञान केंद्र, नौगांवा, अलवर ने श्री सिंह राज को फार्म पोंड निर्माण और बेर बागवानी अपनाने की सलाह दी। इन उपायों ने उनकी कृषि प्रणाली में सकारात्मक बदलाव ला दिया।

1. फार्म पोंड निर्माण :

फार्म पोंड एक जल संरक्षण तकनीक है, जिसमें वर्षा के पानी को संचित कर जरूरत के समय सिंचाई के लिए उपयोग किया जाता है। श्री सिंह राज ने अपने 0.5 हेक्टेयर खेत में 100 x 100 x 18 फीट आकार का फार्म पोंड तैयार किया।

फार्म पोंड के लाभ :

- खरीफ और रबी दोनों मौसम में सिंचाई संभव हुई।
- पानी की बर्बादी रुकी और जल संरक्षण में सुधार हुआ
- 30 से 50 प्रतिशत तक पानी की बचत हुई।
- पशुपालन के लिए भी पर्याप्त पानी उपलब्ध हुआ।
- नमी संरक्षण के कारण मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार हुआ।

2. बेर बागवानी का अपनाना :

कृषि विज्ञान केंद्र, नौगांवा, अलवर ने श्री सिंह राज को पारंपरिक फसलों के साथ बेर की उन्नत किस्मों की खेती करने की सलाह दी। उन्होंने अपने खेत में गोला, सेब और थाई एप्पल किस्मों का रोपण किया।

बेर बागवानी के लाभः

- कम पानी में अधिक उत्पादन देने वाली फसल।
- प्राकृतिक आपदाओं (सूखा) के प्रति सहनशील।
- बाजार में अच्छी मांग और लाभकारी मूल्य।
- फार्म पोंड के पानी से बेर की सिंचाई संभव हुई।

तकनीकों का प्रभाव :

1. सिंचाई सुविधा में सुधार

फार्म पोंड के कारण खेत में पानी की उपलब्धता बढ़ गई, जिससे श्री सिंह राज ने ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली को अपनाया। इससे जल उपयोग दक्षता में सुधार हुआ और उत्पादन बढ़ा।

2. उत्पादन और आय में वृद्धि

बेर बागवानी से श्री सिंह राज को पहले वर्ष में ही 12 क्विंटल उत्पादन प्राप्त हुआ, जिससे उन्हें रू40,000 की आय हुई। तीसरे वर्ष तक यह उत्पादन बढ़कर 25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर हो गया, जिससे उनकी कुल आय रू100000 तक पहुँच गई।

3. पशुपालन में सुधार

फार्म पोंड के कारण पानी की उपलब्धता बढ़ी, निक्रा परियोजना के तहत चारा बैंक हेतु जई (केंट), बरसीम (बी एल–10) की उन्नत किस्म के प्रदर्शन लगाए गए जिससे पशुओ को हरा पौष्टिक चारे की पूर्ति हुई एवं दूध उत्पादन में 8 प्रतिशत तक वृद्धि हुई

आर्थिक लाभ का विश्लेषण

तकनीक	क्षेत्र (हेक्टेयर)	उत्पादन क्विंटल प्रति हेक्टेयर	कुल आय प्रति हेक्टेयर (रू)	निवेश लागत प्रति हेक्टेयर (रू)	शुद्ध लाभ प्रति हेक्टेयर (रू)
बेर बागवानी	0.5	25	100000	44200	55800
सरसों (राधिका)	2	20	104000	36900	67100
पशुपालन	3	1470	88200	35280	52920
कुल आय	-	-	**292200**	**116380**	**175820**

निक्रा परियोजना के तहत अपनाई गई फार्म पोंड और बेर बागवानी तकनीकों ने श्री सिंह राज की कृषि प्रणाली को पूरी तरह बदल दिया। जहां पहले जल संकट के कारण उनका उत्पादन सीमित था, अब वे खरीफ और रबी दोनों मौसम में अच्छी उपज प्राप्त कर रहे हैं।

मुख्य उपलब्धियाँ:

- **जल संरक्षण में सुधार** : फार्म पोंड से पूरे वर्ष सिंचाई संभव हुई।
- **उच्च लाभकारी कृषि** : बेर बागवानी से अधिक मुनाफा हुआ।
- **कम पानी में उच्च उत्पादन** : ड्रिप और स्प्रिंकलर से पानी की बचत और उपज में वृद्धि हुई।
- **आर्थिक स्थिति में सुधार** : वैकल्पिक आय स्रोत बढ़े, जिससे कुल आय में वृद्धि हुई।
- **अन्य किसानों के लिए प्रेरणा** : अब आसपास के कई किसान भी फार्म पोंड और बेर बागवानी को अपना रहे हैं।

श्री सिंह राज की सफलता : एक प्रेरणा

श्री सिंह राज ने यह सिद्ध कर दिया कि यदि सही तकनीकों को अपनाया जाए, तो जल संकट जैसी चुनौतियों को पार कर कम लागत में अधिक उत्पादन और अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। उनकी सफलता अब आसपास के किसानों के लिए एक प्रेरणास्त्रोत बन चुकी है, और निक्रा परियोजना के तहत अन्य किसानों को भी इस तकनीक को अपनाने के लिए प्रेरित किया जा रहा है।

फार्म पोंड

सरसों की उन्नत किस्म प्रदर्शन

बेर बगीचा

शुष्क क्षेत्र में तरबूज की उन्नत खेती

कमलेश कुमार यादव, पुष्पा उज्जैनिया, एम आर चौधरी, उत्तम शिवरान एवं ओम प्रकाश जीतरवाल
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

तरबूज एक बेलवाली गर्मी के मौसम में उगाई जाने वाली कद्दूवर्गीय महत्वपूर्ण एवं बहुत ही लोकप्रिय फसल है। इसके फल पकने पर काफी मीठे एवं स्वादिष्ट होते हैं। गर्मी में तरबूज का फल फ्रूट डिश, जूस, शरबत, स्क्वैश आदि अनेक रूप से उपयोग होता है। तरबूज के पोषण और स्वास्थ्य लाभ भी कई हैं। इसकी खेती आर्थिक रूप से फायदेमंद मानी जाती है। यह एक बेहतरीन और ताजगीदायक फल है। प्रति 100 ग्राम तरबूज में 95.8 ग्राम पानी होता है। इसी लिए गर्मियों मे तरबूज के सेवन से लू नहीं लगती है तथा गर्मी से राहत मिलती है और शरीर को ताजगी से भरे रखता है। तरबूज गर्मियों में अक्सर होने वाले मूत्रामार्ग के संक्रमण से निजात पाने में भी सहायक है। इसमें उपलब्ध पोटेशियम लगभग 119 मि.ग्रा. हमारे हृदय को स्वस्थ एवं रक्तचाप को संतुलित बनाए रखने के लिए कापफी महत्वपूर्ण होता है। इसकी खेती हिमालय के तराई क्षेत्रों से लेकर दक्षिण भारत के राज्यों तक विस्तृत रूप में की जाती है। तरबूज की खेती हमारे देश में मुख्य रूप से राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश एव कर्नाटक में की जाती है।

तरबूज एक लो–कैलोरी वाला फल है, जो सिर्फ 16 किलो कैलोरी ऊर्जा प्रदान करता है। यह प्रोटीन और वसा का निम्न स्रोत है। इसीलिए मोटे व्यक्ति भी तरबूज का सेवन बिना वजन बढ़ने की चिंता के कर सकते हैं। यह उपयोगी विटामिन 'ए' एवं विटामिन 'सी' भी प्रदान करता है। तरबूज लौह तत्व का एक बढ़िया स्रोत है और लगभग 7.9 मि.ग्रा. लौह तत्व देता है। इसलिए तरबूज किशोरी, सगर्भा एवं धात्री माता के लिए लौह का एक अच्छा स्रोत है।

भूमि एवं जलवायु

तरबूजे की खेती मध्यम काली, रेतीली दोमट मृदा जिसमें प्रचुर मात्रा में कार्बनिक पदार्थ एवं उचित जल वाली भूमि में की जाती है। लेकिन बलुई दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त होती है। तरबूजा कद्दूवर्गीय की सब्जियों में एक ऐसी सब्जी है जिसकी खेती 5.00 पी०एच० मान मृदा अम्लता पर भी सफलतापूर्वक की जाती है। गुणवत्तायुक्त अच्छी उपज के लिए भूमि का पी०एच० मान 5.5 से 7.0 तक होना चाहिए। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा बाद की जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करते हैं। पानी कम या ज्यादा न लगे इसके लिए खेत को समतल कर लेते हैं। नदियों के किनारे बलुई मिट्टी में पानी की उपलब्धता के आधार पर नालियों एवं थालों को बनाया जाता है जिसे सड़ी हुई गोबर की खाद और मिट्टी के मिश्रण से भर देते हैं। गर्म एवं औसत आर्द्रता वाले क्षेत्र इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम होते हैं। बीज के जमाव व पौधों के बढ़वार के लिए 25–32° सेल्सियस तापक्रम उपयुक्त पाया गया है। नदी किनारे की रेतीली दोमट मृदा अच्छी मानी जाती है। तरबूज फल के मीठा होने के लिए गर्मी का मौसम उचित माना जाता है।

उन्नत किस्में

तरबूज की प्रमुख किस्मों एवं संकर में शुगर बेबी, अर्का मानिक, दुर्गापुर केसर, दुर्गापुर मीठा, नव किरण एवं अर्का ज्योति प्रमुख मानी जाती हैं। यह किस्में किसानों के बीच में लोकप्रिय है। इसके अलावा कई बहुराष्ट्रीय बीज कंपनियों के बीज किसानों में प्रचलित हैं। बुआई के लिए उपयुक्त प्रजाति का चयन बाजार में मांग, उत्पादन क्षमता एवं जैविक अथवा अजैविक प्रकोप की प्रतिकारक क्षमता पर निर्भर करता है।

खाद एवं उर्वरक

जैविक खाद के रूप में करते समय कम्पोस्ट या सड़ी गोबर की खाद 2 किग्रा० प्रत्येक नाली या थाले में डालते हैं। इसके अतिरिक्त 65 किग्रा० नत्रजन, 56 किग्रा फास्फोरस तथा 40 किग्रा पोटाश प्रति हे० की दर से देना। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा खेत में नलियाँ या थाले बनाते समय देते हैं। नत्रजन की आधी मात्रा दो बराबर भागों में बाँट कर खड़ी फलस में जड़ों से 30–40 से०मी० दूर गुड़ाई के समय तथा पुनः 45 दिन बाद देना चाहिए। नीम खली (नीम केक) 250 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर दे सकते हैं। जैविक उर्वरक एजोटोबॅक्टर 5 कि.ग्रा., पी.एस.बी. 5 कि.ग्रा. और ट्राइकोडर्मा 5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर रासायनिक उर्वरक प्रयोग से लगभग 10वें दिन के बाद देना उचित माना जाता है।

भूमि की तैयारी

गहरी जुताई के समय अच्छी तरह से विघटित गोबर या कम्पोस्ट खाद 15–20 टन प्रति हैक्टर मृदा में दें, ताकि खेत साफ, स्वच्छ एवं भुरभुरा तैयार हो। इससे अंकुरण प्रभावित हो सकता है।

बुआई का समय

उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में तरबूज की बुआई 10–20 फरवरी के बीच एवं नदियों के किनारे इसकी बुआई नवम्बर–जनवरी के बीच में की जाती है। दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान में मतीरा जाति के तरबूज की बुआई जुलाई महीनें में की जाती है। जबकि दक्षिण भारत में इसकी बुआई अगस्त से लेकर जनवरी तक करते हैं।

बीज की मात्रा

एक हेक्टेयर क्षेत्रफल के लिए 2.5–4 किलोग्राम पर्याप्त होता है और संकर किस्मों के लिए 750–875 ग्राम प्रति हैक्टर पर्याप्त होती है। बुआई के पहले बीज को कार्बेन्डाजिम फफूंदनाशक 1 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल में लगभग तीन घंटे तक डुबोकर उपचारित कर सकते हैं।

बुआई / रोपण की विधि

तरबूज की बुआई के लिए 2.5 से 3.0 मीटर की दूरी पर 40 से 50 से.मी. चौड़ी नाली बना लेते हैं। इन नालियों के दोनों किनारों पर 60 से-मी- की दूरी पर बीज बोते हैं। यह दूरी मृदा की उर्वरता एवं प्रजाति के अनुसार घट बढ़ सकती है। नदियों के किनारे 60 X 60 X 60 सेमी क्षेत्रफल वाले गड्ढे बनाकर उसमें 1:1:1 के अनुपात में मिट्टी, गोबर की खाद तथा बालू का मिश्रण भर कर थालें को भर देते हैं तत्पश्चात् प्रत्येक थालें में 3–4 बीज लगाते हैं।

सिंचाई

यदि तरबूज की खेती नदियों के कछारों में की जाती है तो सिंचाई की कम आवश्यकता नहीं पड़ती है। जब मैदानी भागों में इसकी खेती की जाती है, तो सिंचाई 7–10 दिन के अन्तराल पर करते हैं। जब तरबूज आकार में पूरी तरह से बढ़ जाते हैं तो सिंचाई बन्द कर देते हैं जिससे फल में मिठास हो जाती है और फल नहीं फटते हैं।

खरपतवार नियंत्रण एवं निराई गुड़ाई

तरबूज के जमाव से लेकर प्रथम 30–35 दिनों तक निराई गुणाई करके खरपतवार को निकाल देते हैं। इससे फसल की वृद्धि अच्छी होती है तथा पौधे की बढ़वार होती है। रासायनिक खरपतवारनाशी के रूप में बूटाक्लोर रसायन 2.0 किग्रा प्रति हे० की दर से बीज बुआई के तुरन्त बाद छिड़काव करते हैं। खरपतवार निकालने के बाद खेती की गुड़ाई करके जड़ों के पास मिट्टी चढ़ाते हैं जिससे पौधों का विकास तेजी से होता है।

तुड़ाई एवं उपज

तरबूज में तुड़ाई बहुत महत्वपूर्ण है। तरबूज के फल का आकार एवं डंठल के रंग को देखकर उसके पकने की स्थिति का पता लगाना बड़ा मुश्किल है। अच्छी प्रकार पके हुए फलों की पहचान निम्न प्रकार से की जाती है। जमीन से सटे हुए फल का रंग सफेद से मक्खनिया पीले रंग का हो जाता है। पके फल को थपथपाने से धब की आवाज आती है। इसके अलावा यदि फल से लगी हुई प्ररोह पूरी तरह सूख जाय तो फल पका होता है। पके हुए फल को दबाने पर कुरमुरा एवं फटने जैसा अनुभव हो तो भी फल पका माना जाता है। फलों को तोड़कर ठण्डे स्थान पर एकत्र करना चाहिए। दूर के बाजारों में फल को भेजते समय कई सतहों में ट्रक में रखते हैं और प्रत्येक सतह के बाद धान की पुआल रखते हैं। इससे फल आपस में रगड़कर नष्ट नहीं होते हैं और तरबूजों की ताजगी बनी रहती है। गर्मी के दिनों में सामान्य तापमान पर फल को 10 दिनों तक आसानी से रखा जा सकता है। औसतन तरबूज की उपज 400–500 क्वि./हे- होती है।

प्रमुख रोग एवं कीट

प्रमुख रोग

मृदुरोमिल आसिता

जब तापमान 25 डिग्री से०ग्रे० से उपर हो, तब यह रोग तेजी से फैलता है। उत्तरी भारत में इस रोग का प्रकोप अधिक है। इस रोग से पत्तियों पर कोणीय धब्बे बनते हैं। अधिक आर्द्रता होने पर पत्ती के निचली सतह पर मृदुरोमिल कवक की वृद्धि दिखाई देती है। इसकी रोकथाम के लिए बीजों को मेटलएक्सिल (कवकनाशी) से 3 ग्राम दवा प्रति किग्रा बीज के दर से उपचारित करके बोते हैं। इसके अलावा खड़ी फसल में मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) 2.5 ग्राम दवा 1 लीटर पानी में घोल कर छिड़कते हैं। पूरी तरह रोगग्रस्त लताओं को निकाल कर जला देते हैं तथा बीज उत्पादन के लिए रोग मुक्त पौधों का चयन करें।

चूर्णी फफूंद (चूर्णील आसिता)

पत्तियों और तनों की सतह पर सफेद या धुंधले धुसर रंग के धब्बों के रूप में दिखाई देता है। कुछ दिनों के बाद ये धब्बे चूर्णयुक्त हो जाते हैं। सफेद चूर्णित पदार्थ अन्त में समूचे पौधे की सतह को ढँक लेता है। उग्र आक्रमण के कारण पौधे से पत्तियाँ गिर जाती है। इसके कारण फलों का आकार छोटा रह जाता है। इसके रोक थाम के लिए रोगी पौधों को खेत में इकट्ठा करके जला देना चाहिए। बोने के लिए रोगरोधी किस्म का चयन करना चाहिए। फफूंद नाशक दवा कैलिक्सीन 1 मि०ली० दवा एक लीटर पानी में घोल बनाकर सात दिन के अन्तराल पर 1–2 छिड़काव करें।

तरबूज बड नेक्रोसिस

यह विषाणु जनित रोग है जो कि थ्रिप्स कीट द्वारा फैलता है। रोग ग्रस्त पौधों के उपरी भाग में पत्तियों तथा डंठलों पर छोटे–छोटे धब्बे बनते हैं जो कि उपर से सुखने लगते हैं। इसके अलावा पत्तियों पर काले तथा फलों पर छल्लेदार धब्बे बनते हैं। इस रोग से बचाव हेतु रोग रोधी किस्म की बुवाई करें तथा रोगी पौधों को उखाड़ कर जमीन में गाढ़ दें। क्यों कि रोग थ्रिप्स से फैलती है जो कि पत्तियों के निचली सतह पर बैठे रहते हैं। जब ये कीड़े शिशु अवस्था में हल्के पीले रंग के हो तब कानफिडोर नामक अर्न्तवाही दवा की 3 मिली० मात्रा 10 लीटर पानी में घोल कर छिड़कते हैं। दवा छिड़काव के 8–10 दिन बाद ही फलों की तुड़ाई करते हैं।

प्रमुख कीट

कुम्हड़ा का लाल कीट

ये कीड़े जनवरी–मार्च तक बहुत सक्रिय होते हैं। अक्टूबर तक इस कीड़े का प्रकोप रहता है। पौधे जमने के तुरंत बाद इस कीड़ों से ज्यादा नुकसान होता है। जिससे पौधा सूख जाता है। प्रौढ़ कीट पत्तियों का अधिक नुकसान पहुँचाती है। तथा ग्रब पौधा के जड़ों को नुकसान पहुँचाता है जिससे पुराने एवं बड़े पौधे पीले पड़ जाते हैं और उनकी बढ़वार रुक जाती है। यह कीड़ा नवम्बर–फरवरी की अवधि को छोड़कर पूरे साल सक्रिय रहता है। इसकी रोकथाम के लिए फसल अवशेषों को अच्छी तरह से जलाना और खेत की अच्छी तरह जुताई करना चाहिए। सुबह के समय प्रौढ़ अधिक सक्रिय नहीं होता है। अतः प्रौढ़ को हाथ से पकड़कर मार देना चाहिए। सुबह ओस पड़ने के समय राख का बुरकाव करने से भी प्रौढ़ पौधा पर नहीं बैठता जिससे नुकसान कम होता है। यदि इससे भी नियंत्रित नहीं हो तो मैलाथियान चूर्ण (5 प्रतिशत) या कार्बारिल (5 प्रतिशत) के 25 किग्रा चूर्ण प्रति हे० की दर से राख में मिलाकर सुबह पौधों पर बुरकना चाहिए या मैलाथियान (50 ई०सी०) 1.5 मिली/लीटर या कार्बारिल (50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण) 2 ग्राम/लीटर पानी का घोल बनाकर 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

जलवायु–स्मार्ट कृषि : सतत कृषि की और कदम

अंजु कँवर खंगारोत, कविता भादू, श्वेता गुप्ता, भीम पारीक, प्रतिभा सिंह, रामनिवास चौधरी, सीमा शर्मा एवं आर समौरिया
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

जलवायु–स्मार्ट कृषि (CSA) एक ऐसा दृष्टिकोण है जो सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) को प्राप्त करने के लिए कृषि एवं खाद्य प्रणालियों को ग्रीन और क्लाइमेट रेजिलियेंट प्रथाओं की ओर बदलने में मदद करता है ।

इसका मुख्य उद्देश्य है

2. वित्त, बीमा और बाजार तक सीमित पहुँच : किसानों के लिये CSA से जुड़ी नई तकनीकों एवं अभ्यासों में निवेश कर सकने के लिये वित्तपोषण महत्त्वपूर्ण है। वित्त, बीमा और बाजार तक पहुँच की कमी CSA को अपनाने में बाधक सिद्ध हो सकती है।
3. अपर्याप्त अवसंरचना और संस्थागत समर्थन : CSA की सफलता सहायक अवसंरचना और संस्थानों पर निर्भर करती है। इसमें सिंचाई प्रणालियाँ, भंडारण सुविधाएँ और विभिन्न संगठन शामिल हैं जो सहायता एवं मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं।
4. उच्च लागत और जोखिम : नई प्रौद्योगिकियों और अभ्यासों को अपनाने से संबंद्ध आरंभिक लागत किसानों के लिये एक महत्त्वपूर्ण बाधा सिद्ध हो सकती है। इसके अतिरिक्त, जोखिम की आशंका भी इसे अपनाने से हतोत्साहित कर सकती है।
5. नीति और नियामक बाधाएँ : जो नीतियाँ CSA का समर्थन या प्रोत्साहन नहीं करतीं, वे एक बड़ी बाधा सिद्ध हो सकती हैं। नियामक बाधाएँ भी CSA अभ्यासों के विस्तार की गति को मंद कर सकती हैं।

जलवायु–स्मार्ट कृषि को बेहतर ढंग से अपनाने के लिये उपाय :

1. क्षमता निर्माण और जागरूकता : प्रशिक्षण, प्रदर्शन, किसानों का परस्पर संपर्क और मास मीडिया के माध्यम से CSA के सिद्धांतों एवं अभ्यासों पर किसानों और विस्तार कार्यकर्ताओं की क्षमता एवं जागरूकता की वृद्धि करना।
2. वित्तीय और तकनीकी सहायता : CSA प्रौद्योगिकियों और नवाचारों को अपनाने के लिये किसानों को वित्तीय एवं तकनीकी सहायता (जैसे सब्सिडी, ऋण, बीमा, बाजार लिंकेज और डिजिटल प्लेटफॉर्म) प्रदान करना।
3. नीतिगत और संस्थागत सुदृढ़ीकरण: CSA को बढ़ावा देने और इसके स्तर को बढ़ाने के लिये नीतिगत एवं संस्थागत ढाँचे को सुदृढ़ करना, जैसे जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय एवं राज्य कार्य–योजनाओं में CSA को एकीकृत करना, एक समर्पित CSA फंड का सृजन करना और CSA समन्वय समिति की स्थापना करना।
4. हाशिये पर स्थित समूहों को भागीदारी के लिये प्रोत्साहित करना: CSA योजना–निर्माण एवं कार्यान्वयन में महिलाओं और हाशिये पर स्थित समूहों की भागीदारी एवं सशक्तीकरण को प्रोत्साहित करना, जैसे कि CSA समितियों में उनका प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना, उन्हें संसाधनों एवं अवसरों तक समान पहुँच प्रदान करना और उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं एवं प्राथमिकताओं को संबोधित करना।
5. नवाचार और सहकार्यता का समर्थन: संदर्भ–विशिष्ट एवं मांग–प्रेरित CSA समाधानों को विकसित करने और प्रसारित करने के लिये विभिन्न अभिकर्ताओं एवं क्षेत्रों के बीच नवाचार और सहकार्यता को बढ़ावा देना, जैसे कि भागीदारीपूर्ण अनुसंधान में किसानों को शामिल करना, सार्वजनिक–निजी भागीदारी का सृजन करना और बहु–हितधारक मंचों की सुविधा प्रदान करना।

अर्द्ध-शुष्कीय क्षेत्र में अनार की खेती : किसानों के लिए आय का स्त्रोत

मुकेश चंद भठेश्वर और ओम प्रकाश जितरवाल
वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

अनार पौष्टिक गुणों से परिपूर्ण, स्वादिष्ट, रसीला एवं मीठा फल है जिसे देश के शुष्क वातावरण वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसलिए इन क्षेत्रों में उगाये जाने वाले फलों में अनार का एक विशिष्ठ स्थान है। अभी हमारे देश में अनार का उत्पादन बहुत कम है। इसकी खेती मुख्यतः महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु एवं उत्तर प्रदेश राज्यों में की जाती। वर्तमान में अनार का कुल उत्पादन 3059450 टन हो रहा है। राजस्थान में अनार की बागवानी लगभग 790 हैक्टेयर में हो रही है। निर्यात की दृष्टि से भी यह फल बहुत ही महत्वपूर्ण है। खनिज एवं विटामिन की प्रचुर मात्रा होने से इसके फल रोगियों के आहार के लिए बहुत ही उपयुक्त माने गये है। इसके फल अनेक रोगों के उपचार में भी प्रयुक्त होते है। अनार के प्रति 100 ग्रा. फल में 6 ग्राम प्रोटीन, 0.1 ग्राम खनिज, 5.1 ग्रा. रेशा, 14.5 मि.ग्रा. कैल्शियम, 70 मि.ग्रा. फॉस्फोरस, 0.3 मि.ग्रा. लौह, 0.1 मि.ग्रा. राइबोफ्लेविन, 0.3 मिग्रा, नियासिन, 16 मि.ग्रा. विटामिन–सी होता है।

औषधीय गुण एवं उपयोग

प्रायः अनार के फल ताजे ही खाये जाते हैं। पके फल का रस मधुर तथा स्वास्थ्यवर्धक होता है। गर्मी के मौसम में अनार के रस का शर्बत बहुत स्फूर्तिदायक होता है। आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली में दीर्घ जीवन एवं अच्छे स्वास्थ्य के लिए अनार को औषधि माना गया है। अनार के फल सेवन करने से उदर के रोग व

विकार दूर होते है तथा शरीर में रक्त शोधन कार्य ठीक प्रकार से होता है। होम्योपैथी तथा यूनानी चिकित्सा पद्धतियां भी रोग मुक्ति के लिए अनार के फल को प्रकृति का बहुमूल्य उपहार मानती हैं। रोगियों तथा वृद्धजनों के लिए इसका फल एक समुचित आहार है।

भूमि और जलवायु

अनार का बाग लगाने के लिए 6.5 से 7.5 पी.एच. मान वाली गहरी बलुई–दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। इसके पौधों में लवण एवं क्षारीयता सहन करने की क्षमता होती है। अतः क्षारीय भूमि में भी इसकी खेती की जा सकती है। यही नहीं, लवणीय पानी से सिचाई करके भी अनार की अच्छी पैदावार ली जा सकती है। रेतीली मिट्टी में भी अनार से अच्छी उपज प्राप्त होती है परन्तु ऐसी मिट्टी में सूत्रकृमि की समस्या पायी जाती है। शुष्क एवं अर्ध–शुष्क जलवायु अनार उत्पादन के लिए बहुत ही उपयुक्त होती है। पौधों में सूखा सहन करने की अत्यधिक क्षमता होती है परन्तु फल विकास के समय नमी आवश्यक है। अनार के पौधों में पाला सहन करने की क्षमता होती है। फलों के विकास में रात के समय ठण्डक तथा दिन में शुष्क व गर्म जलवायु काफी सहायक होती है।

उन्नत किस्में

अनार के सफल उत्पादन के लिए किस्मों का चयन क्षेत्र की जलवायु, मिट्टी एवं पानी की गुणवत्ता के अनुसार करना उचित होता है। अच्छी गुणवत्ता एवं उत्पादन के लिए उन्नत किस्मों के ही पौधे लगाने चाहिए। वैसे तो भारत में अनार की अनेक किस्में उगाई जाती हैं परन्तु राजस्थान में भगवा, सुपर भगवा, जालौर सीडलैस, जोधपुर रेड, महाराष्ट्र में गणेश, कर्नाटक में बेसिन सीडलैस व ज्योति, गुजरात में धोलका और तमिलनाडु में वरकाड व कोयम्बटूर–१ किस्में अधिक प्रचलित है। हाल ही में कुछ नयी संकर किस्में, जैसे मृदुला, रुबी, भी विकसित की गई हैं। अनार के फलों से अनारदाना बनाने के लिए अधिक खटास वाली किस्में प्रयुक्त होती है।

अनार की कुछ महत्वपूर्ण किस्मों का वर्णन निम्न प्रकार है :– गणेश, जालौर सीडलैस, बेसिन सीडलैस, मस्कट, धोलका, मृदुला, रुबी

पौधे तैयार करना

बाग लगाने के लिए अच्छे किस्म के स्वस्थ व उन्नत पौधों की आवश्यकता होती हैं। पौधे बीज, कलम, गूटी एवं दाब लगाकर तैयार किये जा सकते हैं इनमें कलम (कटिंग) और गूटी विधियाँ प्रचलित हैं। बीजू पौधों की तुलना में कलमी पौधे शीघ्र फल देने लगते है। बीजू पौधों के विकास एवं फलन में भी काफी असमानता पायी जाती है। पौधे तैयार करने के लिए एक वर्ष पुरानी शाखाओं से प्राप्त 9–10 इंच लम्बी कलमों को 1000 पी.पी.एम. इन्डोल ब्यूटारिक एसिड (आईबी.ए) अथवा सेरेडेक्स–बी या रुटेक्स (जड़ विकसित करने वाले पौध नियामक) से उपचारित करके पौधशाला में लगाते हैं। पादप वृद्धि नियामक से उपचार करके कलमें रोपने पर कल्ले व जड़ें शीघ्र फूटती है तथा पौधे भी शीघ्र तैयार होते हैं। कलम लगाने के लिए फरवरी–मार्च अथवा जून–जुलाई का समय अत्यधिक उपयुक्त होता है। कलम लगाने के लिए बालू रेत, चिकनी मिट्टी व सड़ी हुई गोबर की खाद के बराबर मात्रा के मिश्रण से भरी हुई पोलिथीन की थैलियाँ (25×10 सेमी. आकार) भरकर तैयार कर लेते हैं। कलमें क्यारियों में भी लगाई जा सकता है।

पौधे लगाना

बाग लगाने से पूर्व जुताई करके खरपतवार व अवांछनीय झाड़ियाँ निकालकर खेत अच्छी तरह समतल कर ठीक प्रकार से बाग का रेखांकन करके उचित स्थान पर गड्ढे तैयार कर लिए जाते हैं। पौधे वर्गाकार या आयताकार विधि से 5×5 या 6.4 मीटर की दूरी पर लगाना ठीक रहता है। 60×60×60 सेमी. आकार के गड्ढे खोदकर, ऊपरी उपजाऊ मिट्टी में सड़ी हुई 10 कि.ग्रा. या दो टोकरी गोबर की खाद 50 ग्राम मिथाइल पैराथियान कीटनाशक चूर्ण मिलाकर उनको अच्छी तरह भर कर कुछ दिनों के लिए छोड़ देते है। जहां कम जल धारण क्षमता वाली बलुई मिट्टी हो वहां गड्ढे के भरते समय चिकनी मिट्टी भी मिलाना चाहिए। प्रत्येक गड्ढे में 10 क्रिया गोबर या मींगनी की सड़ी खाद एवं रसायनिक उर्वरक (100 ग्राम नत्रजन 50 ग्राम फास्फोरस, 50 ग्राम पोटाश) के मिश्रण डालने से पौधों की संस्थापना पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। बगीचा लगाने के लिए गड्ढे वर्षा पूर्व तैयार कर लेना चाहिए जिससे समय पर पौध रोपण किया जासके। पौध रोपण के लिए जुलाई–अगस्त का समय उत्तम रहता है।

सिंचाई एवं जल प्रबंध

पौध रोपण के बाद दो–तीन वर्ष तक अधिक देख–रेख की आवश्यकता होती है। अनार उत्पादन के लिए सिचाई की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। अच्छी गुणवत्ता एवं अधिक फल उत्पादन के लिए 10-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करना चाहिए। शुष्क क्षेत्रों में जहां पौधों के चारों तरफ की भूमि में 5 प्रतिशत की ढलान देकर वर्षा जल को एकत्रित करके उपयोग में लिया जा सकता है।

खरपतवार नियन्त्रण

अच्छी पौध वृद्धि तथा कीट एवं रोगों की रोकथाम के लिए अनार के बगीचे में खरपतवार नियन्त्रण करना अति आवश्यक है। निराई–गुड़ाई करके या खरपतवारनाशी रसायनों के प्रयोग से यह किया जा सकता है। खरपतवार निकलने से पूर्व 4-0 कि.मा. अट्राजिन या 5-0 कि.मा. डायुरान का प्रति हैक्टेयर में भुरकाव करके खरपतवार नष्ट कर सकते है। समय समय पर निराई गुड़ाई करके खरपतवार निकालते रहना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

पौधों में अच्छी बढ़वार फलत और गुणवत्ता के लिए उचित मात्रा में पोषक तत्व देना अति आवश्यक है। खाद एवं उर्वरक की मात्रा का निर्धारण मृदा परीक्षण द्वारा करना चाहिए। साधारणतया शुष्क क्षेत्र भूमि में पोषक तत्वों की कमी पायी गयी है इसलिए सुस्थापना के लिए पौध रोपण के समय प्रत्येक गड्ढे में 30-40 कि.ग्रा. तालाब की मिट्टी, 10-15 कि.ग्रा. भेड़ या बकरी की मींगनी तथा 10 प्रा.डी.ए.पी. का प्रयोग लाभदायक होता है।

सधाई एवं काट–छांट

अनार का पौधा झाड़ीनुमा होता है, इसलिए पौधों को उचित आकार व ढांचा देने के लिए सधाई एवं काट–छांट की नितान्त आवश्यकता होती है। अनार के पौधे से जमीन की सतह से कई नयी शाखायें (कल्ले) निकलते रहते है। यदि इन सबको रहने दिया जाये तो पेड़ में अनेक मुख्य तने बनने से इनमें कीट एवं रोगों के प्रकोप का भय रहता है। अतः प्रत्येक पौधे में जमीन की सतह से 3-4 मुख्य तनों को ही बढ़ने देना चाहिए।

बहार नियन्त्रण

अनार में वर्ष भर फूल आते रहते हैं। परन्तु फलत के तीन मुख्य मौसम हैं जिन्हें "अम्बे बहार" (जनवरी–फरवरी), "मृग बहार" (जून–जुलाई) और "हस्त बहार" (सितम्बर–अक्टूबर) कहते हैं। वर्ष में कई बार फूल आना व फल आते रहना उपज एवं गुणवता की दृष्टि से ठीक नहीं रहता। इसलिए अवांछित बहार का नियंत्रण करना अति आवश्यक है। अच्छी गुणवत्ता एवं उपज के लिए सिचाई की सुविधा तथा क्षेत्र की जलवायु के अनुसार कोई एक बहार की फसल लेना लाभदायक रहता है। इसके लिए बहार नियन्त्रण करना पड़ता है। बहार नियन्त्रण के लिए अवांछित बहार के समय सिचाई बंद कर देते हैं। यदि आवश्यक हो तो थालों की गहरी गुड़ाई करके कुछ समय के लिए जड़ों को खुला छोड़ देते हैं। कुछ रसायनों (थायोयूरिया, पोटेशियम आयोडायड, इत्यादि) के पर्णीय छिड़काव द्वारा भी पतझड़ लाकर यह कार्य किया जा सकता है। जिस बहार में फलत लेनी हो उससे ठीक एक माह पहले बाग में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग कर सिंचाई प्रारंभ कर देते हैं। इससे पौधों में वानस्पतिक वृद्धि, फूल आना तथा फल लगना शुरु हो जाता है। शुष्क क्षेत्र में पानी की कमी होने से प्रायः "मृग बहार" की फसल ही ली जाती है। इससे अधिकतर फल विकास वर्षा ऋतु में पूर्ण हो जाता है। कुछ अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में "अम्बे बहार" की फसल लेना ठीक रहता है क्योंकि अत्यधिक नमी के कारण इन क्षेत्रों में मृग बहार के फल रोग एवं कीटों के प्रकोप से खराब हो जाते हैं।

अन्तः सस्यन (इन्टरक्रापिंग)

बाग लगाने के प्रारंभिक तीन चार वर्षों तक पेड़ों की कतारों के बीच काफी जगह खाली रहती है जिसके समुचित उपयोग के लिए अन्तः सस्यन करते हैं। बाग के पूर्ण रुप से फलदायी होने तक इन खाली स्थानों में टमाटर, मटर, गोभी, मिर्च, बैंगन, इत्यादि सब्जियां तथा अन्य दलहनी फसलें जैसे लोबिया, ग्वार, मोठ मूंग इत्यादि लगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं।

रोग एवं कीट नियंत्रण

अनार के पौधों व फलों को रोगों व कीड़ों से काफी नुकसान होता है अतः इनकी रोकथाम करना बहुत आवश्यक है। प्रमुख रोगों के लक्षण, कीड़ों की पहचान एवं उनके नियन्त्रण के उपाय निम्नलिखित है–

पत्ती व फल धब्बा रोग–इस रोग का प्रकोप अधिकतर "मृग बहार" की फसल में होता है। वर्षा ऋतु में अधिक नमी के कारण पत्तियों और फलों के ऊपर फफूंद के भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। जिससे फलों के बाजार मूल्य में गिरावट आ जाती है। इसकी रोकथाम के लिए मैन्कोजेब (0-2%) या जाइनेब (0-2%) फफूंदनाशी दवा का 15-20 दिन के अंतराल पर तीन–चार बार छिड़काव धब्बे दिखाई पड़ते ही करने चाहिए। फल व पत्तियों पर बैक्टीरिया के कारण भी धब्बे पड़ जाते है जिनसे फल की गुणवत्ता खराब होती है।

फल सड़न रोग–इस रोग से फल सड़ने लगते हैं अतः रोग के लक्षण आने पर बेविस्टीन कवकनाशी के 0-1 प्रतिशत (1 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोल के दो तीन छिड़काव 15 दिनों के अन्तर पर करने चाहिए।

दीमक या उदई–शुष्क क्षेत्र में अनार के पौधों की जड़ों एवं तनों में दीमक का अत्यधिक प्रकोप होता है जिससे पौधे सूख जाते हैं। इस क्षेत्र में अनार की पौध स्थापना में दीमक का प्रकोप एक गंभीर समस्या है। इससे बचाव के लिए पौध रोपण के समय ही प्रत्येक गड्ढे के भरावन मिश्रण में 50 ग्राम मिथाइल पैराथियान चूर्ण (5%) मिलाना चाहिए। पौधों की प्रत्येक सिंचाई करते समय श्क्लोरोपायरिफासश (डरमेट) कीटनाशक दवा को 5-10 बूंद पानी के साथ थालों में देते रहना चाहिए। इस प्रकार दीमक से बचाव का प्रभावी तरीका अपना कर पौध स्थापना में अच्छी सफलता मिल सकती है।

अनार की तितली–यह अनार के फलों का सबसे हानिकारक कीट है। प्रौढ़ तितली द्वारा दिये गये अंडों से निकली सूण्डियां फलों को छेदकर अन्दर प्रवेश करती हैं तथा फल के गूदे को खाती रहती है। इसके नियंत्रण के लिए वर्षा ऋतु में फल विकास के समय 0.2 प्रतिशत डेल्टामेथ्रीन या 0.03 प्रतिशत फॉस्फोमिडान कीटनाशक दवा के घोल का 15-20 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करना लाभदायक पाया गया है।

तनाबेधक–वयस्क कीट नयी कोपलें, पत्तियां और टहनियां खाते हैं जबकि गिडार तने में सुराख बनाकर अन्तः ऊतक को नष्ट कर देते है। जिससे तना कमजोर हो जाता तथा पौधे सूखने लगते हैं। तनाबेधक कीट से बचाव के लिए 0.3 प्रतिशत डायक्लोरोवास घोल में भीगी रुई को कीट के प्रवेश द्वार में ठूंसकर गीली मिट्टी का लेप कर देते है। बाग प्रबन्ध के तरीकों तथा आवश्यक काट–छांट करके भी इन कीड़ों की रोकथाम की जा सकती है।

माइट–माइट अत्यन्त ही सूक्ष्म जीव है जो प्रायः सफेद एवं लाल रंग में पाये जाते है। ये जीव अनार की पत्तियों के ऊपरी एवं निचले सतह पर शिराओं के पास चिपक कर रस चूसते रहते है। माइट प्रसित पत्तियां ऊपर की तरफ मुड़ जाती है और पूर्ण ग्रसित होने की दशा में पौधा पत्ती रहित होकर सूख जाता है। माइट का प्रकोप होते ही पौधों पर एक्साइड दवा के 0.1 प्रतिशत घोल के दो छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।

सूत्रकृमि–सूत्रकृमि या निमैटोड अत्यन्त ही सूक्ष्म, घागेनुमा या गोल जीव होते है जो अनार की जड़ों में गांठे बना देती है। पौधों की पत्तियां पीली पड़ने लगती है तथा मुड़ने लगती है। पौधों का विकास बाधित हो जाता है तथा उपज प्रभावित होती है। सूत्रकृमि ग्रसित पौधों की जड़ों को खोद कर उसमें ५० ग्राम फोरेट 10 जी डालकर अच्छी तरह मिट्टी में मिलाकर सिचाई करना लाभदायक होता है।

फल तोड़ाई एवं उपज

फूल आने के लगभग 5-6 माह बाद फल पक कर तैयार हो जाते है कच्चे फल प्रायः हरे रंग के होते हैं। जब फलों के छिलकों का रंग पीला या लाल तथा दानों का रंग गुलाबी या लाल होने लगे तब उनकी तोड़ाई करनी चाहिए। रंग परिवर्तन के अतिरिक्त फलों के पक जाने पर उनकी सतह चमकीली एवं फल को ऊपर से दबाने पर कड़क आवाज आती है। प्रारंभिक अवस्था में अनार के पेड़ों से 15-25 फल ही प्राप्त होते हैं लेकिन एक पूर्ण विकसित पौधे की अच्छी देखरेख करने पर उससे 80-115 फल / पौधे तक प्राप्त किये जा सकते है।

तोड़ाई उपरान्त फल परिक्षण

अनार में खाने वाले भाग को 'एरिल' कहते हैं। फल की गुणवत्ता उसके दाने के आकार, रंग तथा एरिल की मात्र पर निर्भर करती है। दाने बड़े होने पर उनसे रस अधिक प्राप्त होता है। बाजार में अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिए फलों को तोड़ाई के पश्चात् 'अ' (350 ग्राम वजन या अधिक), 'ब' (200-350 ग्राम वजन) और 'स' (200 ग्राम से कम वजन) श्रेणी में छांट लेते हैं। कटे–फटे रोग ग्रस्त तथा छोटे फलों को छांटकर अलग कर लेना चाहिए। फलों को पैकिंग से पहले अच्छी तरह मसलीन कपड़े से साफ कर लेना चाहिए। 'ज' और 'ब' फलों को कार्टन (कागज के गत्ते वाले डिब्बों) में अखबार लगाकर अलग अलग ग्रेड के नुसार पैक करते है जबकि 'स' ग्रेड के फलों को कागज या सूखी घास की परत के साथ टोकरियों में पैक करके स्थानीय बाजार में बेच दिया जाता है। साधारण तापमान पर अनार के फलों को 20-25 दिनों तक भण्डारित करके रखा जा सकता है। अनार के रस को विभिन्न पेय पदार्थों के रुप में परिरक्षित कर सकते हैं। स्थानीय खट्टे किस्मों के दानों को धूप में सुखाकर अनारदाना बना सकते हैं जिसका प्रयोग विभिन्न व्यंजनों में किया जाता है।

टमाटर नर्सरी विकास : राजस्थान में टमाटर की अच्छी फसल के लिए मार्गदर्शिका

आकांक्षा, एस. के. गोयल एवं शैलेश गोदिका
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

राजस्थान की जलवायु मुख्य रूप से अर्ध–शुष्क से शुष्क है, जिसकी विशेषता अत्यधिक तापमान में उतार–चढ़ाव, कम और अनियमित वर्षा और राज्य भर में वर्षा में व्यापक भिन्नता है, जिससे कृषि के लिए यह चुनौती पूर्ण हो जाता है क्योंकि अधिकांश फसलें वर्षा आधारित खेती पर निर्भर होती हैं। पश्चिमी भाग अत्यधिक शुष्क हैं जबकि दक्षिण–पूर्व में अपेक्षाकृत अधिक आर्द्रता का अनुभव होता है, जिसके परिणाम स्वरूप राज्य के भीतर विविध कृषि–जलवायु क्षेत्र हैं। राजस्थान में, टमाटर की खेती मुख्य रूप से जयपुर जिले में केंद्रित है, जिसका एक महत्वपूर्ण क्षेत्र टमाटर उत्पादन के लिए समर्पित है, जो इसे राज्य के भीतर टमाटर की खेती के लिए अग्रणी क्षेत्र बनाता है। टमाटर की अच्छी फसल लेने और मुनाफा कमाने के लिए रोग मुक्त टमाटर नर्सरी का उत्पादन बहुत जरूरी है। यदि सब्जियों के छोटे बीज सीधे खेत में बोए जाते हैं, तो अंकुरण आमतौर पर कम होता है और युवा पौधा भी बहुत धीरे–धीरे बढ़ता है और परिपक्व होने के लिए बहुत समय की आवश्यकता होती है।

टमाटर की फसल में नर्सरी के कुछ फायदे नीचे दिए गए हैं :

1. नर्सरी पौध को अनुकूल विकास परिस्थितियाँ पैदा करने की क्षमता प्रदान करती है अर्थात विकास के साथ ही अंकुरण भी कराती है।
2. छोटे पौधों की बेहतर देखभाल करें क्योंकि यह देखना आसान है कि जब नर्सरी थोड़ी सी जगह में हो तो रोग जनक संक्रमण, कीट और खरपतवार से बचाव होता है।
3. नर्सरी तैयार करके उगाई गई फसल काफी जल्दी तैयार हो जाती है और बाजार में इसकी कीमत भी बेहतर होती है और इस प्रकार यह आर्थिक रूप से अधिक लाभदायक होती है।
4. भूमिऔर श्रम की बचत होती है क्योंकि मुख्य खेत पर कम समय के लिए फसल लगी रहती है। इस प्रकार अक्सर गहन फसल चक्र अपनाया जाता है।
5. नर्सरी अलग से उगाये जाने के कारण मुख्य खेत की तैयारी के लिए अधिक समय मिल जाता है।
6. चूंकि सब्जियों के बीज बहुत महंगे हैं, विशेष रूप से संकर, उन्हें नर्सरी में बो कर बीज की लागत कम की जा सकती है। तो नर्सरी में टमाटर की पौध तैयार करने से हमें बहुत सारे फायदे होते हैं। लेकिन एक अच्छी नर्सरी बनाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात है नर्सरी के लिए सही जगह का चुनाव करना।

नर्सरी उगाने के लिए स्थल चयन के मानदंड :

1. उचित धूप वाले अच्छे जल निकास वाला क्षेत्र चुनें।
2. सरल सिंचाई के लिए नर्सरी जल आपूर्ति से संबंधित होनी चाहिए।
3. क्षेत्र को पालतू जानवरों और जंगली जानवरों से बचाया जाना चाहिए।
4. कार्बनिक पदार्थ से भरपूर बलुई दोमट और दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है।
5. चयनित क्षेत्र की मिट्टी रोग जनकों और कीटों से मुक्त होनी चाहिए।
6. हर साल नर्सरी बिस्तर की तैयारी के लिए एक ही जगह का उपयोग करने से बचें।

टमाटर की रोगमुक्त नर्सरी तैयार करने की प्रक्रिया या विधि :

एक हेक्टेयर क्षेत्र में नर्सरी तैयार करने के लिए संकर किस्मों के लिए 200–250 ग्राम बीज तथा अन्य किस्मों के लिए 350–400 ग्राम बीज पर्याप्त होते हैं। सबसे पहले बीजोपचार करना चाहिए. क्योंकि बीज उपचारित करने से फसल की गुणवत्ता तो बढ़ेगी ही, साथ ही पैदावार भी बढ़ेगी। बीजों को एंटीफंगल थिरम या कैप्टान, 2.5 ग्राम/किग्रा बीज से उपचारित करें। बीजों को ट्राइकोडर्मा विराइड/4 ग्राम/किग्रा या स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस/10 ग्राम/किग्रा बीज से उपचारित करें, ऊंचे नर्सरी बेड में बीज पंक्तियों को 10–15 सेमी की दूरी पर रखें और इसे मिट्टी सेढक दें। प्रतिदिन पानी देना चाहिए। गर्मी सहन करने वाली किस्में चुनें। उच्च तापमान में पनपने के लिए जानी जाने वाली टमाटर की किस्मों का चयन करें, जैसे "रोमावी.एफ.", " हेलिया", "अर्काविकास" या अन्य स्थानीय रूप से अनुशंसित विकल्प।

प्रक्रिया :

1. भूमि की गहरी जुताई करें और ढेलों तथा ठूंठों को हटा दे
2. 3 फीट X 18 फीट X 1 फीट आकार के चार बिस्तर तैयार करें। फ्यूराडान–3 जी 15 ग्राम प्रति क्यारी के हिसाब से मिलाएं (बीज को चींटियों और दीमकों से बचाने के लिए)। अच्छी तरह से विघटित FYM (या) वर्मी कम्पोस्ट / 15–20 किग्रा प्रति क्यारी (बीज क्यारी को अच्छी तरह भुरभुरा बनाने के लिए) । बीज क्यारी में ताजी खाद का प्रयोग न करें क्योंकि इससे अंकुर जल जाते हैं।
3. बिस्तर के ऊपर उंगली (या) लकड़ी की छड़ी का उपयोग करके 4 सेमी पर रेखाएं बनाएं। अलग–अलग (लाइन से लाइन तक) 1 सेमी की गहराई के साथ।
4. बीज को लाइनों में बोएं, जलवायु के आधार पर, वसंत की फसल के लिए ठंडे महीनों (अक्टूबर–नवंबर) के दौरान या ग्रीष्म कालीन फसल के लिए मार्च–अप्रैल में नर्सरी में बीज बोएं। अधिक भीड़ से बचने के लिए बीजों को उचित दूरी पर बोएं। किस्म के उपयोग और उसकी वृद्धि की आदत के आधार पर, 60 X 30 सेमी या 75 X 60 सेमी या 75 X 75 सेमी की दूरी का उपयोग करें।

5. अंकुर की गहराई : बीजों को उथली गहराई पर बोएं और हल्के से मिट्टी से ढक दें। नर्सरी में बीज को 4 सेमी की गहराई पर बोएं।
6. एक हल्की सिंचाई करें. लगातार नमी प्रदान करें, विशेष रूप से अंकुरण के दौरान, लेकिन जलभराव से बचें। रोपाई के 3-4 दिन बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए। सिंचाई अंतराल मिट्टी के प्रकार और वर्षा के अनुसार होना चाहिए, खरीफ के दौरान 7-8 दिन, रबी के दौरान 10-12 दिन और गर्मियों के दौरान 5-6 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। टमाटर में फूल और फल का विकास महत्वपूर्ण चरण हैं, इसलिए इस अवधि के दौरान पानी की कमी नहीं होनी चाहिए। टमाटर पानी के प्रति बहुत संवेदनशील है। लंबे समय तक सूखे के बाद भारी सिंचाई करने से फलों में दरारें पड़ जाती हैं। इसलिए इससे बचना चाहिए।

पौध उगाना :

डैम्पिंग–ऑफ रोग से बचने के लिए नर्सरी को 15 दिनों के अंतराल पर 2.5 ग्राम / लीटर पानी की दर से कॉपर ऑक्सीक्लोराइड से सराबोर करें। कार्बोफ्यूरान 3जी10 ग्राम / वर्ग मीटर पर लगाएं। बुआई के समय युवा पौध को पर्याप्त पानी की आवश्यकता होती है। पौध को सख्त करने के लिए रोपाई से 1 सप्ताह पहले पानी कम कर दें। नर्सरी में बीज बोने के बाद, क्यारी को 400 मेश नायलॉन नेट या पतले सफेद कपड़े से ढक दें। यह पौधों को कीट–रोग के हमले से बचाने में मदद करता है। संक्रमण की जाँच के लिए ग्रीस और चिपचिपे तेल से लिपटे पीले चिपचिपे जाल का उपयोग करें। सफेद मक्खी के फैलाव को नियंत्रित करने के लिए, प्रभावित पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें। गंभीर संक्रमण के मामले में, एसिटामिप्रिड 20 एसपी / 80 ग्राम / 200 लीटर पानी याट्रा यजोफॉस / 250 मिली / 200 लीटर या प्रोफेनोफॉस / 200 मिली / 200 लीटर पानी का छिड़काव करें। 15 दिनों के बाद छिड़काव दोहराएं। टमाटर मोजेक वायरस हटाने के लिए रोपाई के काम से पहले और बाद में, औजारों को 5 मिनट केलिए उबलते पानी में रखें और फिर किसी तेज साबुन या ब्लीच से धोएँ।

ट्रे विधि :

1. प्रोट्रे में प्रति ट्रे 1.2 किलोग्राम कोकोपीट की दर से कोकोपीट भरें।
2. उपचारित बीजों को 1 बीज प्रति कोशिका की दर से प्रोट्रे में बोयें।
3. बीज को कोकोपीट से ढक दें और ट्रे को एक के ऊपर एक रखें और अंकुरण शुरू होने तक (5 दिन) पॉलिथीन शीट से ढक दें।
4. 6 दिनों के बाद, अंकुरित बीजों के साथ प्रोट्रेट्स को छायादार जाली के अंदर ऊंची क्यारियों पर रखें। रोपाई के लिए उपयुक्त टमाटर का पौधा 7.5 सेमी से 10 सेमी ऊंचाई का होता है और इस का तना अच्छा मजबूत होता है। बुआई के लगभग 25–30 दिन बाद पौधे रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं। 5–6 असली पत्तियों वाले पौधे बुआई के 4 दिनों के भीतर रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं।

कठोरता :

पौधों को खेत की परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिए रोपाई से कुछ दिन पहले धीरे–धीरे पानी देना कम कर दें। पौधों को मजबूत बनाने के लिए उन्हें धीरे–धीरे अधिक धूप में रखें।

1. टमाटर की फसल की रोपाई सीधे खेत में बीज बोने के बजाय पौध का उपयोग करके करनी चाहिए।
2. नर्सरी उगाने के लिए उचित धूप और सिंचाई सुविधा वाले अच्छे जल निकास वाले क्षेत्र का चयन करें।
3. जगह की उपलब्धता के अनुसार हम रेज्ड बेड विधि या ट्रे विधि से नर्सरी उगा सकते हैं ।
4. रोपाई के लिए लगभग 25–30 दिन पुरानी पौध का उपयोग करना चाहिए।

हल्दी की अंतरफसल खेती एवं प्रसंस्करण से अधिक मुनाफा

दिलीप सिंह एवं सुभाष चंद यादव
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

हल्दी मसाले वाली एक फसल, जिसकी खेती के लिए विशेष देखरेख की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि यह हर प्रकार की जमीन में आसानी से हो जाती है। इसको छायादार स्थानों में तथा बड़े वृक्षों के नीचे जहां अन्य फसलें नहीं उग पाती, वहां भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। कृषि बागवानी पद्धति में हल्दी को आम, अमरूद, चीकू, केला, आंवला, कटहल और महुआ आदि पेड़ों की छाया में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसके अलावा मक्का, अरहर, मिर्च, टमाटर और बैंगन के साथ भी अंतः वृत्तीय फसल के रूप में उगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। घरेलू आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस फसल को गृह वाटिका में भी उगाया जा सकता है। अच्छी किस्मों की अनुपलब्धता, तकनीकी जानकारी एवं सिंचाई के साधन के अभाव के कारण क्षेत्र में इसकी खेती का प्रसार नहीं हो पाया। अतः ऐसे क्षेत्रों में हल्दी की खेती को बढ़ावा देकर किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है। अन्य फसलों की अपेक्षा मसालों की खेती प्रति इकाई क्षेत्रफल अधिक आमदनी देती है। हल्दी का दैनिक जीवन में मसाले में उपयोग के अतिरिक्त इसको प्राकृतिक रंग के रूप में अन्य व्यंजनों एवं मिठाई आदि को रंग देने में प्रयोग किया जाता है। आजकल सौंदर्य प्रसाधन उद्योग एवं आयुर्वेदिक दवाइयों में भी इसका काफी महत्व है। पोषण की दृष्टि से भी इसका सेवन लाभकारी है। भारत विश्व में सबसे बड़ा हल्दी उत्पादक देश है, वर्तमान में भारत में लगभग 350,000 हेक्टेयर क्षेत्रफल से लगभग 1334000 टन उत्पादन व राजस्थान में 190 हेक्टेयर क्षेत्रफल से लगभग 1230 टन उत्पादन । हल्दी का विभिन्न रूपों में भारत से अन्य देशों को निर्यात किया जाता है।

हल्दी के औषधीय गुण

इसका उपयोग कफ विकार, त्वचा रोग, रक्त विकार, यकृत विकार, प्रमेह व विषम ज्वर में लाभ पहुंचाता है। हल्दी को दूध में उबालकर गुड़ के साथ पीने से कफ विकार दूर होता है। खांसी में इसका चूर्ण शहद या घी के साथ चाटने से आराम मिलता है। चोट ,मोच , ऐंठन या घाव पर चूना, प्याज व पिसी हल्दी का गाढ़ा घोल हल्का गर्म करके लेप लगाने से दर्द कम हो जाता है। इसका उबटन लगाने से त्वचा रोग दूर होते हैं, साथ ही शरीर कांतिमान हो जाता है। हल्दी में 6.3% प्रोटीन, 5.1% वसा, 69.4% कार्बोहाइड्रेट, 2.6% रेशा एवं 3.5% खनिज लवण, वोलेटाइल ऑरेंज लाल तेल 2.0–6.5, कुरकुमीन 3.0 – 7.3, ओलियो रेजिन 4.0 – 16 प्रतिशत पाया जाता है।

उन्नतशील किस्में

सुरोमा – 200 से 250 दिन में तैयार, ताजा कंदो की औसत उपज 200 – 225 व सूखे कंदो की उपज 50 क्विंटल प्रति हेक्टेयर किस्म में रोग कम लगते हैं। कंदो में 9.3 कुरक्यूमिन एवं 4.4 प्रतिशत सुगंधित तेल पाया जाता है।

सोनिया – पूर्ण धब्बा रोग रोधी ताजा कंदो की औसत उपज 275 से 285 व सूखे कंदो की 46 से 50 क्विंटल प्रति हेक्टेयर, फसल अवधि 230 दिन, कंदो में 8.4 प्रतिशत कुरक्यूमिन होता है।

सुगंधम – फसल अवधि 210 दिन, ताजे कंदो की औसत उपज 200 से 225 क्विंटल प्रति हेक्टेयर।

सुगुना – कंद मोटे एवं गूदे युक्त, ताजे कंदो की औसत उपज 280 से 290, सूखे कंदो की उपज 62 से 75 क्विंटल प्रति हेक्टेयर।

रोमा – 255 दिन में तैयार, कंदो की औसत उपज 200 से 225 व सूखे कंद 65 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होते हैं।

अन्य किस्में –पंत पीताभ , सोनाली, केडाराम, प्रतिभा, प्रभा, सुदर्शना, स्वर्णा, ऐलप्पी सुप्रीम, सी.ओ.1, बी.एस.आर.1, रंगा, रश्मि, राजेंद्र सोनिया, सी.एल. 326 माईदुकुर, सी.एल.327 ठाकुरपेट, कस्तूरी आदि।

भूमि का चुनाव एवं खेत की तैयारी

इसकी खेती सभी प्रकार की भूमि में संभव है परंतु जल निकास युक्त जीवांश युक्त दोमट एवं हल्की दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी जाती हैं। इसको छायादार एवं फलदार वृक्षों के नीचे आसानी से उगाया जा सकता है भूमि का पीएच 5 से 7.5 उपयुक्त रहता है। खेत की 3–4 बार जुताई करके भुरभुरा व समतल किया जाता है। खेत की अंतिम जुताई के साथ 300 से 350 क्विंटल गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर खेत में मिला देनी चाहिए ।

जलवायु

ऐसे क्षेत्र जहां 100 से 120 दिन वर्षा वाले हो तथा 120 से 140 सेंटीमीटर वार्षिक वर्षा हो उपयुक्त रहते हैं। समुंद्र तल से 450 से 900 मीटर ऊंचाई वाले क्षेत्रों में खेती होती है। हल्दी एक उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र की फसल है। तापक्रम अंकुरण के लिए 30 से 35, कल्ले निकलते समय 25 से 30, प्रकंद बनने हेतु 20 से 30 तथा कंदो की मोटाई हेतु 18 से 20 डिग्री सेंटीग्रेड उपयुक्त रहता है।

बुवाई का समय

जून के प्रथम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक बुवाई करना उत्तम है।

बीज की मात्रा एवं बुवाई की विधि

बीज के लिए स्वस्थ, सुडोल एवं रोग रहित 18 से 20 क्विंटल प्रकंद का चुनाव करें प्रति हेक्टेयर बुवाई के लिए आवश्यक रहती है। बुवाई पूर्व प्रकंदों को 15 से 20 ग्राम के टुकड़े जिन पर दो से तीन स्वस्थ आंखें हो में काटना चाहिए। बुवाई से पूर्व इन टुकड़ों को कवकनाशी मैनकोजेब 2.5 ग्राम एवं कार्बेंडाजिम 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर आधा घंटा डुबोते हैं, बाद में छाया में सुखाते हैं। इसकी बुवाई के लिए 45 सेंटीमीटर की दूरी पर मेंडें बना ली जाती हैं और इन मेड़ों पर 5 सेंटीमीटर गहरी नाली में 20 सेंटीमीटर की दूरी पर बुवाई की जाती है वह बाद में प्रकंदों को ढक देते हैं। बुवाई के बाद मेड़ों को 125 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पलाश, शीशम या आम की सूखी पत्तियों से 5–6 सेंटीमीटर मोटी परत से ढक देना चाहिए, दूसरी बार अंकुरण के बाद बोने के 45 से 50 दिन बाद आसानी से गलने वाली दलहनी पौधों की पत्तियों से ढकना चाहिए जिससे खेत में नमी बनी रहती है ।

खाद एवं उर्वरक

खेत की अंतिम जुताई से पूर्व 300 से 350 क्विंटल प्रति हेक्टेयर सड़ी गोबर की खाद मिलाते हैं, साथ ही भूमि की जांच के आधार पर 250 किलो डीएपी एवं 100 किलो मयूरेट ऑफ पोटाश प्रति हेक्टेयर अंतिम जुताई के समय खेत में अच्छी तरह मिलावे ।

सिंचाई

जून में बोई गई फसल में वर्षा से पूर्व एक सप्ताह के अंतराल पर सिंचाई तथा बरसात समाप्त होने पर व सर्दियों में 15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करते हैं ।

खड़ी फसल में खाद देना एवं मिट्टी चढ़ाना

फसल की प्रारंभिक अवस्था में निराई गुड़ाई करके खरपतवार ना होने दें। जब हल्दी के पौधे 30 –40 दिन के हो जाएं तब 100 किलोग्राम यूरिया प्रति हेक्टेयर देकर मेड़ों पर मिट्टी चढ़ाते हैं, पुनः 3 महीने की फसल पर 100 कि.ग्रा. यूरिया व 100 किलोग्राम मयूरेट ऑफ पोटाश देकर मेड़ों पर मिट्टी चढ़ाते हैं ।

फसल चक्र

हल्दी कंद वाली फसल होने के कारण भूमि से अधिक मात्रा में पोषक तत्व लेती है, अतः भूमि की उर्वरा शक्ति बनाए रखने के लिए सिंचित क्षेत्रों में गर्मियों में चवला, उडद या मूंग की फसल के बाद हल्दी की फसल लें।

खुदाई

जब पौधों की पत्तियां पीली होकर सूखने लगती हैं तब फसल खुदाई योग्य हो जाती है। किस्मों के अनुसार 8 से 9 महीने में फसल तैयार हो जाती है सावधानी से खुदाई करें जिससे औजारों से प्रकंद कटे नहीं । खुदाई के बाद प्रकंदो को अच्छी तरह साफ करना चाहि । जनवरी से मार्च के मध्य खुदाई की जाती है।

बीमारियां एवं कीट

लीफ ब्लाच (*टेफ्रिना मैकुलान्स* **)** – पत्तियों पर पीले रंग के छोटे अंडाकार, चौकोर तथा बिखरे हुए धब्बे दिखाई देते हैं। प्रबंध हेतु ब्लोटॉक्स 3 ग्राम या मैनकोजेब की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें ।

पत्ती धब्बा रोग (*कोलीटोट्राईकम स्पेसीज* **)** – रोगी पौधों की नई पत्तियों पर विभिन्न प्रकार के भूरे धब्बे ऊपरी सतह पर दिखाई देते हैं। गांठों का विकास ठीक तरह से नहीं हो पाता है । रोकथाम हेतु ब्लोटॉक्स 3 ग्राम या मैनकोजेब 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें ।

गांठों का सड़न रोग (*राइजोम रोट पाइथियम एफानिडर्मेटम* **)**– रोग का प्रकोप खेत व भंडारण दोनों में होता है। गांठें अंदर से सड़ जाती हैं । गांठों को भंडारण तथा बुवाई पूर्व मैनकोजेब 2.5 ग्राम एवं कार्बेंडाजिम 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल में डुबोकर 1 घंटे तक उपचारित करें। मिट्टी को कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.3% घोल से ड्रेंच करे, मिट्टी में स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस पाउडर 2.5 किलोग्राम ध हेक्टेयर मिलावे, खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखने पर मैनकोजेब 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें ।

पत्ती छेदक कीट (*कोनोजेथोस पंक्टीफरेलिस* **)**– कीड़े कोमल तने सुडोस्टम में घुसकर इन्हें अंदर से खाते हैं, जिससे पौधे पीले पढ़कर सूखने लगते हैं। प्यूपा स्टेज तने में होती है, फसल अवधी में 6–7 बार जीवन चक्र चलता है रोकथाम हेतु डाइमथोएट 30 ई.सी. की 1 मिलीलीटर या मैलाथियान 50 ई.सी. या कुनालफोस 25 ई.सी. या ट्राइजोफोस 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर जुलाई से अक्टूबर तक 1 माह के अंतराल पर छिड़काव करें।

पत्ती लपेटक कीट (*Udaspes folus*)– की सुंडियां पत्ती को मोड़ कर उसके अंदर क्षति पहुंचाती हैं प्यूपा स्टेज पोधो पर होती है, प्राकतिक शत्रु ट्राइकोग्रामा हैं। रोकथाम हेतु कुनालफोस 25 ई.सी. दवा की 2 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाक छिड़काव करें।

राइजोम स्केल (*एस्पीडैला हारटी*) –खड़ी फसल और भण्डारण में नुकसान करता है पौधा पीला पढ़कर सूखने लगता है। भण्डारण में कंदों पर सफेद रंग की परत विशेषकर कलिकाओं के पास दिखती है। खुदाई के समय पौधों पर छोटे पीले कीड़े नजर आते हैं। रोकथाम हेतु बोने के लिए स्वस्थ कंद काम में लेते हैं, कंदो को डाइमथोएट 30 ई.सी. की 1.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से घोल में 15 मिनट् डुबोये,बाद में छाया में एक सप्ताह सुखाते हैं।

लैस विंग बग (*स्टेफांसि टाइपीकस*) – शिशु व् प्रौढ़ पत्तियों से रस चूसते हैं ,पत्तियां पीली पड़कर सूखकर गिरने लगती हैं । रोकथाम हेतु डाईमथोएट 30 ई.सी. या मैलाथियान 50 ई.सी. की 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। स्टेफांसि टाइपीकस

थ्रिप्स (*पानचीटोथ्रिप्स इंडीकस*) – पत्तियों के नीचे रस चूसते हैं ,पत्तियां ऊपर की तरफ मुड़ जाती हैं रोकथाम हेतु डाइमथोएट 30 ई.सी. या मैलाथियान 50 ई.सी. की 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के साथ दर से छिड़काव करें ।

पैदावार

कच्ची हल्दी की पैदावार 200 से 225 क्विंटल एवं सूखने पर 50 से 65 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक मिल सकती है ।

हल्दी का बीज के लिए भंडारण

भंडारण के लिए ऊंची जगह जहां पानी नहीं ठहरता हो वहां एक घन मीटर साइज का गड्ढा खोदते हैं। भंडारण पूर्व हल्दी को मैनकोजेब 2.5 ग्राम और कार्बेंडाजिम 1 ग्राम और मेलाथियान 0.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 30 मिनट उपचारित करने के बाद छाया में एक घंटा फैलाकर सुखाते हैं। जमीन की सतह पर रेत बजरी की 5 सेंटीमीटर मोटी परत नीचे डालें, परत पर बाद में गड्ढे में हल्दी भरते हैं । हल्दी के ऊपर सूखी हल्दी की पत्तियां डाल देते हैं । गड्ढे को ऊपर से लकड़ी के तख्ते से ढक देते हैं, तख्ते में एक छोटा सा छेद कर देते हैं तथा छेद को छोड़कर शेष भाग को मिट्टी से ढककर गोबर से लीप देते हैं। इस तरह बीज को 4 से 5 माह तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

प्रसंस्करण– ताजी गांठों से हल्दी पाउडर तैयार करना

घरेलू स्तर पर कच्ची हल्दी पाउडर बनाने की विधि

खुदाई के बाद प्रकंदो से जड़ों को साफ कर पानी से अच्छी तरह धोकर मिट्टी साफ कर लोहे की कढ़ाई यह मिट्टी के घड़ों में पानी में थोड़ा गाय का गोबर या खाने वाला चूना (सोडियम बाई कार्बोनेट) 20 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी की दर से डालकर प्रकंदो को मुलायम होने तक उबालते हैं । ऐसा करने से हल्दी का रंग अधिक आकर्षक हो जाता है। जब सफेद झाग आने लगे तथा महक आने लगे तो उबले प्रकंदो को साफ फर्श पर फैलाकर 2 से 3 घंटे ठंडा करते हैं। बाद में प्रकंदो का बाहरी छिलका साफ कर कुचल दें एवं 7 से 8 दिन के लिए धूप में सुखा लें। इसके बाद पीसकर पॉलिथीन की थैली या बर्तन में भंडारित करें।

हल्दी बनाने की उन्नत व व्यापारिक विधि

खुदाई के बाद प्रकंदों को धोकर साफ कर लेते हैं और दो–तीन दिन तक सुखाते हैं, बाद में 45 से 60 मिनट तक पानी में उबालते हैं जिससे हल्दी की एक विशेष गंध आने लगती है तथा पानी की सतह पर झाग भी दिखाई देते हैं । उबालते समय खाने वाला सोडा (सोडियम बाई कार्बोनेट) 10 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी के हिसाब से मिला देते हैं इससे रंग और भी अच्छा हो जाता है प्रकंदो को कम उबालने से हल्दी अच्छी नहीं होती है तथा ज्यादा उबालने से रंग बिगड़ जाता है । उबले हुए प्रकंदों को धूप में जब तक सुखाएं जब तक तोड़ने पर उसमें खट की आवाज ना आने लगे ।हल्दी का प्राकृतिक रंग बना रहने के लिए इसे मोटी परतों (5 से 6 सेंटीमीटर) में बांस की चटाई पर सुखाते हैं । कंदो को आकर्षक बनाने के लिए 100 किलोग्राम हल्दी में 40 ग्राम फिटकरी, 2 किलोग्राम हल्दी का बारीक पाउडर, 140 मिलीलीटर अरंडी का तेल, 30 ग्राम खाने का सोडा तथा 30 मिलीलीटर नमक का तेजाब का मिश्रण बनाकर ड्रम में रंगाई करते हैं । इस तरह रंगी गई हल्दी ड्रायर में 60 डिग्री सेंटीग्रेड पर सुखाकर भंडारित करते हैं।

अमीनो अम्ल युक्त नैनो फर्टिलाइजर का लाभ : बढ़ेगी उत्पादकता

महेंद्र मीना[1], मधु बाई मीना[2] एवं सागर सैनी[1]

[1]श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

[2]महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर

जोबनेर कृषि विवि के डॉ. महेन्द्र मीना ने नई जैविक नैनो तकनीक का विकास किया है। भारत सरकार ने जोबनेर कृषि विवि की इस तकनीक को 20 वर्ष के लिए ग्रांट किया है। भारत में प्रतिवर्श हजारो टन रसायनों का उपयोग अधिक उत्पादन पाने के लिए किया जा रहा है। रसायनों का अत्यधिक और अनुचित उपयोग मृदा, मृदा सूक्ष्मजीवों, पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर गंभीर नकारात्मक प्रभाव डालता है। ये रसायन मृदा की उर्वरकता को घटाते हैं, सूक्ष्मजीवों की विविधता और गतिविधियों को नुकसान पहुँचाते हैं, और मृदा प्रदूषण का कारण बनते हैं। इसके अलावा, ये जल स्रोतों को भी प्रदूषित करते हैं, जिससे जल जीवन और जैविक विविधता पर प्रभाव पड़ता है। रसायन खाद्य पदार्थों में अवशेष के रूप में मिलते हैं, जो खाद्य सुरक्षा को खतरे में डालते हैं। इसलिए, कृषि रसायनों का सीमित और सावधानीपूर्वक उपयोग करने की आवश्यकता है ताकि इन हानिकारक प्रभावों से बचा जा सके। जैविक नैनो तकनीकें कृषि उत्पादन और फसल की गुणवत्ता में सुधार के लिए अत्यधिक लाभकारी साबित हो रही हैं। ये तकनीकें नैनो स्तर पर पौधों के स्वास्थ्य को बढ़ावा देती हैं, जैसे कि पोषक तत्वों की बेहतर अवशोषण क्षमता, सूक्ष्मजीवों से सुरक्षा और रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना। नैनो सामग्री का उपयोग फसलों में जल की खपत को कम करने, उनकी वृद्धि को बढ़ाने और कीटों और रोगों से बचाव में मदद करता है। इसके अलावा, जैविक नैनो तकनीकें कृषि उत्पादों की गुणवत्ता को भी सुधारती हैं, जैसे कि पोषण मूल्य, स्वाद और शेल्फ लाइफ को बढ़ाना। इन तकनीकों के माध्यम से फसल उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ पर्यावरणीय प्रभाव भी कम होता है, जिससे सतत कृषि को बढ़ावा मिलता है। कृषि विवि द्वारा विकसित इस नई जैविक नैनो तकनीक से पौधों को जैविक नाइट्रोजन मिल पायेगी जिससे फसलों की वृद्धि व उत्पादन बढ़ेगा।

अमीनो अम्ल मानव स्वास्थ के लिए जरुरी :

अमीनो अम्ल मानव शरीर के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि ये शरीर की जैविक प्रक्रियाओं को सही रूप से कार्य करने में मदद करते हैं। ये प्रोटीन के निर्माण में मुख्य घटक होते हैं, जो शरीर के ऊतकों, मांसपेशियों और अंगों की मरम्मत और निर्माण में सहायक होते हैं। इसके अलावा, कुछ अमीनो अम्ल शरीर के विभिन्न एंजाइम्स और हार्मोन के निर्माण में योगदान करते हैं, जो शरीर के चयापचय, प्रतिरक्षा प्रणाली और तंत्रिका तंत्र के सही कार्य के लिए आवश्यक होते हैं। अमीनो अम्ल शरीर को ऊर्जा भी प्रदान करते हैं और शरीर के अंदर की कई महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं, जैसे कि दिमागी कार्य, पाचन और शारीरिक विकास। यह महत्वपूर्ण है कि शरीर में सभी आवश्यक अमीनो अम्ल की उचित मात्रा हो, क्योंकि शरीर खुद से कुछ अमीनो अम्ल का उत्पादन नहीं कर सकता, जिन्हें आवश्यक अमीनो अम्ल कहा जाता है। इसलिए, सही आहार के माध्यम से इनकी आपूर्ति सुनिश्चित करना आवश्यक है।

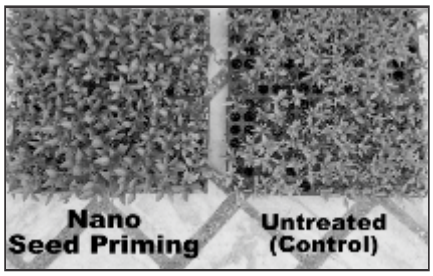

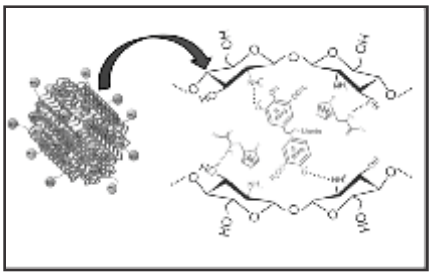

क्या है नैनो तकनीक :

यह नैनो फार्मूलेशन अमीनो अम्ल व लिग्निन से मिलकर बना हुआ है। अमीनो अम्ल पौधों के विकास, पोषण और स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होते हैं, जबकि लिग्निन एक प्राकृतिक जैविक पदार्थ है जो पौधों की संरचना को मजबूत करता है। इन दोनों का संयोजन नैनो तकनीक के माध्यम से किया गया है। इस नैनो फार्मूलेशन को बीज उपचार व छिडकाव के माध्यम से उपयोग में लिया जाता है। इसमें जैविक नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होने के कारण पौधे की वृद्धि और विकास शीघ्र होता है एवं प्रकाश संश्लेशण अधिक होने से क्लोरोफिल की मात्रा बढ़ जाती है जिससे फसलो के गुणवत्ता व उत्पादन में बढोतरी होती है। यह नैनो फार्मूलेशन पूर्णतया बायोडिग्रेडेबल है जो कि पूरी तरह सुरक्षित एवं पर्यावरण के लिए अनुकूल है। यह नैनो फार्मूलेशन पारंपरिक कृशि रसायनों के मुकाबले सुरक्षित और प्रभावी विकल्प है।

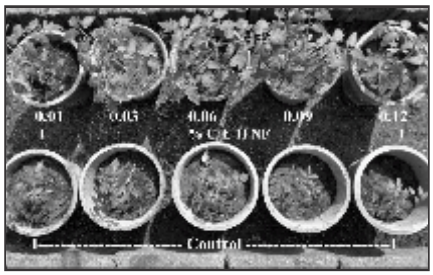

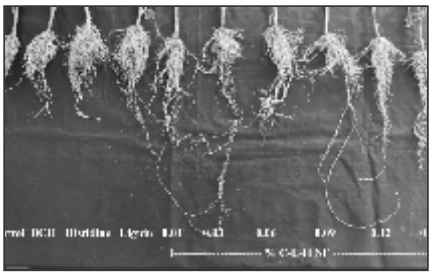

किसानो के लिए सस्ती तकनीक व उपयोग में आसान :

इस जैविक नैनो तकनीक से एक हैक्टेयर भूमि में महज 150 ग्राम नैनो फार्मूलेशन का ही उपयोग करना पडता है। एक किलो नैनो फार्मूलेशन बनाने में केवल 1560 रूपये का खर्च आता है। जबकि अधिक मात्रा में बनेगा तो इससे भी कम खर्च आयेगा। कम लागत के साथ ही इस तकनीक के उपयोग से देश में रासायनिक पदार्थों का उपयोग कम होगा एवं मानव को अमीनो अम्ल युक्त फल–सब्जियां मिल पायेगी। यह फार्मूलेशन उत्पादन में वृद्धि के अलावा फलों को जल्दी खराब होने से भी बचाता है। जैविक नाइट्रोजन की वजह से फल–सब्जियों की गुणवत्ता भी अच्छी मिलती है। भारत सरकार से पेटेंट मिलने के बाद अब इस तकनीक पर बडे पैमाने पर कार्य करने के लिए विवि को सरकार से बडे रिसर्च प्रोजेक्ट मिलने में भी मदद मिलेगी।

फलों और सब्जियों का प्रसंस्करण : कृषि आय में वृद्धि की नई राह

पूजा शर्मा[1], एम आर चौधरी[2] एवं मुकेश चंद भठेश्वर[3]

[1]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान

[2]आचार्य एवं [3]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

भारत दुनिया में कृषि उत्पादन के क्षेत्र में अग्रणी देशों में से एक है। खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) के अनुसार, भारत फल और सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है, जो कुल वैश्विक उत्पादन में लगभग 14% योगदान देता है। भारत में प्रतिवर्ष लगभग 320 मिलियन टन फल और सब्जियों का उत्पादन होता है, लेकिन इनमें से करीब 20–40% फसल कटाई के बाद बर्बाद हो जाती है, जिसका मुख्य कारण उचित भंडारण और प्रसंस्करण की कमी है। देश में छोटे और मध्यम स्तर के किसान कृषि उपज से अधिक आय नहीं अर्जित कर पाते क्योंकि उन्हें उचित बाजार मूल्य नहीं मिलता। ताजा उत्पादों की शीघ्र खराब होने की समस्या के कारण उन्हें कम कीमतों पर अपनी उपज बेचनी पड़ती है, जिससे उनके लाभ में भारी कमी आती है। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) की रिपोर्ट के अनुसार, अगर किसान प्रसंस्करण तकनीकों को अपनाएँ, तो उनकी आमदनी में 40–50% तक की वृद्धि हो सकती है। आज की बदलती जीवनशैली और उपभोक्ताओं की बढ़ती माँग को देखते हुए प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का बाजार तेजी से बढ़ रहा है। एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत का खाद्य प्रसंस्करण उद्योग 2025 तक 500 बिलियन डॉलर का हो सकता है। इसमें बागवानी उत्पादों की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। प्रसंस्करण के माध्यम से फलों और सब्जियों की शेल्फ लाइफ बढ़ाई जा सकती है, जिससे किसानों को न केवल उनकी उपज का उचित मूल्य मिलता है बल्कि रोजगार के नए अवसर भी उत्पन्न होते हैं।

फलों और सब्जियों के प्रसंस्करण का महत्व

- **बर्बादी की रोकथाम** : प्रसंस्करण तकनीकों के माध्यम से फल और सब्जियाँ अधिक समय तक सुरक्षित रहती हैं, जिससे किसानों को नुकसान से बचाया जा सकता है।
- **बाजार मूल्य में वृद्धि** : ताजे उत्पादों की तुलना में प्रसंस्कृत उत्पादों की मांग अधिक होती है, जिससे किसानों को अधिक मूल्य मिलता है।
- **रोजगार के अवसर** : प्रसंस्करण उद्योग से किसानों और ग्रामीण युवाओं के लिए नए रोजगार के अवसर पैदा होते हैं।
- **साल भर उपलब्धता** : मौसमी फलों और सब्जियों को संरक्षित करके पूरे साल उपयोग के लिए उपलब्ध कराया जा सकता है।
- **निर्यात की संभावनाएँ** : प्रसंस्कृत उत्पादों की मांग अंतरराष्ट्रीय बाजार में अधिक होती है, जिससे किसानों को विदेशी मुद्रा अर्जित करने का मौका मिलता है।

फलों और सब्जियों के प्रमुख प्रसंस्करण उत्पाद

फलों और सब्जियों के प्रसंस्करण से किसानों को अधिक लाभ मिल सकता है, क्योंकि यह न केवल उत्पादों की शेल्फ लाइफ बढ़ाता है, बल्कि उनकी बाजार कीमत में भी वृद्धि करता है। भारतीय बाजार में कई प्रकार के प्रसंस्कृत उत्पादों की माँग लगातार बढ़ रही है, जिससे किसानों को अपनी उपज का अधिकतम मूल्य प्राप्त करने में सहायता मिलती है। नीचे फलों और सब्जियों के कुछ प्रमुख प्रसंस्करण उत्पादों की विस्तृत जानकारी दी गई है।

1. जैम, जैली और मुरब्बा

- आम, स्ट्रॉबेरी, अमरूद, सेब, अनार, और आंवला जैसी फलों से जैम और जैली बनाए जाते हैं।
- शक्कर, पेक्टिन और साइट्रिक एसिड मिलाकर इन्हें तैयार किया जाता है, जिससे ये लंबे समय तक खराब नहीं होते।
- आंवला, बेल और करौंदा जैसे फलों से मुरब्बा तैयार किया जाता है, जो सेहत के लिए भी लाभदायक होता है।

2. अचार और चटनी

- आम, नींबू, लाल मिर्च, गाजर, आंवला और अदरक के अचार बेहद लोकप्रिय हैं।
- सरसों का तेल, नमक और मसालों का उपयोग करके इन्हें लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।
- धनिया, पुदीना, टमाटर, नारियल और खजूर से विभिन्न प्रकार की चटनियाँ तैयार की जाती हैं, जिनकी बाजार में अच्छी माँग रहती है।

3. फ्रूट पल्प और प्यूरी

- आम, केला, पपीता, सेब और टमाटर से पल्प तैयार किया जाता है, जिसका उपयोग पेय पदार्थों, मिठाइयों और सॉस बनाने में किया जाता है।
- टमाटर प्यूरी को सूप, ग्रेवी और रेडी–टू–ईट खाद्य पदार्थों में प्रयोग किया जाता है।
- टमाटर और अन्य फलों की प्यूरी से केचअप और सॉस बनाए जाते हैं, जिनकी माँग रेस्टोरेंट और फास्ट–फूड उद्योग में अधिक होती है।

4. सूखे फल और सब्जियाँ

- केला, सेब, आम, आंवला, पपीता और नारियल के टुकड़ों को सुखाकर उनकी शेल्फ लाइफ बढ़ाई जाती है।
- मेथी, पालक, मटर, गाजर, टमाटर जैसी सब्जियों को सुखाकर उनका पाउडर या फ्लेक्स बनाया जाता है, जिससे इन्हें लंबे समय तक संरक्षित रखा जा सकता है।
- कुरकुरे केले और आलू के चिप्स बाजार में सबसे अधिक बिकने वाले स्नैक उत्पादों में शामिल हैं।

5. डिब्बाबंद (Canned) और वैक्यूम–पैक्ड सब्जियाँ

- मटर, गाजर, फूलगोभी, शिमला मिर्च जैसी सब्जियों को डिब्बाबंद किया जाता है, जिससे वे महीनों तक सुरक्षित रहती हैं।
- वैक्यूम पैकिंग तकनीक से सब्जियों और फलों की ताजगी बनी रहती है और उनके पोषक तत्व नष्ट नहीं होते।
- यह विधि खासतौर पर निर्यात के लिए उपयुक्त होती है, क्योंकि इससे उत्पाद की गुणवत्ता बरकरार रहती है।

6. फ्रोजन उत्पाद (Frozen Products)

- मटर, मकई, आलू, मिक्स वेजिटेबल, स्ट्रॉबेरी, ब्लूबेरी और अन्य जामुन को डीप–फ्रीज तकनीक द्वारा संरक्षित किया जाता है।
- फ्रोजन फ्रेंच फ्राइज़, स्वीटकॉर्न और कटे हुए सब्जियों की माँग शहरी बाजारों में तेजी से बढ़ रही है।
- फ्रोजन खाद्य पदार्थों को होटल, रेस्टोरेंट, कैफेटेरिया और फूड डिलीवरी सर्विस में बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता है।

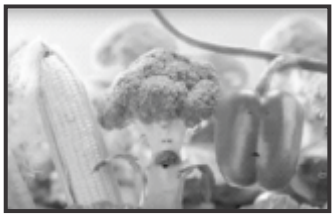

7. स्क्वैश, जूस और शरबत

- संतरा, अनार, सेब, गन्ना, आम और लीची से प्राकृतिक फलों के रस तैयार किए जाते हैं, जिन्हें लंबे समय तक स्टोर किया जा सकता है।
- बेल, आम, गुलाब और खसखस के स्क्वैश और शरबत गर्मी के मौसम में बहुत लोकप्रिय होते हैं।
- इन उत्पादों की माँग गर्मियों में अधिक होती है और इनसे किसानों को अतिरिक्त आमदनी हो सकती है।

8. रेडी–टू–ईट और इंस्टेंट फूड्स

- कटे हुए प्याज, अदरक–लहसुन पेस्ट, और मसाला मिक्स पैकिंग के साथ विभिन्न प्रकार के रेडी–टू–ईट उत्पाद बनाए जाते हैं।
- इंस्टेंट सूप, करी बेस, और सब्जियों के पैक्ड पाउडर आजकल तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं।
- यह शहरी उपभोक्ताओं के लिए सुविधाजनक होते हैं और किसानों के लिए अधिक मुनाफा देने वाले उत्पाद हैं।

9. जैविक प्रसंस्कृत उत्पाद (Organic Processed Foods)

- जैविक (ऑर्गेनिक) अचार, जैम, शरबत और अन्य उत्पादों की बाजार में अच्छी कीमत मिलती है।
- बिना केमिकल वाले प्राकृतिक खाद्य पदार्थों की माँग शहरी बाजारों में तेजी से बढ़ रही है।
- जैविक खाद्य प्रसंस्करण इकाइयाँ किसानों को बेहतर मूल्य दिलाने में मदद कर सकती हैं।

10. हर्बल और औषधीय प्रसंस्करण उत्पाद

- तुलसी, एलोवेरा, गिलोय, अश्वगंधा, आंवला और नीम से हर्बल जूस और दवाएँ बनाई जाती हैं।
- एलोवेरा जूस, आंवला कैंडी, हर्बल चाय और प्राकृतिक स्वास्थ्य उत्पादों की माँग घरेलू और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लगातार बढ़ रही है।
- किसानों को औषधीय पौधों की खेती के साथ इनका प्रसंस्करण कर अतिरिक्त लाभ प्राप्त हो सकता है।

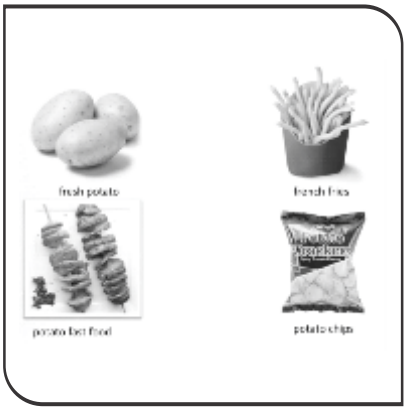

प्रसंस्करण की आधुनिक तकनीकें

1. **फ्रीज-ड्राइंग (Freeze Drying):** इस तकनीक से फल और सब्जियों में पानी की मात्रा को कम करके उन्हें लंबे समय तक संरक्षित किया जाता है।
2. **रेडी-टू-ईट (Ready to Eat) उत्पाद:** ये फास्ट–फूड और पैक्ड फूड के रूप में तैयार किए जाते हैं।
3. **कैनिंग (Canning):** सब्जियों और फलों को एयरटाइट कंटेनरों में पैक करके संरक्षित किया जाता है।
4. **रेडी-टू-कुक (Ready to Cook) उत्पाद:** कटे हुए प्याज, अदरक–लहसुन पेस्ट, पैक्ड मिक्स वेजिटेबल आदि।
5. **फ्लैश फ्रीजिंग (Flash Freezing):** इसमें उत्पाद को तेज ठंडक देकर उनकी ताजगी को बरकरार रखा जाता है।

किसानों के लिए सुझाव

1. **प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना करें:** किसान स्वयं सहायता समूह बनाकर प्रसंस्करण इकाइयाँ लगा सकते हैं।
2. **सरकारी योजनाओं का लाभ उठाएँ:** किसानों को प्रसंस्करण से जुड़ी सरकारी योजनाओं और अनुदान की जानकारी लेनी चाहिए।
3. **तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें:** प्रसंस्करण की आधुनिक तकनीकों को अपनाने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है।
4. **बाजार अनुसंधान करें:** किसानों को प्रसंस्कृत उत्पादों की मांग और सही बाजार की पहचान करनी चाहिए।
5. **ऑनलाइन बिक्री और ब्रांडिंग करें:** डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से उत्पादों की मार्केटिंग करके किसानों को अधिक मुनाफा हो सकता है।

फलों और सब्जियों के प्रसंस्करण से किसानों की आय बढ़ाने की अपार संभावनाएँ हैं। प्रसंस्करण उद्योग न केवल कृषि उत्पादों को अधिक समय तक संरक्षित रखता है, बल्कि किसानों को उच्च लाभ भी प्रदान करता है। सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं का लाभ उठाकर किसान इस क्षेत्र में उन्नति कर सकते हैं और अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बना सकते हैं। यदि किसानों को उचित प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता और विपणन की सुविधाएँ मिलें, तो प्रसंस्करण उद्योग भारतीय कृषि के भविष्य को बदल सकता है।

पॉलीहाउस में खीरे की खेती

महेन्द्र कुमार गोरा[1] एवं विरेन्द्र सिंह[2]

[1]शोध छात्र, [2]आचार्य, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

खीरा एक महत्वपूर्ण ग्रीनहाउस फसल है, जिसकी सालभर काफी मांग रहती है। इसे सलाद, रायता और अचार के रूप में उपयोग किया जाता है। इसकी खेती अन्य फसलों की तुलना में सरल और कम श्रमसाध्य होती है, जिससे यह किसानों के बीच लोकप्रिय बनी हुई है। आमतौर पर, खीरे की खेती पूरे वर्ष की जा सकती है। फल उत्पादन के लिए खीरे में परागण आवश्यक होता है, जो मधुमक्खियों और अन्य कीटों द्वारा स्वाभाविक रूप से किया जाता है। हालांकि, पॉलीहाउस में मधुमक्खियों और अन्य परागणकारी कीटों का प्रवेश कठिन होता है, इसलिए पॉलीहाउस में खेती के लिए पार्थेनोकार्पिक किस्मों का उपयोग अनिवार्य हो जाता है। खीरे की खेती लगभग सभी प्रकार की मिट्टी में संभव है, लेकिन अच्छे जल निकास वाली मिट्टी इसके लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती है। इस फसल के लिए मिट्टी का पीएच स्तर 5.5 से 6.7 के बीच होना आदर्श होता है।

खीरे की पौध तैयार करना

खीरे के बीजों में अंकुरण क्षमता अच्छी होती है, इसलिए बीजों को मेड़ में बोया जाता है, या रोपाई के लिए कम से कम 5 से 6 सप्ताह पुराने रोपे का उपयोग किया जाता है। पॉली हाउस में खीरे की खेती के लिए प्रो ट्रे का प्रयोग किया जाता है। प्रो ट्रे को भरने के लिए कोकोपीट और वर्मीकम्पोस्ट जैसे मिश्रण का उपयोग किया जाता है। फिर हर छेद में एक बीज लगाया जाता है। बीज बोने के बाद 3 से 4 दिनों में अंकुरित हो जाते हैं, ये पौधे 20 से 25 दिनों में रोपाई के लिये सही रहते हैं।

भारत में पॉलीहाउस के लिए उन्नत खीरा किस्में

पॉलीहाउस में खेती के लिए उन्नत किस्में चुनना बहुत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि ये किस्में अधिक उत्पादन, बेहतर गुणवत्ता और रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करती हैं।

किस्म का नाम	विशेषताएँ
किंग्समैन	गहरे हरे रंग के सीधे फल, उच्च उत्पादन
इंडो ग्रीन	तेजी से बढ़ने वाली, लंबी और चिकनी सतह वाली
स्वर्ण अगेती	जल्दी तैयार होने वाली, उच्च उपज क्षमता और चूर्णिल आसिता रोग प्रतिरोधी
हिमांगी	रोग प्रतिरोधी, शुद्ध हरा रंग
ग्रीन गोल्ड	मध्यम आकार, उच्च गुणवत्ता वाले फल

खीरे के लिये मेड़ बनाने की विधि

खीरे की खेती मेड़ पर की जाती है। इन मेड़ को ईस तरहां तैयार किया जाना चाहिए।

- सतह की चौड़ाई 90 सेमी.
- दो मेड़ के बीच दूरी 50 सेमी है।
- ऊंचाई 40 सेमी.

मल्चिंग का प्रयोग

खीरे की बिजाई के लिए मेड़ खीरे बनाते समय मल्चिंग का उपयोग करना फायदेमंद होता है, क्योंकि यह खरपतवार नियंत्रण प्रदान करता है, साथ ही मिट्टी में नमी बनाए रखने में मदद करता है।

रोपण दूरी

- दो पौधे के बीच 60 सेमी.
- दो पंक्तियों में 50 सेमी।

सिंचाई

खीरे की फसल के लिए ड्रिप सिंचाई प्रणाली का उपयोग किया जाता है, जिसमें पौधे की वृद्धि के अनुसार पानी और उर्वरक का संतुलन बना रहता है। किसान के लिए यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि पौधे के जड़ क्षेत्र में नमी बनी रहे।

खीरा में विशेष खेती के तरीके

पॉलीहाउस में उगाई जाने वाली खीरे की लताओं में बहुत बड़े पत्ते होते हैं। वे तेजी से बढ़ते हैं और इसके लिए उन्हें बहुत अधिक धूप की आवश्यकता होती है। इसलिए, ग्रीनहाउस में लताओं की पत्तियों के लिए पर्याप्त धूप प्राप्त करने के लिए खीरे पौधों की कटाई– छँटाई व सहारा देना आवश्यक है।

खीरे की बेल को घुमाना और कटाई–छँटाई

खीरे की फसल को तार की सहायता से सीधा खड़ा किया जाता है, जब ककड़ी की बेल ऊपरी तार तक पहुँचती है जो कि क्यारी के समानांतर होती है, तो खीरे की बेल की नोक को छाँटकर एक छतरी के तरहा बना लिया जाता है। खीरे की बेल की एक या दो पत्तियाँ जब तने पर उग आती हैं तो मुख्य तने का उगता हुआ भाग (ऊपर) हट जाता है। ऊपरी तार के दोनों ओर की शाखाओं को तब बढ़ाया जाता है। फिर उन्हें नीचे बढ़ने दिया जाता है। जब बेल जमीन के पास पहुंचती है, तो उसका शीर्ष हटा दिया जाता है।

छोटे, विकृत निम्न गुणवत्ता वाले फलों को निकलना

जब बहुत सारे फलों को एक साथ रखा जाता है, तो उनकी वृद्धि धीमी हो जाती है, और छोटे फल बन सकते हैं जो बिक्री के लिए उपयोगी नहीं होते हैं। इसलिए, छोटे, विकृत और निम्न गुणवत्ता वाले फलों को पतला करना आवश्यक है।

खीरे की तोड़ाई

कटाई आमतौर पर रोपण के 50 से 65 दिन बाद शुरू होती है। खीरे तेजी से बढ़ते हैं, इसलिए उन्हें हर 2 से 4 दिनों में तोड़ा जाता है। संरक्षित खेती में खीरे की उपज प्रति हेक्टेयर 60 टन से लेकर 150 टन तक हो सकती है. खुले में उगाए गए खीरे की तुलना में, संरक्षित खेती में उगाए गए खीरे की उपज ज़्यादा होती है और गुणवत्ता भी बेहतर होती है।

खीरे की फसल के प्रमुख रोग एवं कीट

खीरे की फसल के प्रमुख रोग

आद्र पतन

इस रोग के प्रकोप के कारण बीज अंकुरित होते ही सड़ने लगता है। इस रोग की शुरूआती अवस्था में पौध निकलने के बाद दोनों फली झड़ जाती है और पौधे की वृद्धि रुक जाती है। साथ ही पत्तियाँ ऊपर से सूख जाती हैं और तना भूरा हो जाता है। यदि जल निकासी उचित नहीं है तो संक्रमण अधिक ध्यान देने योग्य है। नम और ठंडे वातावरण में रोग तेजी से बढ़ता है, और अत्यधिक गर्म तापमान में भी एक समस्या हो सकती है।

फुसैरियम विल्ट

यह एक कवक रोग है। यह मुख्य रूप से पौधे की जड़ और तने के संवहनी ऊतक पर हमला करता है, जिससे पानी और पोषक तत्वों के परिवहन में बाधा उत्पन्न होती है। इससे पौधे का विकास रुक जाता है और फिर वह मर जाता है।

मृदुल आसिता

इस रोग का मुख्य लक्षण पत्ती के ऊपरी भाग पर हल्के हरे, पीले रंग के धब्बे होते हैं। बादल छाए रहने पर इस रोग का फैलाव तेजी से बढ़ता है। इस जगह के नीचे एक बैंगनी कवक विकास देखा जा सकता है। एक रोगग्रस्त पेड़ कम फूल और खराब गुणवत्ता के फल पैदा करता है।

चूर्णिल आसिता

यह एक कवक रोग है, यह खीरे पर फंगस का कारण बनता है। लक्षणों में पत्तियों के ऊपर की तरफ सफेद पाउडर और पत्तियों के निचले हिस्से में फफूंद का बढ़ना शामिल है। सफेद पाउडर और फंगस के कारण फल और पत्ते विकृत हो जाते हैं। ये विकृत और झुलसे हुए पत्ते बाद में गिर जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप कम उपज और छोटे फल लगते हैं। यह फलों के स्वाद को भी प्रभावित करता है क्योंकि यह पत्तियों में कम चीनी जमा करता है।

खीरे का मोजैक वीषाणु

यह वायरल बीमारी सफेद मक्खी से फैलती है। इसके लक्षण चमकीले पीले पत्ते और हरी पत्ती की नसें हैं। यह पौधे में हरे पदार्थ को नुकसान पहुंचाता है, जो सीधे पौधे की प्रकाश संश्लेषक क्षमता को प्रभावित करता है। उत्पादन कम हो जाता है।

खीरे की फसल के प्रमुख कीट

माइट

माइट से ग्रसित पौधे की पत्तियों पर छोटे–छोटे पीले या सफेद धब्बे दिखाई देते हैं। अत्यधिक प्रभावित पत्तियां बद्धी के साथ पूरी तरह से धूसर हो जाती हैं और समय से पहले ही गिर जाती हैं। गर्म तापमान में घुन अधिक पीड़ित होते हैं।

थ्रिप्स

खीरे की फसल के लिए थ्रिप्स बहुत खतरनाक कीट नहीं है, लेकिन इसकी उचित देखभाल करना जरूरी है। रोगग्रस्त पत्तियों पर सफेद–भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, इसके अलावा पत्तियां थोड़ी मुड़ जाती हैं। थ्रिप्स वायरल रोगों को फैलाने में मदद करते हैं।

सफेद मक्खी

ग्रीनहाउस में खीरे की फसल के लिए सफेद मक्खी एक गंभीर कीट है। सफेद मक्खी बहुत तेजी से बढ़ती है और रोगग्रस्त पौधों की पत्तियों के नीचे बड़ी संख्या में सफेद मक्खियां पाई जा सकती हैं। पत्तियाँ पीली हो जाती हैं तथा पत्तियों की वृद्धि रूक जाती है। पत्तियों पर शहद जैसे धब्बे जमा हो जाते हैं और बाद में गहरे काले हो जाते हैं। सफेद मक्खी वायरस का संचार करती है। इसलिए सफेद मक्खी के संक्रमित होते ही इसके लिए तुरंत उपाय की योजना बनाना आवश्यक है।

लीफ माइनर

लीफ माइनर का कीड़ा पौधे के युवा भाग और पत्तियों से रस को अवशोषित करता है। साथ ही लीफ माइनर पत्ती पर कई सुरंगें बनाता है। यह पत्ती में उपलब्ध हरे पदार्थ को नुकसान पहुंचाता है, इस प्रकार प्रकाश संश्लेषण में कुछ हद तक बाधा डालता है। समय के साथ, प्रभावित पत्तियां सूख जाती हैं।

नेमाटोड

नेमाटोड पौधे की जड़ में नोड्यूल बनाते हैं, जिससे पौधे के लिए पानी और पोषक तत्वों को अवशोषित करना मुश्किल हो जाता है। यह रोग पेड़ की वृद्धि को गंभीर रूप से प्रभावित करता है, और उपज को काफी कम कर देता है।

जयपुर क्षेत्र में फूलों की खेती : राजस्थान के कृषि विकास में महत्वपूर्ण योगदान

पवन कुमार

शोध छात्र, नैनी एग्रीकल्चर इंस्टिट्यूट, सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज

राजस्थान, जो अपने ऐतिहासिक किलों, महलों और थार के रेगिस्तान के लिए प्रसिद्ध है, वहाँ की खेती भी अन्य राज्यों से कुछ अलग है। राजस्थान में शुष्क और अर्ध–शुष्क जलवायु के बावजूद, कई प्रकार की कृषि प्रजातियाँ यहाँ उगाई जाती हैं। एक ऐसा कृषि क्षेत्र, जो पिछले कुछ वर्षों में तेजी से बढ़ा है, वह है फूलों की खेती। इसे फ्लोरीकल्चर भी कहा जाता है। यह एक ऐसी खेती है, जिसमें फूलों की उत्पादन, प्रसंस्करण और विपणन किया जाता है। विशेष रूप से जयपुर क्षेत्र में फूलों की खेती ने बहुत ही बड़ा आकार लिया है और यह अब एक महत्वपूर्ण कृषि व्यवसाय बन चुका है।

फूलों की खेती न केवल किसानों के लिए एक लाभकारी व्यवसाय बन चुकी है, बल्कि यह राज्य की अर्थव्यवस्था को भी मजबूती प्रदान कर रही है। यहाँ के फूलों की किस्मों का उपयोग न केवल धार्मिक आयोजनों, विवाह, और सजावट में किया जाता है, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर निर्यात भी किया जाता है। जयपुर क्षेत्र, अपनी जलवायु और उपयुक्त मिट्टी के कारण फूलों की खेती के लिए आदर्श स्थान बन चुका है। इस लेख में हम राजस्थान में फूलों की खेती, विशेष रूप से जयपुर क्षेत्र में, पर विस्तृत जानकारी देंगे और इसमें होने वाली चुनौतियाँ, उनके समाधान, प्रमुख फूलों की किस्में, और आर्थिक लाभ पर चर्चा करेंगे।

राजस्थान में फूलों की खेती का महत्व

राजस्थान का कृषि क्षेत्र बहुत विविधतापूर्ण है, और यहाँ के विभिन्न क्षेत्रों में फूलों की खेती में निरंतर वृद्धि हो रही है। राजस्थान की जलवायु और मृदा संरचना फूलों की खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है। जहां एक ओर राजस्थान की भूमि शुष्क है, वहीं दूसरी ओर यहाँ की गर्मी और ठंडी हवाएँ फूलों के उत्पादन के लिए उपयुक्त होती हैं। इस राज्य में फूलों की खेती न केवल किसानों के लिए एक आकर्षक व्यवसाय बन चुकी है, बल्कि यह राजस्थान के सांस्कृतिक और धार्मिक आयोजनों का भी अभिन्न हिस्सा है। फूलों का उपयोग पूजा–पाठ, विवाह, और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में विशेष रूप से होता है।

जयपुर क्षेत्र में फूलों की खेती

जयपुर, जो राजस्थान की राजधानी है, फूलों की खेती के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन चुका है। यहाँ के किसान गुलाब, मारीगोल्ड, गेंदे, लिली, चम्पा और कई अन्य फूलों की किस्मों की खेती करते हैं। जयपुर का मौसम और मिट्टी फूलों के उत्पादन के लिए आदर्श माने जाते हैं। यहाँ की जलवायु में दिन के समय गर्मी होती है और रात को ठंडक रहती है, जो फूलों के विकास के लिए एकदम उपयुक्त है। इसके अलावा, जयपुर में सिंचाई के उन्नत तरीके जैसे ड्रिप इरिगेशन और स्प्रिंकलर सिस्टम का उपयोग किया जाता है, जिससे जल की बचत होती है और फूलों की अच्छी पैदावार होती है।

जयपुर क्षेत्र में प्रमुख फूलों की किस्में और उनका उपयोग

1. गुलाब गुलाब को संसार भर में सबसे ज्यादा उगाए जाने वाले फूलों में से एक माना जाता है। राजस्थान में विशेष रूप से जयपुर क्षेत्र में गुलाब की कई किस्में उगाई जाती हैं। इनकी प्रमुख किस्में हैं–

- **लाल गुलाब** : यह किस्म शादी–ब्याह, पूजा, और अन्य धार्मिक आयोजनों के लिए सबसे अधिक उपयोग की जाती है। इसके फूलों की खूबसूरती और गहरी खुशबू इसे बहुत प्रसिद्ध बनाती है।
- **सफेद गुलाब** : सफेद गुलाब को शांति और प्रेम का प्रतीक माना जाता है। इसका उपयोग विशेष रूप से धार्मिक आयोजनों और विधिवत पूजा में किया जाता है।
- **पीला गुलाब** : पीला गुलाब दोस्ती और खुशी का प्रतीक होता है। यह बागवानी में बहुत लोकप्रिय है।
- **संकर गुलाब** : यह गुलाब विशेष रूप से अधिक रंगीन और बड़े फूलों वाले होते हैं। यह किस्म अधिक उत्पादन देने वाली होती है और विशेष रूप से बाजार में बेची जाती है।

2. मारीगोल्ड : मारीगोल्ड, जिसे हिंदी में गेंदे का फूल कहा जाता है, जयपुर में उगाए जाने वाले प्रमुख फूलों में से एक है। इसका उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों, सजावट और फूलों की माला बनाने में किया जाता है। मारीगोल्ड की किस्मों में प्रमुख हैं–

- **संकर मारीगोल्ड** : इस किस्म का फूल बड़ा और सुंदर होता है, जो खासतौर पर व्यापारिक उद्देश्यों के लिए उगाया जाता है।
- **अंतर्राष्ट्रीय मारीगोल्ड** : इस किस्म का फूल रंगीन और आकर्षक होता है, और यह विशेष रूप से निर्यात के लिए उगाया जाता है।

3. चम्पा : चम्पा, जिसे चमेली भी कहा जाता है, जयपुर में उगाए जाने वाले महत्वपूर्ण फूलों में से एक है। इसका उपयोग पूजा और विशेष आयोजनों में किया जाता है। इसकी प्रमुख किस्में हैं–

- **सफेद चम्पा** : सफेद चम्पा को शांति और पवित्रता का प्रतीक माना जाता है।
- **पीली चम्पा** : पीली चम्पा की खुशबू बहुत तेज होती है और इसे पूजा–पाठ में उपयोग किया जाता है।

4. लिली : लिली का फूल अपनी खूबसूरती और खुशबू के लिए प्रसिद्ध है। यह फूल विशेष रूप से गार्डनिंग, सजावट और समारोहों के लिए उपयोग किया जाता है। लिली की किस्मों में प्रमुख हैं

- **एशियाई लिली** : इसका रंग हल्का गुलाबी या सफेद होता है।
- **ऑरिएंटल लिली** : यह किस्म अपने गहरे रंग और महक के लिए जानी जाती है।

5. गुलदाउदी : गुलदाउदी का फूल अपने रंगीन रूप के लिए प्रसिद्ध है और इसका उपयोग विभिन्न धार्मिक आयोजनों और शादी–ब्याह में किया जाता है। गेंदा के फूलों की किस्में सफेद, पीले और लाल रंगों में होती हैं। जयपुर में गुलदाउदी की खेती बहुतायत में की जाती है और इसे खासतौर पर दीपावली, मकर संक्रांति, और विवाह समारोह में उपयोग किया जाता है।

फूलों की खेती में चुनौतियाँ और समाधान–

1. जल संकट : राजस्थान में जल की कमी एक बड़ी समस्या है। फूलों की खेती के लिए पानी की अधिक आवश्यकता होती है, और इसे सुलझाने के लिए ड्रिप इरिगेशन प्रणाली का उपयोग किया जाता है। इसके माध्यम से पानी की बचत होती है और सिंचाई के खर्च को कम किया जा सकता है। इसके अलावा, वर्षा जल संचयन और भूमिगत जलस्तर की निगरानी करने से भी पानी की कमी को दूर किया जा सकता है।

2. विपणन और आर्थिक लाभ : फूलों की खेती में उच्च प्रारंभिक लागत और विपणन की चुनौती हो सकती है। हालांकि, अगर किसानों को सही विपणन चौनल और उपयुक्त बाजार मिल जाए, तो वे अपनी उपज को अच्छे दामों पर बेच सकते हैं। जयपुर में फूलों का बाजार बहुत बड़ा है, और यहाँ के फूलों का निर्यात भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किया जाता है। इसके माध्यम से किसान अच्छे लाभ अर्जित कर सकते हैं।

3. कीटों और रोगों का प्रकोप : फूलों की खेती में कीटों और रोगों का प्रकोप एक सामान्य समस्या है। फूलो की कुछ सामान्य बीमारियों के रोकथाम के बारे में निचे बताया गया है

➢ **पाउडरी मिल्ड्यू –**

लक्षण : पाउडरी मिल्ड्यू एक फंगस (फफूंदी) जनित रोग है, जो मुख्य रूप से गुलाब, गेंदे, मारीगोल्ड और चम्पा जैसे फूलों पर हमला करता है। इसके कारण पत्तियों और कलियों पर सफेद या धूसर रंग का एक धुंधलापन या पाउडरी पदार्थ दिखाई देता है। पत्तियाँ सिकुड़ने लगती हैं और धीरे–धीरे सूखने लगती हैं। यदि रोग का समय पर उपचार न किया जाए, तो पौधा मर सकता है।

रासायनिक उपचार

- **सल्फर** : यह पाउडरी मिल्ड्यू के इलाज में प्रभावी होता है। इसे 2–3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव किया जाता है।
- **मैनकोजेब** : 0.2% समाधान के रूप में मैनकोजेब का उपयोग पाउडरी मिल्ड्यू को नियंत्रित करने के लिए किया जा सकता है।
- **विनोक्सीन** : इसे 0.1% घोल बनाकर छिड़काव करने से भी यह रोग नियंत्रण में आता है।

➢ **एफिड्स–**

लक्षण : एफिड्स छोटे कीड़े होते हैं जो पौधों की पत्तियों, डंठल, और कलियों पर हमला करते हैं। ये कीड़े पौधे के रस को चूसते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है और पत्तियाँ मुरझा जाती हैं। इसके अलावा, एफिड्स रोगों के फैलने का भी कारण बन सकते हैं। एफिड्स के कारण फूलों का रंग फीका पड़ जाता है और फूलों की गुणवत्ता घट जाती है।

रासायनिक उपचार

- **पर्मेथ्रिन** : इसे 0.5% घोल में बनाकर छिड़कने से एफिड्स पर प्रभावी नियंत्रण पाया जाता है।
- **मालाथियोन** : 0.1% मालाथियोन घोल बनाकर छिड़काव किया जाता है, जो एफिड्स को मारता है और उनके प्रकोप को नियंत्रित करता है।
- **आइंसेक्टिसाइड सोप** यह एक जैविक कीटनाशक है जिसे एफिड्स के नियंत्रण के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

थ्रिप्स –

लक्षण : थ्रिप्स छोटे, पतले और सफेद या काले रंग के होते हैं जो फूलों और पत्तियों पर हमला करते हैं। इनकी उपस्थिति से फूलों में काले धब्बे, सिकुड़न और विकृतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। थ्रिप्स का हमला फूलों की गुणवत्ता को नष्ट कर सकता है, और इनकी गतिविधियाँ अन्य रोगों के फैलाव का कारण भी बन सकती हैं।

रासायनिक उपचार

- **क्लोरपायरिफॉस** : 0.05% समाधान का प्रयोग थ्रिप्स के नियंत्रण के लिए किया जाता है।
- **प्रोफेनोफॉस** : 0.05% समाधान बनाकर इसे छिड़कने से थ्रिप्स पर नियंत्रण पाया जा सकता है।
- **स्पिनोसेड** : यह जैविक कीटनाशक है जो थ्रिप्स और अन्य कीटों पर प्रभावी रूप से काम करता है।

व्हाइटफ्लाई –

लक्षण व्हाइटफ्लाई छोटे सफेद कीड़े होते हैं जो फूलों और पत्तियों के नीचे छिपकर पौधों का रस चूसते हैं। इनकी उपस्थिति से पौधों की वृद्धि रुक जाती है और पत्तियाँ मुरझा जाती हैं। व्हाइटफ्लाई के कारण चिपचिपा पदार्थ निकलता है, जो अन्य रोगों के लिए उपयुक्त वातावरण बनाता है।

रासायनिक उपचार

- **इमिडाक्लोप्रिड** : यह व्हाइटफ्लाई पर प्रभावी नियंत्रण प्रदान करता है। इसे 0.1% घोल बनाकर पौधों पर छिड़का जाता है।
- **डिमेथोएट** : 0.05% डिमेथोएट घोल का छिड़काव व्हाइटफ्लाई की रोकथाम के लिए किया जाता है।
- **थायामेथोक्सम** : यह एक और प्रभावी रासायनिक कीटनाशक है जो व्हाइटफ्लाई के नियंत्रण के लिए इस्तेमाल होता है।

➢ **ग्रे मिल्ड्यू**

लक्षण : ग्रे मिल्ड्यू, जिसे बोट्रिटिस भी कहा जाता है, एक फंगल रोग है, जो विशेष रूप से गुलाब और अन्य फूलों में पाया जाता है। यह रोग फूलों, पत्तियों और तनों पर हल्के भूरे रंग के धब्बे उत्पन्न करता है और फूलों को सड़ा हुआ बना देता है। इसके परिणामस्वरूप फूलों की गुणवत्ता और सुंदरता दोनों में गिरावट आ जाती है।

रासायनिक उपचार

- **बोर्डो मिश्रण** : यह एक प्रभावी फंगीसाइड है जिसे 1% घोल बनाकर फंगस के नियंत्रण के लिए छिड़काव किया जाता है।
- **फॉल्कस** : 0.1% घोल में फॉल्कस का छिड़काव भी इस रोग को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।
- **फ्यूनिडोजोल** यह फंगल रोगों के लिए एक प्रभावी रासायनिक उपचार है जो ग्रे मिल्ड्यू को नियंत्रित करता है।

➢ **रूट रॉट**

लक्षण : रूट रॉट एक फंगल रोग है, जो फूलों के पौधों की जड़ों पर हमला करता है। यह रोग मुख्य रूप से अधिक पानी, जलजमाव या खराब जल निकासी वाली मिट्टी में होता है। इससे पौधे की जड़ें सड़ने लगती हैं और फूलों की गुणवत्ता में कमी आती है। पौधे पीले पड़ने लगते हैं और उनकी वृद्धि रुक जाती है।

रासायनिक उपचार

कार्बेन्डाजिम : यह रूट रॉट के उपचार के लिए प्रभावी फंगीसाइड है। इसे 0.1% घोल में बनाकर पौधों की जड़ों पर छिड़काव किया जाता है।

थिरम : यह भी रूट रॉट के नियंत्रण के लिए उपयोगी है। इसे 0.1% घोल के रूप में प्रयोग किया जाता है।

राजस्थान में फूलों की खेती के आंकड़े और तथ्य

फूलों की खेती राजस्थान के किसानों के लिए एक अत्यधिक लाभकारी व्यवसाय साबित हो रही है। खासकर जयपुर के किसान अब न केवल घरेलू बाजारों में अपनी उपज बेचते हैं, बल्कि वे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी निर्यात करते हैं। इसके अलावा, फूलों की खेती से किसानों को एक स्थिर और उच्च मुनाफा मिलता है।

1. **फूलों की खेती का क्षेत्रफल** : राजस्थान में फूलों की खेती के क्षेत्रफल में लगातार वृद्धि हो रही है। राज्य के प्रमुख क्षेत्रों में जयपुर, अजमेर, उदयपुर, और कोटा में फूलों की खेती होती है। 2021–22 के आंकड़ों के अनुसार, राज्य में लगभग 15,000 हेक्टेयर क्षेत्र में फूलों की खेती हो रही है।
2. **फूलों की उत्पादन में वृद्धि** : राजस्थान में वर्ष 2021–22 में फूलों का उत्पादन लगभग 40 लाख टन था, जिसमें प्रमुख रूप से गुलाब और चम्मच की प्रमुखता है।
3. **आर्थिक आंकड़े** : राजस्थान में फूलों का बाजार लगभग 1000 करोड़ रुपये के आसपास है, और इस क्षेत्र से किसानों को हर साल 5000 से 10,000 रुपये प्रति हेक्टेयर तक का लाभ होता है।

राजस्थान, विशेष रूप से जयपुर क्षेत्र, में फूलों की खेती ने एक नई दिशा और विकास की ओर कदम बढ़ाया है। यहाँ के किसान आधुनिक तकनीकों और कृषि विधियों का पालन कर इस क्षेत्र में अच्छी पैदावार प्राप्त कर रहे हैं। फूलों की खेती राजस्थान की आर्थिक और सांस्कृतिक पहचान को बढ़ावा देती है और राज्य को एक प्रमुख कृषि पर्यटन स्थल बना सकती है। अगर किसान सही मार्गदर्शन और संसाधनों का उपयोग करें, तो यह क्षेत्र और भी तेजी से विकसित हो सकता है और राज्य की अर्थव्यवस्था को और मजबूत बना सकता है।

बीजीय मसालों की जैविक खेती

रोशन चौधरी[1], एस. के. शर्मा[2], बी. एल. दुदवाल[3] एवं एन. के. गुप्ता[4]

[1]उप–निदेशक अनुसंधान, [4]निदेशक अनुसंधान, [3]सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

[2]सहायक महा–निदेशक (एच. आर. एम.), आईसीएआर, नई दिल्ली

विश्व में, 188 देशों में 96.4 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र जैविक कृषि के अन्तर्गत है (वर्ष 2023–24), 2003–04 में प्रमाणित जैविक खेती के तहत 42,000 हेक्टेयर से बढ़कर, जैविक कृषि में कई गुना वृद्धि हुई है और 2021–22 तक, भारत ने 4.34 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र को जैविक प्रमाणीकरण प्रक्रिया के तहत सम्मलित कर लिया है। इस क्षेत्र में से 2.65 मिलियन हेक्टेयर खेती के लिए है जबकि 1.68 मिलियन हेक्टेयर वन फसल संग्रह क्षेत्र है। वर्तमान में, भारत जैविक प्रमाणीकरण के तहत कृषि योग्य भूमि वाले शीर्ष देशों में 10 वें स्थान पर है। वन फसल संग्रह के संदर्भ में, भारत तीसरे स्थान पर जबकि फिनलैंड एवं जाम्बिया क्रमशः पहले व दूसरे स्थान पर है। देश में लगभग 13.66 लाख उत्पादक विभिन्न रूपों से इसी संदर्भ में कार्यरत है। सिक्किम राज्य को जनवरी, 2016 में जैविक राज्य घोषित किया गया है और जैविक प्रमाणन के तहत इस राज्य का सर्वाधिक बुवाई क्षेत्र जैविक कृषि के तहत (100 प्रतिशत) है, जबकि मध्य प्रदेश जैविक उत्पादन प्रणाली के तहत सबसे बड़ा क्षेत्र (2,32,887 हेक्टेयर) है। वर्ष 2016–17 में जैविक उत्पादों के लिए बाजार का अनुमान 3000 करोड़ रुपये था। भारत विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों वाला देश है, प्रत्येक राज्य अपने विशेष उत्पादों का उत्पादन करता है। पिछले तीन वर्षों के दौरान देश के निर्यात की मात्रा एवं मूल्य के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में निर्यात एवं यूरोपियन संघ में मूल्य सर्वाधिक है। जैविक खाद्य उत्पादों में जैविक बीजीय मसालों की मांग बढ़ रही है। अतः जैविक बीजीय मसालों की खेती के तकनीक पहलुओं की जानकारी का वर्णन यहां दिया गया है।

जैविक खेती की अवधारणा और सिद्धांत

ऐतिहासिक रूप से, भारत और चीन में जैविक खेती की अवधारणा निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित हैः

- **स्वास्थ्य का सिद्वांत** : मृदा, पादप (फसल), पशु और मानव स्वास्थ्य को लगातार बनाए रखना एवं साथ ही उसमें वृद्वि करना। यदि मृदा का स्वास्थ्य अच्छा होगा तभी उसमें उगने वाली फसलों का स्वास्थ्य भी अच्छा होगा। इसी प्रकार यदि पशु अथवा मानव इन स्वस्थ पादपों (फसलों) का सेवन करेंगे तो उनका स्वास्थ्य भी अच्छा होगा।
- **पारिस्थितिकी का सिद्वांत** : जैविक खेती पारिस्थितिकी एवं सजीव पद्वतियों ओर चक्रों पर आधारित होनी चाहिए। जैविक खेती इन पारिस्थितिक चक्रों के साथ कार्य करे और साथ ही इनकी सततता बनाए रखने में भी सहायक होनी चाहिए।
- **निष्पक्षता अथवा न्याय संगतता का सिद्वांत** : जैविक खेती पर्यावरण में उपस्थित सभी जीवों के पारस्परिक संबंधों को सुदृढ़ करने पर विशेष बल देती है, जिससे कि किसी भी जीव के साथ अन्याय न हो और साथ ही उसका अत्यधिक दोहन भी न हो।
- **सेवा का सिद्वांत** : जैविक खेती को एक जिम्मेदारी के साथ किया जाना चाहिए, जिससे कि वर्तमान जनसंख्या और आने वाली पीढ़ियों के स्वास्थ्य हितों की अवहेलना न हो और साथ ही पर्यावरण स्वास्थ्य पर भी कोई बुरा प्रभाव न पड़े।

जैविक बीजीय मसालें

धनिया, जीरा, सौंफ, और मेथी भारत में उगाए जाने वाले मुख्य बीजीय मसालें है। जबकि अजवाईन, मोटी सौंफ, कलोंजी, जीरा एवं अज्मोदा अन्य महत्वपूर्ण मसाले हैं। भारत में जैविक रूप से बीज मसालों का उत्पादन प्रारम्भिक अवस्था में होता है और जैविक मसालों के उत्पादन व निर्यात का मुख्य श्रेय विशेष रूप से केरल और आसपास के भागों में को जाता है। बीज मसालों का उत्पादन मुख्य रूप से राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश के शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में होता है। उपभोक्ता में गुणवत्ता एवं अकार्बनिक रसायनों से मुक्त उत्पाद और पर्यावरण संरक्षण के प्रतिबद्धता जागरूकता से जैविक खेती का वैश्विक स्तर पर महत्व काफी बढ़ गया है। राजस्थान में, प्रमाणित जैविक खेती 81,000 हेक्टेयर क्षेत्र (वार्षिक रिपोर्ट, 2023–24) पर की जाती है। अतः राजस्थान में उर्वरकों एवं कीटनाशकों का कम उपयोग एवं रूपान्तरण की अवधि के दौरान फसल उपज में न्यूनतम गिरावट के कारण, राजस्थान में जैविक खेती के लिये प्रबल अवसर उपलब्ध है। हालांकि, जैविक खेती के लिए उपयुक्त फसलों की पैकेज ऑफ पेक्टिस की कमी एवं समय पर जैविक आदानों की उपलब्धता मुख्य समस्या हैं। भारत में जैविक निर्यात में मसाले महत्वपूर्ण फसलें हैं और कुल निर्यात में इनका योगदान 1.68 प्रतिशत है। उचित उत्पादन तकनीक, उपयुक्त पौध संरक्षण उपायों और जैविक उत्पादन के लिए विशिष्ट किस्मों पर वैज्ञानिक जानकारी के अभाव के कारण बीज मसालों की फसल का जैविक उत्पादन बहुत अधिक गति नहीं पा सका है। पोषक तत्वों के अलावा, जैविक विधियों के माध्यम से रोगों और कीटों का प्रबंधन भी मसालों की उत्पादकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण बाधाओं में से एक है।

जैविक बीजीय मसालों की आवश्यकता : हम बीजीय मसालों में मात्रा की तुलना में गुणवत्ता में अधिक रुचि रखते हैं और यह देखा गया है कि व्यवस्थित रूप से उत्पादित वस्तुएं तुलनात्मक रूप से अधिक गुणवत्ता की होती हैं। इसके अतिरिक्त जैविक बीजीय मसालों के उत्पादन के निम्नलिखित फायदे हैं।

- जैविक रूप से उत्पादित मसाले मानव स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित, पोषक और अच्छे होने के साथ–साथ सम्बन्धित तकनीक पर्यावरण के अनुकूल है।
- वैश्विक बाजार में उच्च मांग के कारण जैविक मसाले अत्यधिक लाभप्रद हैं क्योंकि जैविक बीजीय मसालों की गुणवत्ता अपेक्षाकृत बेहतर है।
- मिट्टी का जैविक जीवन सक्रीय हो जाता है जो पौधों को पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं उपजाऊपन को बढ़ाने में मदद करता है और लंबे समय तक इन गुणों का संरक्षण करता है।
- यह माना जाता है कि सामान्य रूप से उत्पादित बीज की तुलना में जैविक कृशि द्वारा उत्पादित बीज, कीट और रोगों के प्रति अधिक प्रतिरोधी होते हैं।
- जैविक कृषि पद्धतियां निश्चित रूप से प्रकृति के निकट हैं अतः बाहरी आदानों पर निर्भरता कम हो गई है।
- कृषि उत्पादकों के लिए यह संभव है कि वे अपने काम के माध्यम से जीविकोपार्जन करें तथा अपनी क्षमताओं को विकसित करें।

जैविक बीजीय मसाला उत्पादन के लिए मानक : बीजीय मसाला फसलों के लिए जैविक कृषि को निम्न सिद्धांतों और पद्धतियों का अनुसरण करना होता हैं।

- जैविक मसाला उत्पादन पात्रता के लियें उत्पादक के पास न्यूनतम 0.40 हैक्टेयर क्षेत्र आवश्यक है साथ ही साथ आवेदक के पास अन्तर्राष्ट्रीय एंजेसी द्वारा जारी जैविक प्रमाणीकरण प्रमाण होना भी आवश्यक है।
- किसान खेत के एक हिस्से को बदलने के लिये स्वतन्त्र है अतः सम्पूर्ण खेत जैविक रूप से जैविक पद्धतियों द्वारा, पूर्णतः विश्वसनिय एवं व्यवस्थित रूप से परिवर्तित करने के लिये उपलब्ध है।
- यह आवश्यक है कि जैविक मसालों का उत्पादन करने के लिए है, केवल जैविक पैकेज ऑफ प्रेक्टिस का उपयोग करके ही किया जाता है।
- फसल चक्र में दलहन फसल को निश्चित रूप से शामिल करना चाहियें एवं एक ही कुल अथवा जाति की फसलों का लगातार बोनें से बचना चाहियें।
- मिश्रित खेती प्रणाली में फसल कृषि व्यवस्था एवं पशुधन एकीकरण करना सबसे महत्वपूर्ण है।
- मृदा अपरदन एवं भूमि कटाव से पोषक तत्वों को होने वाली क्षति कों सीमित करने के लिये जैविक कृशि एवं बंद पारिस्थितिक तंत्र करनी चाहियें।
- नजदीकी सामान्य कृषि क्षेत्र में जैविक कृषि क्षेत्र अथवा भूखण्ड को आपस में मिलने से रोकने के लिये भूखण्ड को परस्पर 25 मीटर की दूरी चारों ओर रखी जानी चाहिये।
- जैविक खेती के लिए रूपांतरण अवधि न्यूनतम तीन वर्ष की आवश्यकता होती है। नवीन अथवा शुद्ध भूमि पर खेती के मामले में, रूपांतरण अवधि को हटाया जा सकता है।

• खेती की जाने वाली किस्मों को मिट्टी और जलवायु के अनुकूल होना चाहिए और संभवतः साथ ही साथ यह कीटों और क्षेत्र के रोगों के लिए प्राकृतिक रूप से प्रतिरोधी होनी चाहिए। जैविक मूल बीज सामग्री का उपयोग किया जाना चाहिए, गैर–उपलब्धता के मामले में, प्रारम्भिक पारम्परिक रोपण सामग्री का उपयोग किया जाएगा।

जैविक खेती के घटक : जैविक बीज मसालों के उत्पादन में पोषक तत्व, खरपतवार कीट और रोग के प्रबंधन के लिए: जैविक खेती के प्रमुख घटक कार्यरत हैं: –

1. **जैविक खाद** : गोबर खाद, भेड़ खाद, फसल अवशेष, पोल्ट्री खाद, तेल केक और अन्य खेत अपशिष्ट, खाद–नारियल छील–अर्क पिथ खाद।
2. **हरी खाद** : हरी खाद के लिए सन्हेम्प, ढैंचा एवं दलहन का उपयोग किया जाता है।
3. **वर्मी कम्पोस्ट** : यह केंचूआं द्वारा तैयार की गई खाद है। जैविक अपघटनीय और विघटित कार्बनिक कचरे का उपयोग केंचुआ खाद के रूप में किया जाता है।
4. **जैव उर्वरक** : प्राकृतिक उर्वरक जिसमें वाहक आधारित सूक्ष्म जीव निम्नलिखित है राइजोबियम, एज़ोटोबैक्टोर, एज़ोस्पिरिलम, नील हरित शैवाल, एजोला, माइकोराइजा और फॉस्फोबैक्टीरिया।
5. **हर्बल उत्पाद तथा उत्प्रेरक** : सड़े गले पौधे के अर्क अथवा रस का उपयोग पौधे के विकास को बढ़ावा देने के लिए तरल खाद के रूप में किया जाता है (उदाहरणः यूपोरियम खरपतवार और ग्लिसराइडिया)
6. **बायोडायनेमिक खाद** : गाय के सींग की खाद, सींग सिलिका, खाद की तैयारी बी.डी. 502–508 जैसे देशीय और जैव–रासायनिक तैयारी का उपयोग जैविक पोषण प्रबंधन में किया जा सकता है।
7. **कीटों को नियंत्रित करने के लिए जैविक घटक** : कीटों की आबादी को नियंत्रित करने के लिए प्रोटोजोआ जैविक घटकों के रूप में उपलब्ध हैं। मकड़ियों, कीड़े, निमेटोड अथवा सुत्रक्रमी, पक्षी, कवक, जीवाणु, वायरस आदि जैविक एजेंट प्राकृतिक शत्रु हो सकते हैं।
8. **खरपतवार प्रबंधन** : पारिस्थितिक, फसल कृषि व्यवस्था, यांत्रिक और मृदा सौरकरण।
9. **जैविक बीज–मसालों के उत्पादन की तकनीकें** : जैविक स्रोतों के माध्यम से जैविक खादों और पोषक तत्वों के प्रबंधन के लिए मसाले की प्रतिक्रिया एवं उत्पादन में वृद्धि सर्वप्रथम जैविक जीरा (शर्मा एवं साथी, 2012) में प्रतिवदित की गई। उपरोक्त राज्यों में किसानों के एक छोटे समूह ने जैविक खेती शुरू की है, लेकिन इसके उत्पादन, क्षेत्र और निर्यात के बारे में आधिकारिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

धनियाँ

भूमि उपचार	• अंतिम जुताई के समय नीम की खली से 2 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि उपचार करें।
बीजोपचार	• बीजों का जैविक फंफूदीनाशक ट्राइकोडर्मा वाइरिडी से 6.0 ग्राम प्रति किलो बीज दर से 600 ग्राम एजोटोबेक्टर कल्चर एवं 600 ग्राम पीएसबी कल्चर प्रति हैक्टेयर की दर से मिलायें। • यदि बीजोपचार सम्भव नहीं हो तो ट्राइकोडर्मा वाइरिडी, एजोटोबेक्टर कल्चर तथा पीएस.बी. कल्चर प्रत्येक की 2.0 किलो प्रति हैक्टेयर मात्रा को 100 किलो गोबर की बारीक खाद में मिलाकर अंतिम जुताई के समय ऊर देवें।
पोषक तत्व प्रबंधन	• गर्मी में ढेंचे की हरी खाद लेवें। • यदि हरी खाद लेना सम्भव नहीं हो तो बुवाई से 21 दिन पूर्व 5 टन गोबर की खाद या 1.67 टन वर्मीकम्पोस्ट भूमि में मिलायें। • यदि हरी खाद लेना संभव न हो तो बुवाई से 21 दिन पूर्व 7.5 टन गोबर की खाद या अन्तिम जुताई के समय 2.5 टन वर्मीकम्पोस्ट भूमि में मिलायें।
कीट प्रबंधन (मोयला) **रोग प्रबन्धन (उखटा, छाछ्या एवं झुलसा)**	• मोयला के नियंत्रण हेतु पीली चौड़ीदार तख्ती पर ग्रीस लगाकर एक हैक्टेयर खेत में 10 से 15 की संख्या में लगायें। • नीम आधारित एजाडिरेक्टिन 1500 पी.पी.एम. का 5.0 मिली प्रति लीटर पानी (2.5 लीटर प्रति हैक्टेयर) की दर से छिड़काव करें। • धनिये में चने की फली छेदक कीट का प्रकोप भी होता है, इसकी निगरानी हेतु एक हैक्टेयर खेत में 5–7 अलग–अलग जगह पर फेरोमोन ट्रेप लगायें। • उखटा रोग नियंत्रण के लिये बीजों को ट्राइकोडर्मा 6.0 ग्राम प्रति किलो बीज दर से उपचारित करके बुवाई करें।

जीरा

भूमि उपचार	• जुताई से पूर्व दीमक की रोकथाम के लिये नीम या करंज की खली 2 क्वि/हैक्टेयर के हिसाब से मृदा में मिलाकर बुवाई कर देनी चाहिये।
बीजोपचार	• बीज जनित रोगों से बचाव के लिए 8 ग्राम/कि.ग्रा. बीज दर से ट्राइकोडर्मा से बीज को उपचारित करना चाहिए तत्पश्चात् बीज को 600 ग्राम एजोटोबेक्टर कल्चर एवं 600 ग्राम पीएसबी कल्चर प्रति हैक्टेयर की दर से बीजोपचारित करें।
पोषक तत्व प्रबंधन	• बुवाई से 21 दिन पूर्व गोबर की खाद 6 टन/हैक्टेयर से भूमि उपचार करें। • 75 ग्राम बी.डी. 500 खाद को 40 लीटर स्वच्छ पानी में एक घंटे तक घडी की दिशा एवं विपरीत दिशा में लकडी से घूमाते हुए अच्छी प्रकार घोल बना लेवें। फसल की बुवाई से पहले इस घोल को सायंकाल चन्द्र की दक्षिणायन अवस्था मे झाडू या पत्ती युक्त शााखा की कूँची से खेत मे बड़ी–बड़ी बूँदों के रूप मे एक हैक्टेयर में छिडकाव करें। • एक हैक्टेयर के लिए 2.5 ग्राम बी.डी. 501 को 40 लीटर पानी में एक घंटे तक घडी की दिशा एवं विपरित दिशा में लकडी से घूमाते हुए घोल बनावें। इस घोल को प्रातःकाल एक हैक्टेयर में छिड़कें। प्रथम छिडकाव पौधों पर 2–4 पत्ती अवस्था आने के बाद तथा द्वितीय छिडकाव फूल खिलते समय तथा तृतीय छिडकाव दाना बनने की शुरूआत की अवस्था में प्रातःकाल के समय चन्द्र उत्तरायण की स्थिति में किया जाना चाहिए।
कीट प्रबंधन (मोयला) **रोग प्रबन्धन (झुलसा एवं छाछ्या)**	• जीरे में मोयला कीट तथा झुलसा एवं छाछ्या रोग का प्रकोप कम करने हेतु अजेडीरेक्टीन 2 मिली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर बुवाई के 45–60 दिन पर प्रथम छिडकाव एवं दूसरा व तीसरा छिडकाव 15 दिन के अन्तर पर करें। नीम की निम्बोली का 5 प्रतिशत घोल बनाकर प्रथम छिडकाव बुवाई के 45 दिन बाद एवं दूसरा तथा तीसरा छिडकाव 15 दिन के अन्तर पर करें। छाछ्या रोग तथा उखटा रोग से बचाव के लिए बायोडायनेमिक खाद 501 (2.5 ग्राम प्रति हैक्टेयर 40 लीटर पानी में) का फरवरी माह के प्रथम सप्ताह तथा तृतीय सप्ताह एवं मिल्क व्हे (छैना का पानी) का 10 प्रतिशत घोल का फरवरी के दूसरे एवं चौथे सप्ताह में छिडकाव करना चाहिए।

मैथी

भूमि उपचार	• जुताई से पूर्व दीमक की रोकथाम के लिये नीम या करंज की खली 2 क्विंटल प्रति हैक्टेयर के हिसाब से मृदा में मिलाकर बुवाई कर देनी चाहिये।
बीजोपचार	• जैविक मैथी बुवाई के लिये बीजोपचार बिना किसी रसायन को काम में लिये करना चाहिये। इसके लिये ट्राईकोडर्मा 8 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें।
पोषक तत्व प्रबंधन	• गोबर की खाद 6 टन/हैक्टेयर की दर से भूमि उपचारित करें। • पौधों की सजीवता बढ़ाने के लिए बी.डी.–501 का 2.5 ग्राम प्रति 40 लीटर पानी के घोल से छिड़काव बुवाई के 20 दिन बाद करें।
कीट प्रबंधन	• बुवाई के 60 व 75 दिन के बाद नीम आधारित घोल (अजेडिरेक्टिन की मात्रा 2 मि.ली./लीटर) पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करें। आवश्यकता होने पर 15 दिन बाद पुनः छिड़काव दोहराया जा सकता है।

वर्मीकम्पोस्टिंग : जैविक खेती का सफल मार्ग

छत्रपाल बागड़ा, देवराज गुर्जर एवं उदय लाल गुर्जर
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

केंचुओं द्वारा कृषि अवशिष्ट को पचाकर उत्तम किस्म का कम्पोस्ट बनाया जाता है, जो वर्मीकम्पोस्ट कहलाता है। केचुएँ के अपशिष्ट मल, उनके कोकून सभी प्रकार के लाभकारी सूक्ष्म जीवाणु, मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्व और विघटित जैविक पदार्थों का मिश्रण वर्मीकम्पोस्ट कहलाता है। प्रकृति ने केंचुओं को अद्भुत क्षमता प्रदान की है। वे स्वयं के भार से अधिक मल–मूत्र का त्यागकर उत्कृष्ट कोटि का वर्मीकम्पोस्ट बना सकते है। वर्मीकम्पोस्ट में 1.2–2.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 1.6–1.8 प्रतिशत फॉस्फोरस तथा 10–1.5 प्रतिशत पोटाश की मात्रा पाई जाती है। इस कम्पोस्ट में एक्टीनोमाइसिटीज की मात्रा गोबर की खाद की तुलना में 8 गुना अधिक पाई जाती है। इसके अतिरिक्त वर्मीकम्पोस्ट में सूक्ष्म पोषक तत्व संतुलित मात्रा में तथा एन्जाइम व विटामिन भी पाये जाते है

केंचुओं के प्रकार

प्रकृति में लगभग 700 किस्म के केचुएँ पाये जाते हैं। इनमें से 293 प्रजातियों को लाभकारी पाया गया है। मुख्यतया तीन प्रकार के केचुएँ अधिक लाभकारी हैं।

1. एपिजिक – ये भूमि में एक मीटर की गहराई तक ही जाते हैं और कृषि अपशिष्टों को अधिक खाते हैं। वर्मीकम्पोस्ट बनाने में इन्हीं केंचुओं का प्रयोग किया जाता है। इनकी कुछ प्रजातियाँ है : पेरेनिप्स, आर्वोशीकोली, फेरेटिमा इलोन्गेटा, आईसीनिया फोईटिडा आदि।

2. इन्डोजिक – ये केंचुएँ भूमि में गहरी सुरंग बनाते हैं (3 मीटर से अधिक), ये केंचुएँ कृषि अपशिष्टों को कम व मिट्टी को अधिक खाते हैं। यह किस्म जल निकास में उपयोगी है।

3. डायोजिक – ये केंचुएँ 1–3 मीटर की गहराई पर रहते हैं एवं दोनो प्रजातियों के बीच की श्रेणी में आते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि – वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करते हैं जो ऊँचा तथा छायादार हो। छाया नहीं होने की स्थिति में वर्मीबेड के ऊपर छप्पर डाल कर छाया करनी चाहिए, क्योकि केंचुओं को अधिक प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती है। केंचुएँ अंधेरे में अधिक क्रियाशील रहते है। प्रजनन एवं खाद निर्माण क्रिया के लिये 30 प्रतिशत नमी 25–30° सेल्सियस तापमान आवश्यक है। वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए बेड (क्यारी) की लम्बाई 40–50 फीट और चौड़ाई 3–4 फीट रखते हैं। लम्बाई व चौड़ाई को आवश्यकतानुसार कम या ज्यादा कर सकते हैं, परन्तु वर्मीकम्पोस्ट तैयार होने पर उसको एकत्र करने में सुविधा के लिए चौड़ाई 4 फीट तक ही रखते हैं। आवश्यकतानुसार एक छप्पर के नीचे एक से अधिक क्यारियाँ बना सकते है। क्यारी में मामूली सड़ा हुआ भूसा, तिनके, कड़वी, जूट आदि को सतह पर 3 इंच की मोटाई में तह लगाकर बिछौना बनाया जाता है। बिछावन को पानी से नम कर दिया जाता है। इस बिछावन पर 2 इंच मोटाई की एक परत कम्पोस्ट या गोबर की बिछाई जाती है और पुनः इस परत को पानी से नम कर देते है। इस परत पर वर्मीकम्पोस्ट, जिसमें केंचुएँ व कोकून होते हैं, डाल दी जाती है। इस परत के ऊपर गोबर व मामूली सड़ा हुआ कृषि अपशिष्ट पदार्थ मिलाकर बिछा दिया जाता है। इस तरह परतों की कुल ऊँचाई लगभग डेढ़ फीट तक हो जाती है। इसको टाट या घास–फूस से ढक दिया जाता है। इस ढेर पर समय–समय पर पानी का छिड़काव करना चाहिये। उचित परिस्थितियों में वर्मीकम्पोस्ट 60 दिन में बनकर तैयार हो जाता है। वर्मीकम्पोस्ट तैयार हो जाने पर पानी का छिड़काव बन्द कर देते है जिससे केंचुएँ क्यारी में नीचे की परत में चले जाते है। उसके बाद ऊपर से वर्मीकम्पोस्ट को इकट्ठा कर लेते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट के लाभ

1. वर्मीकम्पोस्ट देशी खाद की तुलना में अधिक श्रेष्ठ किस्म का होता है। इसमें गोबर की खाद तुलना में अधिक मात्रा में पोषक तत्व पाये जाते है।
2. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है अतः भूमि का कटाव रूकता है।
3. वर्मीकम्पोस्ट में एक्टीनोमाइसिटीज की मात्रा देशी खाद की तुलना में 8 गुना अधिक होने से फसलों में रोग प्रतिरोधकता बढ़ती है।
4. वर्मीकम्पोस्ट के उपर्याग से खेत मे हयूमस की मात्रा बढ़ती है।
5. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से खेत में खरपतवार व दीमक का प्रकोप कम होता है।
6. केंचएँ ऑक्सीन नामक हार्मोन्स का स्राव करते हैं जो पौधों की वृद्धि एवं रोगरोधी क्षमता बढ़ाता है।
7. वर्मीकम्पोस्ट टिकाऊ खेती के लिए बहुत महत्वपूर्ण है तथा यह जैविक खेती की दिशा में एक नया कदम है।

प्रयोग विधि– वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग विभिन्न फसलों में अलग–अलग मात्रा में किया जाता है। खेत की तैयारी के समय 2.5–3.0 टन प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग कर जुताई कर मिला लेते हैं। खाद्यान्न फसलों में 5–6 टन प्रति हेक्टेयर वर्मीकम्पोस्ट प्रयोग किया जाता है। वर्मीकम्पोस्ट भुरभुरा होने के कारण कृषक इसका उपयोग बुआई के समय ऊर कर भी करते है।

वर्मीकंपोस्ट सिंथेटिक उर्वरकों का एक टिकाऊ और पर्यावरण के अनुकूल विकल्प है। यह मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार, पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने और कृषि अपशिष्ट को कम करके जैविक खेती में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्मीकंपोस्टिंग को अपनाने से टिकाऊ कृषि और हरित भविष्य में योगदान मिल सकता है।

टिकाऊ खेती में हरी खाद की उपयोगिता

सुमित्रा देवी बम्बोरिया[1], अमरचंद शिवरान[2] एवं शान्ति देवी बम्बोरिया[3]
[1]सहायक आचार्य, [2]आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर
[3]कृषि शोध वैज्ञानिक, भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना

हरी खाद

मृदा के लगातार दोहन से उसमें उपस्थित पौधे की बढ़वार के लिये आवश्यक तत्त्व नष्ट होते जा रहे हैं। इनकी क्षतिपूर्ति हेतु व मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के लिये हरी खाद एक उत्तम विकल्प है। बिना गले–सड़े हरे पौधे (दलहनी एवं अन्य फसलों अथवा उनके भाग) को जब मृदा की नत्रजन या जीवांश की मात्रा बढ़ाने के लिये खेत में दबाया जाता है तो इस क्रिया को हरी खाद देना कहते हैं। इसमें पशु धन में आई कमी के कारण गोबर की उपलब्धता पर भी हमें निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। अतः हमें हरी खाद के यथासंभव उपयोग पर गंभीरता से विचार कर क्रियान्वयन करना चाहिये। हरी खाद, मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिये एवं फसल उत्पादन हेतु जैविक माध्यम से तत्वों की पूर्ति का वह साधन है जिसमें हरी वानस्पतिक सामग्री को उसी खेत में उगाकर या कहीं से लाकर खेत में मिला दिया जाता है।

हरी खाद के लाभ

- हरी खाद के प्रयोग से मृदा में जीवांश पदार्थ की वृद्धि होती है इससे प्रदान किये गये पोषक तत्व मृदा में अधिक स्थाई होते है।
- हरी खाद से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक संरचना में सुधार होकर जल धारण क्षमता बढ़ती है। अतः बिल्कुल बलुई भूमि के सुधार के लिये भी हरी खाद का प्रयोग किया जा सकता है।
- ढैंचा, एक दलहनी फसल होने से इसकी जड़ ग्रंथियों में जीवाणुओं द्वारा मृदा में नाइट्रोजन संचयन में वृद्धि होती है व अन्य लाभदायक जीवाणुओं की क्रियाशीलता भी बढ़ती है।
- हरी खाद की दलहनी फसलें जड़ों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर न केवल साथ बोई गई फसलों को बल्कि आगामी फसलों की भी नाइट्रोजन आवश्यकता के एक बड़े हिस्से की आपूर्ति कर सकती है। ढैंचा की एक फसल से लगभग 70–80 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर तक नाइट्रोजन भूमि में संचित हो जाती है।
- हरी खाद के उपयोग से भूमि में नाइट्रोजन व कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होती है तथा इससे मुख्य पोषक तत्वों के साथ गौण तथा सूक्ष्म तत्वों (जस्ता, लोहा, मैंग्नीज व तांबा) की उपलब्धता बढ़कर फसलोत्पादन में वृद्धि होती है।
- हरी खाद के प्रयोग से मृदा कटाव कम होने से पोषक तत्वों की हानि कम होती है।
- हरी खाद की सघन पौध एवं शीघ्र वृद्धि से खरपतवारों की रोकथाम होती है।
- हरी खाद द्वारा जीवांश पदार्थ मिट्टी में मिलकर रेतीली व चिकनी मिट्टी की संरचना को सुधारता है।
- हरी खाद के विघटन से अनेक अम्ल पैदा होकर मृदा पी.एच. को उदासीन करते हैं जिससे क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं में सुधार होता है।
- हरी खाद में मृदाजनित रोगों में भी कमी आती है।
- इसके प्रयोग से रसायनिक उर्वरकों में कमी करके भी टिकाऊ खेती कर सकते हैं। वातावरण तथा भूमि प्रदूषण की समस्या को समाप्त किया जा सकता है।
- लागत घटने से किसानों की आर्थिक स्थिति बेहतर होती है।

हरी खाद का वर्गीकरण

हरी खाद का वर्गीकरण

1. उसी स्थान पर उगाई जाने वाली हरी खाद – यह विधि अधिक लोकप्रिय है इसमें जिस खेत में हरी खाद का उपयोग करना है उसी खेत में फसल को उगाकर एक निश्चित समय पश्चात पाटा चलाकर मिट्टी पलटने वाले हल से जोतकर मिट्टी में सड़ने को छोड़ दिया जाता है। वर्तमान समय में पाटा चलाने व हल से पलटाई करने के बजाय रोटा वेटर का उपयोग करने से खड़ी फसल को मिट्टी में मिला देने से हरे पदार्थ का विघटन शीघ्र व आसानी से हो जाता है।
2. अपने स्थान से दूर उगाई जाने वाली हरी खाद की फसलें – इस विधि में जंगलों या अन्य स्थानों पर पेड़ पौधों, झाडियों आदि की पत्तियों, टहनियों आदि को इकठ्ठा करके खेत में मिला दिया जाता है।

आमतौर पर हरी खाद के उपयोग के लिये दलहनी फसलें उगाई जाती हैं। दलहनी फसलो की जड़ों में गांठे पाई जाती है तथा इन ग्रन्थियों में विशेष प्रकार के सहजीवी जीवाणु रहते है। जो कि वायुमंडल में पाई जाने वाली नाइट्रोजन का स्थरीकरण कर मिट्टी में नाइट्रोजन की पूर्ति का कार्य भी करते हैं अतः यह स्पष्ट है कि दलहनी फसलें मिट्टी की भौतिक दशा सुधारने के साथ साथ जीवांश पदार्थ एवं नाइट्रोजन की भी पूर्ति भी करते है। जबकि बिना फलीवाली फसलों में वायुमंडल की नाइट्रोजन का योगिकीकरण करने की क्षमता नहीं होती है।

हरी खाद बनाने के लिये अनुकूल फसले

ढेंचा, लोबिया, उर्द, मूंग, ग्वार बरसीम, कुछ मुख्य फसले है जिसका प्रयोग हरी खाद बनाने में होता है। इन फसलों की वृद्धि शीघ्र, कम समय में हो जाती है, पत्तियाँ बड़ी वजनदार एवं बहुत संख्या में रहती है एवं इनकी उर्वरक तथा जल की आवश्यकता कम होती है, जिससे कम लागत में अधिक कार्बनिक पदार्थ प्राप्त हो जाता है। दलहनी फसलों में जड़ों में नाइट्रोजन को वातावरण से मृदा में स्थिर करने वाले जीवाणु पाये जाते हैं।

ढेंचा इनमें से अधिक आकांक्षित है। ढैंचा की मुख्य किस्में सस्बेनीया ऐजिप्टिका, एस रोस्ट्रेटा तथा एस एक्वेलेटा अपने त्वरित खनिजकरण पैर्टन, उच्च नाइट्रोजन मात्रा के कारण बाद में बोई गई मुख्य फसल की उत्पादकता पर उल्लेखनीय प्रभाव डालने में सक्षम है। ढैंचा को सूखे की दशा वाले स्थानों में तथा समस्याग्रस्त भूमि में जैसे क्षारीय दशा में उपयोग कर सकते है। ग्वार को कम वर्षा वाले स्थानों में रेतीली, कम उपजाऊ भूमि में लगायें। लोबिया को अच्छे जल निकास वाली क्षारीय मृदा में तथा मूंग, उड़द को खरीफ या ग्रीष्म काल में ऐसे भूमि में ले जहाँ जल भराव न होता हो। इससे इनकी फलियों की अच्छी उपज प्राप्त हो जाती है तथा शेष पौधा हरी खाद के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।

आदर्श हरी खाद फसल के गुण

- न्यूनतम सिंचाई।
- शीघ्र वृद्धि करने की क्षमता हो।
- खरपतवारों को दबाते हुए विपरीत परिस्थितियों में उगने की क्षमता हो।
- कम समय में अधिक मात्रा में वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करती हो।
- फसल गहरी जड़ वाली हो जिससे वह जमीन में गहराई तक जाकर अधिक से अधिक पोषक तत्वों को खींच सके।
- हरी खाद की फसल के सड़ने पर उसमें उपलब्ध सारे पोषक तत्व मिट्टी की ऊपरी सतह पर रह जाते है जिनका उपयोग बाद में बोई जाने वाली मुख्य फसल के द्वारा किया जाता है।
- फसल के वानस्पतिक भाग मुलायम होने चाहिये।
- ये वे फसलें होनी चाहिए जो जल्दी ही जमीन की सतह को ढक लें। चाहे जमीन रेतीली या भारी या जिसकी बनावट ठीक न हो में ठीक प्रकार बढ़ सकें।

हरी खाद के सिद्धान्त

बुवाई का समय–अपने क्षेत्र के लिये अनुकूल फसल का चयन करके, बुवाई वर्षा प्रारम्भ होने के तुरन्त बाद कर देना चाहिये तथा यदि सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो हरी खाद की बुवाई वर्षा शुरू होने के पूर्व ही कर देनी चाहिये। हरी खाद के लिये फसल की बुवाई करते समय खेत में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है। बीज दर हरी खाद वाली फसलों की बुवाई हेतु बीज की मात्रा बीज के आकार पर निर्भर करती है जिन फसलो के बीज छोटे होते है उनमे बीज दर 25–30 किग्रा तथा बडे आकार वाली किस्मों की बीज दर 40–50 किग्रा/हैक्टर तक पर्याप्त होती है।

उर्वरक की आवश्यकता–यद्यपि हरी खाद की फसल को उर्वरकों की आवश्यकता बहुत कम मात्रा में होती है परन्तु फसल को शीघ्र बढ़ाने हेतु, जिससे कि मिट्टी को अधिक से अधिक हरा पदार्थ मिल सके व आगे की फसल की उपज को बढ़ाने हेतु 50–60 किग्रा/हैक्टर फास्फोरस की मात्रा देना पर्याप्त होता है।

फसल की पलटाई का समय–फसल को एक विशेष अवस्था पर ही खेत में पलटने से भूमि को अधिकतम नाइट्रोजन एवं जीवांश पदार्थ की मात्रा प्राप्त होती है। इस अवस्था से पहले या बाद में फसल पलटने से अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता है। यह विशेष अवस्था उस समय होती है जब फसल कुछ अपरिपक्व अवस्था में हो तथा फूल निकलना प्रारम्भ हो गये हों। इस समय वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है तथा पौधों की शाखायें व पत्तियां मुलायम होती हैं तथा फसल का कार्बनः नाइट्रोजन अनुपात भी कम होता है। ढेंचा में 40 दिन बाद यह अवस्था आती है। फसल को पलटने के लिये पुरानी पद्धति में पाटा चलाकर फिर मिट्टी पलटने वाले हल से फसल को मिट्टी में दबा दिया जाता है। परन्तु अब रोटावेटर की उपलब्धता व प्रयोग से यह कार्य अधिक बेहतर तरीके से किया जा सकता है क्योंकि इसमें फसल को सीधे छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर मिट्टी में मिलाने की प्रक्रिया एक बार में ही पूर्ण कर दी जाती है। जिससे समय की बचत के साथ–साथ हरे पदार्थ का सड़ाव जल्दी पूर्ण होता है।

हरी खाद प्रयोग में कठिनाईयाँ

- फलीदार फसल में पानी की काफी मात्रा होती है परन्तु अन्य फसलों में रेशा काफी होने की वजह से मुख्य फसल में नत्रजन की मात्रा काफी कम हो जाती है।
- इसके सड़ने–गलने हेतु नमी का होना आवश्यक है।

हरी खाद बनाने के लिये अनुकूल फसलों का विवरण

फसलें	बुवाई का समय	बीज दर (किग्रा/हेक्टेयर)	नत्रजन (प्रतिशत)	प्राप्त नत्रजन (किग्रा/हेक्टेयर)
ढेंचा	अप्रैल–जुलाई	80–100	0.42	84–105
लोबिया	अप्रैल–जुलाई	45–55	0.49	74–88
मूंग	जून–जुलाई	20–22	0.53	50–55
ग्वार	अप्रैल–जुलाई	30–40	0.34	68–85

प्राकृतिक खेती के लिए जीवामृत है एक वरदान

जितेंद्र सिंह बम्बोरिया[1], सुमित्रा देवी बम्बोरिया[2] एवं शान्ति देवी बम्बोरिया[3]

[1]सहायक आचार्य, कृषि महाविद्यालय, सुमेरपुर, कृषि विश्विद्यालय, जोधपुर

[2]सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, राजस्थान

[3]कृषि शोध वैज्ञानिक, भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थालन, लुधियाना

आजकल कृषि में रसायनिक खादों व कीटनाशकों का बहुतायत में प्रयोग किया जा रहा है जिससे फसल उत्पादन तो एक हद तक प्राप्त हो जाता है परंतु इसके साथ–साथ भूमि की उर्वराशक्ति क्षीण हो जाती है तथा साथ ही साथ कृषि उपज के उपभोग से मानव स्वास्थ्य पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। कृषि उपज की गुणवत्ता, रसायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों के प्रयोग से न केवल दिन पर दिन कम होती जा रही है वरन मनुष्य पर इसका हानिकारक प्रभाव जैसे बहुत ही भयंकर बीमारियां आदि उत्पन्न हो रही हैं। जैविक खाद एक ऐसी खाद होती है जिसको साधारण किसान अपने घर या फार्म पर आसानी से तैयार कर सकते हैं तथा इसका फसलों पर प्रभाव बहुत ही स्थाई होता है इसके प्रयोग से न केवल उत्पादन अधिक प्राप्त हो जाता है बल्कि इसका भूमि पर भी कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है यह भूमि की उर्वराशक्ति को बढ़ाता है तथा यह बहुत ही सस्ती खाद होती है। जीवामृत एक अत्यधिक प्रभावशाली जैविक खाद है जिसे गोबर के साथ पानी मे कई और पदार्थ मिलाकर तैयार किया जाता है जो पौधों की वृद्धि और विकास में सहायक है। यह पौधों की विभिन्न रोगाणुओं से सुरक्षा करता है तथा पौधों की प्रतिरक्षा क्षमता को बढ़ाता है जिससे पौधे स्वस्थ बने रहते हैं तथा फसल से बहुत ही अच्छी पैदावार मिलती है। जीवामृत को दो रूपों में बना सकते है।

जीवामृत के प्रयोग से होने वाले लाभ

- जीवामृत के लगातार प्रयोग करने से भूमि में केचुआ और अन्य लाभदायक सूक्ष्म जीव जैसे– शैवाल, कवक, प्रोटोजोआ व बैक्टीरिया इत्यादि में वृद्धि होती है जो पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं।
- भूमि के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में भी इसके प्रयोग से सुधार होता है जिससे भूमि की उपजाऊ शक्ति बनी रहती है।
- जीवामृत उपयोग में लाते ही इसके जीवाणु नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, लोहा, गंधक, जिंक आदि को पकाकर पौधों की जड़ों को उपलब्ध करा देते हैं। मिट्टी में से तत्वों को लेने और उपयोग करने की क्षमता बढ़ती है।
- पौधों में बिमारियों, अधिक ठंड और अधिक गर्मी से के प्रति लड़ने की शक्ति बढ़ाता है। जीवामृत कृषि के लिए उपयुक्त जीवाणुओं का पोषण करता है। यह अत्यधिक प्रभावी फफूंदनाशक एवं विषाणुनाशक है।
- जीवामृत सभी फसलों के लिए लाभकरी है। फसलो पर इसके प्रयोग से फूलों और फलों में वृद्धि होती है।
- जीवामृत के प्रयोग से फल, सब्जी, अनाज देखने में सुंदर और खाने में अधिक स्वादिष्ट होते है।
- बीज की अंकुरण क्षमता में वृद्धि होती है।
- इससे फसलों और फलों में एकसारता आती है तथा पैदावार में भी वृद्धि होती है।

जीवामृत के दो प्रकार – घन जीवामृत और तरल जीवामृत

(अ) घन जीवामृत (एक एकड़ खेत के लिए)

आवश्यक सामग्री

1. 100 किलोग्राम गाय का गोबर
2. 2 किलोग्राम गुड या फलों के गुदा की चटनी
3. 2 किलोग्राम दाल का आटा (चना, उड़द, अरहर, मूंग)
4. 1 किलोग्राम मेड़ या जंगल की मिट्टी
5. 5 लीटर गौमूत्र

बनाने की विधि

- सर्वप्रथम 100 किलोग्राम गाय के गोबर को किसी पक्के फर्श व पोलीथीन पर फैलाएं।
- इसके बाद 2 किलोग्राम गुड़, 2 किलोग्राम दाल का आटा और 1 किलोग्राम सजीव मिट्टी डालकर अच्छी तरह मिश्रण तैयार कर लें तथा 5 लीटर गौमूत्र सभी सामग्री को फावड़ा से मिलाएं
- फिर 48 घंटे छायादार स्थान पर एकत्र कर जूट के बोरे से ढक दें। 48 घंटे बाद उसको छाया पर सुखाकर चूर्ण बनाकर भंडारण करें।
- सूखने के बाद इसको लकड़ी से ठोक कर बारीक कर लें तथा इसे बोरों में भरकर छाँव में रख दें। इस प्रकार बने घन जीवामृत को आप 6 महीने तक भंडारण करके रख सकते हैं।

प्रयोग विधि

खेत की जुताई के बाद इसका प्रयोग सबसे अच्छा होता है। जब हम भूमि में इसे डालते हैं तो नमी मिलते ही घन जीवामृत में मौजूद सूक्ष्म जीवाणु कोष तोड़कर समाधि भंग करके पुनः अपने कार्य में लग जाते हैं। किसी भी फसल की बुवाई के समय प्रति एकड़ 100 किलोग्राम जैविक खाद और 20 किलोग्राम घन जीवामृत को बीज के साथ बोइये।

सावधानियां

- सात दिन का छाया में रखा हुआ गोबर का प्रयोग करें।
- गोमूत्र किसी धातु के बर्तन में न ले।

(ब) तरल जीवामृत

सामग्री (एक एकड़ हेतु)

1. 10 किलोग्राम देशी गाय का गोबर
2. 5 से 10 लीटर गोमूत्र
3. 2 किलोग्राम गुड या फलों के गुदों की चटनी
4. 2 किलोग्राम बेसन (चना, उड़द, मूंग)
5. 200 लीटर पानी
6. 50 ग्राम बरगद या पीपल के पेड़ के नीचे की मिट्टी (सजीव मिट्टी)

बनाने की विधि

- सर्वप्रथम कोई एक मिट्टी के मटके या प्लास्टिक या सीमेंट की टंकी में 200 ली. पानी डाले।
- पानी में 10 किलोग्राम गाय का गोबर व 5 से 10 लीटर गोमूत्र एवं 2 किलोग्राम गुड़ या फलों के गुदों की चटनी मिलाएं।
- इसके बाद 2 किलोग्राम बेसन, 50 ग्राम मेड़ की मिट्टी डालकर किसी डंडे की सहायता से इस मिश्रण को अच्छी तरह हिलाये जिससे ये पूरी तरह से मिक्स हो जाये।
- फिर मटके या टंकी को जालीदार कपड़े से बंद कर छांव मे रखदे। इस मिश्रण पर सीधी धूप नही पड़नी चाहिए।
- से 7 दिनों तक मिश्रण की वायु निकलने के लिए प्रतिदिन सुबह–शाम मिश्रण को डंडे से अच्छे से हिलाएं।
- लगभग 7 दिन के बाद जीवामृत उपयोग के लिए बनकर तैयार हो जायेगा। यह 200 लीटर जीवामृत एक एकड़ भूमि के लिये पर्याप्त है। जीवामृत बनते समय हर 20 मिनट में उनकी संख्या दोगुनी हो जाती है। जीवामृत जब हम 7 दिन तक किण्वन के लिए रखते हैं तो उनकी संख्या अरबों–खरबों हो जाती है। जब हम जीवामृत भूमि में पानी के साथ डालते हैं, तब भूमि में ये सूक्ष्म जीव अपने कार्य में लग जाते हैं तथा पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं।

प्रयोग विधि

इसके प्रयोग लिए सबसे अच्छा तरीका है फसल में पानी के साथ जीवामृत देना जिस खेत में आप सिंचाई कर रहे हैं उस खेत के लिए पानी ले जाने वाली नाली के ऊपर ड्रम को रखकर वाल्व की सहायता से जीवामृत पानी मे डाले धार इतनी रखें कि खेत में पानी लगने के साथ ही ड्रम खाली हो जाए। जीवामृत पानी में मिलकर अपने आप फसलों की जड़ों तक पहुँचेगा। इस प्रकार जीवामृत 21 दिनों के अंतराल पर आप फसलो को दे सकते है। इसके अलावा खेत की जुताई के समय भी जीवामृत को मिट्टी पर भी छिड़का जा सकता है। जीवामृत छिडकते समय भूमि में नमी होनी चाहिए।

छिड़काव

जीवामृत को जब सिंचाई करते है तो 5 ली. छना जीवामृत 100 ली. पानी में घोल कर पानी के साथ छिड़काव करें अगर पानी के साथ छिड़काव नहीं करते तो स्प्रे मशीन द्वारा छिड़काव करें।

सावधानियां

- प्लास्टिक व सीमेंट की टंकी को छाया में रखे।
- गोमूत्र को धातु के बर्तन में न रखें।
- छाए में रखा हुआ गोबर का ही प्रयोग करें।
- जीवामृत का प्रयोग केवल सात दिनों तक कर सकते हैं।

राजस्थान में सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) की खेती की वर्तमान स्थिति और संभावनाएं

रमाकांत शर्मा, दिनेश अरोड़ा एवं डी. एस. भाटी
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर

सांवां (इकाइनोक्लोआ प्रुफमेंटेशिया), जिसे बार्नयार्ड मिलेट के नाम से भी जाना जाता है, एक महत्वपूर्ण मिलेट फसल है, जो पोषण में भरपूर होती है और राजस्थान क्षेत्र में इसके उगाने की अनुकूल परिस्थितियाँ हैं। यह फसल चावल और अन्य अनाजों के विकल्प के रूप में उगाई जाती है, और इसके पोषणात्मक लाभ के कारण यह स्थानीय आहार में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।इस राज्य के कई हिस्सों में कम पानी की आवश्यकता वाली फसलों की खेती करना आवश्यक है, और इस संदर्भ में सांवा (बार्नयार्ड मिलेट) एक महत्वपूर्ण विकल्प के रूप में सामने आया है। सांवा न केवल राजस्थान के जलवायु और मृदा परिस्थितियों के अनुकूल है, बल्कि इसके पोषण गुण और जलवायु प्रतिरोधी गुण इसे एक लाभकारी फसल बनाते हैं।

राजस्थान में सांवा की खेती के प्रमुख क्षेत्र

दक्षिणी राजस्थान (उदयपुर, राजसमंद, चित्तौड़गढ़)

दक्षिणी राजस्थान के पहाड़ी क्षेत्रों में और उन स्थानों पर जहां वर्षा की मात्रा सीमित रहती है, सांवा की खेती की जा रही है। यहाँ की मिट्टी सामान्यतः दोमट और बलुई है, जो सांवा के लिए उपयुक्त है। विशेष रूप से उदयपुर और राजसमंद जिले के इलाके में इस फसल का अच्छा उत्पादन देखा जाता है।

पूर्वी राजस्थान (कोटा, बारां, झालावाड़)

इन क्षेत्रों में भी सांवा की खेती होती है, विशेष रूप से उन इलाकों में जहां पानी की कमी रहती है और सिंचाई की सुविधा सीमित होती है। कोटा और झालावाड़ जैसे जिले इस फसल के लिए उपयुक्त हैं, क्योंकि यहाँ की मिट्टी और जलवायु सांवा की खेती के लिए अनुकूल हैं।

उत्तर–पूर्वी राजस्थान (अलवर, धौलपुर, भरतपुर)

इस क्षेत्र में भी सांवा की खेती होती है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां खेती पर वर्षा का प्रभाव अधिक होता है। धौलपुर और भरतपुर जिलों में किसानों द्वारा इस फसल को उगाने के प्रयास किए जा रहे हैं, क्योंकि यहाँ के क्षेत्रों में जलवायु और मृदा का संयोजन सांवा के लिए आदर्श है।

पश्चिमी राजस्थान (जोधपुर, पाली, जैसलमेर)

राजस्थान के शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों जैसे जोधपुर, पाली और जैसलमेर में भी सांवा की खेती की संभावनाएं हैं। यहां के रेगिस्तानी क्षेत्र में कम पानी की आवश्यकता वाली फसलों की उपज को बढ़ावा देने के लिए सांवा जैसे मिलेट्स का उत्पादन किया जा सकता है।

राजस्थान में सांवा की खेती की संभावनाएं

कम पानी की आवश्यकता

राजस्थान में पानी की कमी एक बड़ी समस्या है। सांवा एक ऐसा अनाज है जिसे कम जलवायु और पानी की कमी में भी उगाया जा सकता है। इसकी विशेषता है कि यह अत्यधिक गर्मी और सूखे की परिस्थितियों में भी अच्छी उपज दे सकता है। यह विशेष रूप से उन क्षेत्रों में आदर्श है जहां सिंचाई की सुविधाएं सीमित हैं, जैसे पश्चिमी और दक्षिणी राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्र।

पोषण में वृद्धि

राजस्थान में पोषण की कमी एक प्रमुख समस्या है, विशेषकर ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में। सांवा में प्रोटीन, आयरन, मैग्नीशियम, और जिंक जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व होते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी हैं। इसे अपनी पारंपरिक खाद्य प्रणाली में जोड़ने से न केवल खेती में विविधता आएगी, बल्कि लोगों की पोषण स्थिति भी सुधरेगी।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का मुकाबला

जलवायु परिवर्तन से राजस्थान में बेमौसम वर्षा और सूखा जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। सांवा जैसे मिलेट्स इस बदलाव के साथ सामंजस्य बैठाते हुए ज्यादा उपज देने में सक्षम हैं। यह फसल लंबी सूखा अवधि और अत्यधिक गर्मी के बावजूद बढ़ सकती है, जिससे यह जलवायु परिवर्तन से निपटने में सहायक हो सकती है।

कृषि विविधीकरण

राजस्थान के किसान पारंपरिक फसलों के अलावा अब कृषि विविधीकरण की ओर बढ़ रहे हैं। सांवा को अन्य फसलों के साथ मिलाकर उगाने से किसानों को उच्च लाभ मिल सकता है। खासकर जहां पर धान या गेहूं की खेती नहीं हो पाती, वहां सांवा का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

सरकारी योजनाएँ और समर्थन

राजस्थान सरकार द्वारा कृषि सुधार योजनाओं के तहत मिलेट्स के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएँ लागू की जा रही हैं। इससे किसानों को सांवा की खेती में तकनीकी समर्थन और बेहतर विपणन व्यवस्था मिल सकती है, जो इसे और अधिक लाभकारी बनाएगा।

संभावित क्षेत्रों के विस्तार

रेगिस्तानी और अर्ध–रेगिस्तानी क्षेत्र (जैसलमेर, बाड़मेर, और श्रीगंगानगर)राजस्थान के पश्चिमी और उत्तरी क्षेत्रों जैसे जैसलमेर, बाड़मेर और श्रीगंगानगर में खेती की सीमित जल संसाधनों के बावजूद सांवा की खेती की बड़ी संभावनाएं हैं। इन क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा कम रहती है, और जलवायु ऐसी है कि सांवा जैसी मिलेट्स बहुत अच्छे से उगाई जा सकती हैं।

आदिवासी क्षेत्र (उदयपुर, सिरोही, डूंगरपुर)
राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों में जहां पर कृषि भूमि की गुणवत्ता अच्छी है लेकिन संसाधनों की कमी है, वहां सांवा की खेती किसानों की आय बढ़ाने का एक अच्छा उपाय हो सकता है। यहाँ पर इस फसल को बढ़ावा देने से कृषि के प्रति रुचि और आत्मनिर्भरता बढ़ सकती है।

उत्तरी राजस्थान के समतल क्षेत्र (हनुमानगढ़, चुरू, सीकर)
उत्तर–पश्चिमी राजस्थान के समतल क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है, जहां सांवा की खेती की संभावनाएं और बढ़ जाती हैं। इन क्षेत्रों में पर्याप्त वर्षा या सिंचाई व्यवस्था के साथ सांवा की उच्च उत्पादकता सुनिश्चित की जा सकती है।

सांवा के पोषण गुण

सांवां में प्रोटीन, फाइबर, आयरन, मैग्नीशियम, और जिंक जैसे महत्वपूर्ण खनिज पोषक तत्वों का उच्च स्तर होता है, जो विशेष रूप से गर्भवती महिलाओं, बच्चों, और शारीरिक विकास में लगे लोगों के लिए लाभकारी हैं। इसके अलावा, यह टाइप–2 मधुमेह और मोटापे के रोगियों के लिए भी लाभकारी है, क्योंकि इसमें उच्च फाइबर होता है, जो रक्त शर्करा स्तर को नियंत्रित करता है और शरीर में अतिरिक्त चर्बी को कम करने में मदद करता है।

खेत की तैयारी

राजस्थान में, जहां वर्षा सीमित होती है, सांवा को बलुई और दोमट मिट्टी वाली भूमि में उगाना सबसे अच्छा होता है। भूमि में जल निकासी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। बुवाई से पहले 2–3 बार खेत की जुताई करें और वर्षा के बाद खेत को तैयार करें। बुवाई से 2–3 सप्ताह पहले प्रति हेक्टेयर 10–12 टन गोबर की खाद डालें। अगर गोबर की खाद नहीं मिल सके, तो प्रति हेक्टेयर 12–16 किलो नत्रजन उर्वरक का प्रयोग किया जा सकता है।

भूमि उपचार

राजस्थान क्षेत्र में दीमक और अन्य भूमिगत कीटों का प्रकोप आम है। भूमि में बुवाई से पूर्व क्लोरीपाइरीफॉस 1.5 मिली प्रति लीटर पानी में घोलकर भूमि का उपचार करें। जहां सफेद लट का प्रकोप हो, वहां सफेद लट की रोकथाम के लिए उपयुक्त विधियाँ अपनाएं। खेत की सफाई और कच्चे खाद का प्रयोग न करना दीमक को नियंत्रित करने में सहायक होगा।

सांवा की उन्नत किस्में

राजस्थान क्षेत्र में उगाई जाने वाली सांवा की कुछ प्रमुख उन्नत किस्में निम्नलिखित है –

क्र.सं	किस्म	लोकार्पण वर्ष	परिपक्वता(दिन)	औसत उत्पादकता (क्विंटल / हैक्टर)	क्षेत्र	विशेषताएँ
1	ई आर 64 (प्रताप सावन 1)	2008	85–90	15–17	राजस्थान	कंड प्रतिरोधी, प्ररोह मक्खी सहनशील, द्वि–उद्देश्य किस्म, अत्यंत अगेती
2	वीएल मादिरा 207	2008	80–90	16–18	उत्तराखंड	अवशयन व झड़नरोधी
3	डीएचबीएम–93–2	2018	86–88	27–28	राजस्थान	आकस्मिक बुआई हेतु उपयुक्त

बीजोपचार

बीज को नमक के 20 प्रतिशत घोल (1 किलो नमक प्रति 5 लीटर पानी) में 5 मिनट तक डुबोकर तैरते हुए हल्के बीजों को हटा दें। फिर बीजों को साफ पानी से धोकर छाया में सुखाएं। इसके बाद प्रति किलो बीज में 2 ग्राम बाविस्टिन से उपचार करें। दीमक और अन्य कीटों से बचाव के लिए प्रति किलो बीज में 4 मिली क्लोरीपाइरीफॉस 20 ई.सी. या 10 मिली इमीडाक्लोप्रिड 600 एफ. एस. का प्रयोग करें।

बुवाई और बीज दर

राजस्थान में सांवा की बुवाई जून की पहली वर्षा के साथ की जानी चाहिए। पंक्ति बुवाई के लिए 8–10 किलो और छिड़काव विधि के लिए 12–15 किलो प्रमाणित बीज प्रति हेक्टेयर बोएं। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 22–30 सेंटीमीटर रखी जाए, और बीज को 3–5 सेंटीमीटर गहरा बोना चाहिए।

खाद और उर्वरक

राजस्थान में, जहां वर्षा सीमित होती है, सिंचित क्षेत्रों में 75 किलो नत्रजन और 25 किलो फास्फोरस प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करें। वर्षा 450 मिमी या अधिक होने पर यह उर्वरक अनुपात उपयुक्त रहेगा। जहां वर्षा कम हो, वहां 35–40 किलो नत्रजन और 20–30 किलो फास्फोरस प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करें।

सिंचाई और निराई–गुड़ाई

राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में सांवा को न्यूनतम सिंचाई की आवश्यकता होती है, लेकिन यदि सूखा अधिक समय तक रहे, तो बुवाई के 20–35 दिन और 45–50 दिन पर सिंचाई करें। यदि वर्षा की स्थिति अनुकूल नहीं है, तो 2–4 सिंचाइयाँ भी दी जा सकती हैं। बुवाई के 15–20 दिन बाद खरपतवारों की प्रतिस्पर्धा को नियंत्रित करने के लिए निराई–गुड़ाई करें।

कटाई और उपज

सांवां की फसल पकने पर हसिया से काटें और छोटे बंडल बनाकर खेत में एक सप्ताह तक सूखा लें। इसके बाद मड़ाई करें। राजस्थान में सांवा की औसतन उपज 12–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर दाना और 20–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर भूसा प्राप्त होती है।राजस्थान में सांवा की खेती स्थानीय किसानों के लिए एक आदर्श विकल्प हो सकती है। यह फसल न केवल पोषण से भरपूर है, बल्कि कम पानी की आवश्यकता और अत्यधिक कड़ी जलवायु परिस्थितियों में भी इसे उगाया जा सकता है। इसका उत्पादन राजस्थान की खाद्य सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है और किसानों को एक स्थिर और लाभकारी आय का स्रोत प्रदान कर सकता है।

एकीकृत कृषि प्रणाली का खाद्य, पोषण, रोजगार मे महत्व

राजवीर सिंह[1] एवं दुष्यन्त वर्मा[2]

[1]सहायक आचार्य, [2]सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

वर्तमान परिपेक्ष्य मे एकल कृषि प्रणाली से जोखिम—जैसा कि हम जानते है कि भारतीय जनसंख्या का लगभग 60 प्रतिशत सीधे तौर पर कृषि गतिविधियों पर निर्भर है, इसलिए कृषि को भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी माना जाता है। भारतीय कृषि में लघु एवं सीमांत किसानों का लगभग 86 प्रतिशत वर्चस्व है, जिनके पास कुल कृषि योग्य भूमि का केवल 44 प्रतिशत है। प्रायः यह देखने को मिल रहा है कि भारतीय सीमांत और छोटे किसान बाढ़ और सूखे जैसी जलवायु विसंगतियों के कारण ज्यादातर अनाज आधारित फसल उत्पादन कि ओर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे परिवार के भरण—पोषण के लिए पर्याप्त आय प्राप्त करने में असमर्थ हैं होते जा रहे है। वर्तमान समय मे भोजन और ऊर्जा की बढ़ती लागत, घटती जल आपूर्ति, खेतों का घटता आकार, मिट्टी का क्षरण, असंतुलित उर्वरक का उपयोग, कृषि रसायनों का अत्यधिक उपयोग और जलवायु परिवर्तन ये सभी कृषि उत्पादन प्रणाली की समस्याओं में योगदान दे रहे हैं। ये समस्याएँ कृषि उत्पादन और सामाजिक—आर्थिक और पर्यावरणीय स्थिरता के लिए गंभीर चुनौती पैदा कर रही हैं।

एकीकृत कृषि प्रणाली की परिभाषा—एकीकृत कृषि प्रणाली (आईएफएस) से तात्पर्य इनपुट का कुशल उपयोग करते हुए, उच्च उत्पादकता के लिए फसल, पशुधन, मछली, मुर्गी पालन, मधुमक्खी, कृषि वानिकी जैसी अन्योन्याश्रित कृषि गतिविधियों के वैज्ञानिक एकीकरण से है।

एकीकृत कृषि प्रणाली का सिद्धांत—इसकी अवधारणा के अन्तर्गत एक घटक से निकलने वाले कचरा सिस्टम को दूसरे घटक के अन्तर्गत इनपुट के रूप मे उपयोग करते है। आईएफएस की दो मुख्य विशेषताएं हैं—अवशेष पुनर्चक्रण के अन्तर्गत एक घटक के अपशिष्ट या उप—उत्पाद दूसरे घटक के लिए इनपुट बन जाते हैं, एवं बेहतर भूमि—उपयोग।

एकीकृत कृषि प्रणाली के घटक—आईएफएस दृष्टिकोण का उद्देश्य पारिस्थितिक गहनता को प्रोत्साहित करते हुए पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण, मिट्टी के निर्माण, मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि और पर्यावरणीय प्रदर्शन में सुधार जैसे उन्नत पारिस्थितिकी तंत्र के कामकाज के साथ मानवजनित इनपुट के उपयोग को कम करना है। आईएफएस के अन्तर्गत घटक / उद्यम कृषि—जलवायु स्थितियों जैसे भूमि के प्रकार, पानी की उपलब्धता, किसानों की सामाजिक आर्थिक स्थिति और बाजार की मांग के आधार पर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न हो सकते हैं। एक प्रभावी समग्र कृषि प्रणाली विकसित करने के लिए घटकों के बीच प्रभावी संबंध और संपूरकता स्थापित करने की आवश्यकता है।

एकीकृत कृषि प्रणाली की वर्तमान समय मे जरूरत— भारत सरकार ने कृषक समुदाय के उत्थान के लिए, मिश्रित कृषि प्रणालियों के संदर्भ में आईएफएस को बढ़ावा दिया है ताकि छोटे और सीमांत किसानों की आजीविका मे सुरक्षा लायी जा सके। एक कुशलतापूर्वक प्रबंधित आईएफएस के अन्तर्गत कम जोखिम होने की उम्मीद होती है, क्योंकि वे उद्यम तालमेल, उत्पाद विविधता और पारिस्थितिक विश्वसनीयता से लाभान्वित होते हैं। इसके अलावा आईएफएस प्राकृतिक फसल प्रणाली प्रबंधन के माध्यम से कीटों और बीमारियों और खरपतवारों को नियंत्रित करने में मदद करता है एवं इसके द्वारा कृषि उत्पादन के लिए हानिकारक कृषि—रसायनों का कम उपयोग होता है। इस प्रकार वर्तमान समस्याओ को ध्यान मे रखते हुए हमे एकीकृत कृषि प्रणाली (आईएफएस) को खाद्य उत्पादन की मांग में निरंतर वृद्धि के समाधान के लिए अपनाना होगा जिससे,लघु और सीमांत किसानों की आय मे वृद्धि के साथ साथ उनकी पोषण संबंधी समस्याओ के समाधान मे सहायता मिल सकेगी।

आईएफएस का महत्व : आईएफएस मॉडल के अन्तर्गत विभिन्न संगत उद्यमों को इस प्रकार जोड़ा जाता है जैसे कि फसलें (क्षेत्रीय फसलें, बागवानी फसलें), कृषि वानिकी (कृषि—सिल्वीकल्चर, कृषि—बागवानी, कृषि—देहाती, सिल्वी—देहाती, बागवानी—देहाती), पशुधन (डेयरी, सूअर) , मुर्गीपालन, छोटे जुगाली करने वाले पशु), मत्स्य पालन, मशरूम और मधुमक्खी पालन इत्यादि को एक सहक्रियात्मक तरीके से करें ताकि एक प्रक्रिया के अपशिष्ट इष्टतम कृषि उत्पादकता के लिए अन्य प्रक्रियाओं के लिए इनपुट बन जाएं। आईएफएस मॉडल के अन्तर्गत खेत मे फसलें खाद्य उत्पादन के लिए उगाई जाती हैं। जैसा कि हम जानते है कि बागवानी और सब्जी वाली फसलें अनाज वाली फसलों की तुलना में 2—3 गुना अधिक उत्पादन करती हैं इसलिए भूमि के एक ही टुकड़े में पोषण सुरक्षा और आय स्थिरता सुनिश्चित करने मे अहम भूमिका निभाती हैं। कटाई के बाद प्राप्त होने वाले फसल अवशेषों का उपयोग डेयरी और बकरी उत्पादन के लिए पशु चारे मे करते हुए, जानवरों के मल—मूत्र का उपयोग जैविक खाद या वर्मीकम्पोस्टिंग के रूप में भी किया जा सकता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता में सुधार होने के साथ साथ रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कम हो जाता है। घरेलू उपयोग के लिए बायोगैस एवं ऊर्जा उत्पादन के लिए जानवरों के मल को सुखाया जा सकता है, खाद बनाया जा सकता है या तरल खाद बनाया जा सकता है। निचले भूमि वाले क्षेत्रो मे चावल और मछली की चावल आधारित एकीकृत खेती से न केवल मछली उत्पादन में सुधार होता है, बल्कि चावल की उपज भी बढ़ती है क्योंकि मछली नाइट्रोजन और फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ाकर मिट्टी की उर्वरता में सुधार करती है। जब बत्तख के मुर्गों को तालाबों के ऊपर पाला जाता है, तो उनकी बूंदों का उपयोग मछलियों द्वारा पोषक तत्वों के रूप में किया जाता है और इससे उनका उत्पादन बढ़ता है। इसलिए, फसल—मछली—मुर्गी पालन ने एकल फसल खेती की तुलना में मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार के साथ सबसे अधिक शुद्ध आय भी प्राप्त होती है। इस प्रकार फसल, डेयरी, मत्स्य पालन, बागवानी और मधुमक्खी पालन और मशरूम से युक्त आईएफएस पूरे वर्ष बेरोजगार युवाओ को रोजगार के अवसर भी पैदा करता है।

एकीकृत कृषि प्रणाली का वर्तमान समय मे महत्व :

1. एकीकृत कृषि प्रणाली का कृषि आय पर प्रभाव : आईएफएस के माध्यम से उप—उत्पादों और विभिन्न घटकों के अवशेषों के पुनर्चक्रण द्वारा उत्पादन आई लागत कमी के कारण उच्च शुद्ध आय मे बढ़ोतरी होती है। आईएफएस को अपनाने से इनपुट लागत मे कमी से, संसाधन प्रवाह को प्रोत्साहित करते हुए एवं लक्षित कीट और पोषक तत्व प्रबंधन के माध्यम से विशेष रूप से उर्वरक, कीटनाशकों की खपत जैसे महत्वपूर्ण इनपुट को कम किया जा सकता है। आईएफएस के द्वारा पशुधन (डेयरी और पोल्ट्री) से उच्च उत्पाद विविधीकरण से छोटे और सीमांत किसानों की दैनिक आय उत्पन्न करने की क्षमता विकसित होती है। किसान अपने खेतो में उच्च मूल्य वाली सब्जियों और मसाला वाली फसलों को शामिल करके लंबी अवधि की एकल—फसल की तुलना में अधिक लाभ ले सकता है। डेयरी, बकरी पालन, मुर्गी पालन और सुअर पालन जैसे पशुधन घटक फसल की विफलता के दौरान कृषि बीमा के रूप में कार्य करेंगे।

2. **एकीकृत कृषि प्रणाली का रोजगार सृजन पर प्रभाव** : वर्तमान परिदृश्य में, आईएफएस एक बेहतर रोजगार सृजन के साथ साथ आर्थिक जोखिम को कम करने का एक उचित समाधान होगा। बहुत सारी फसलों एवं पशुधन प्रणाली के लिए श्रम की लगातार होने वाली आवश्यकता को देखते हुए और कृषक परिवारों को कृषि गतिविधियों में व्यस्त रखते हुए यह एक उच्च रोजगार सृजन का विकल्प प्रदान करती है।

3. एकीकृत कृषि प्रणाली का अवशेष पुनर्चक्रण और मिट्टी के स्वास्थ्य पर प्रभाव : एशियाई कृषि में फसल–पशुओ की परस्पर क्रिया से सकारात्मक और आर्थिक लाभ के काफी प्रमाण हैं जो टिकाऊ कृषि और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देते हैं। स्थानीय रूप से उपलब्ध इनपुट का समुचित उपयोग एवं इसके पुनर्चक्रण और उन्हें न्यूनतम आवश्यक मात्रा में बाहरी इनपुट के साथ एकीकृत करने से खेती प्रक्रिया की स्थिरता में वृद्धि होगी। आईएफएस के अन्तर्गत बाहरी बाजार से इनपुट की निर्भरता कम करने और मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए सबसे अच्छी संसाधन प्रबंधन रणनीति है। इस प्रकार पशुधन और मत्स्य पालन को फसलों के साथ एकीकृत करने से पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता, पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण और उच्च मिट्टी मे सूक्ष्मजीवो की गतिविधि में वृद्धि हुई है। इस प्रकार, आईएफएस एक ऐसा दृष्टिकोण है जो फसल अवशेषों से खाद का उत्पादन करके फसल के विकास और मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखते हुए जैविक खेती प्रणाली को अपनाने में भी मदद करता है।

4. एकीकृत कृषि प्रणाली का जलवायु लचीलेपन पर प्रभाव : आईएफएस प्रणाली में बारहमासी पेड़ों या बागवानी घटक (बारहमासी फल वाली फसलें) के साथ सीमा वृक्षारोपण शामिल है। इसके अलावा, इन प्रणालियों ने अवशेष पुनर्चक्रण को बढ़ाते हुए जमीन के बायोमास में अधिक कार्बन जमा करके जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभाव को कम कर दिया।

5. एकीकृत कृषि प्रणाली का जैव विविधता संरक्षण पर प्रभाव : आईएफएस जैसी बहु–उद्यम योजनाओं के द्वारा जैव विविधता बहाली के साथ–साथ विस्तारित संपूर्ण–प्रणाली आर्थिक और कृषि उत्पादकता के माध्यम से पारिस्थितिक कार्य को बढ़ाने मे मदद मिलती है। कृषि विविधीकरण का तात्पर्य जब कोई खेत या कृषि समुदाय अधिक पौधे, पौधों की किस्में, या पशु नस्लें के संयोजन से है। आईएफएस के अन्तर्गत कई फसलों को एक साथ उगाया जाता है जैसे कि अंतरफसलें, मिश्रित फसलें, अनुक्रमिक फसलें आदि (इसमें वार्षिक, बारहमासी फसलें और वृक्ष फसलें शामिल हो सकती हैं) जिसके माध्यम से कृषि मे पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं प्रदान की जाती हैं (पोषक तत्व पुनर्चक्रण, मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार, आर्थिक नुकसान कम होता है) जिससे फसल की विफलता मे कमी आती है। आईएफएस चावल–मछली–बत्तख पालन में खाद या खाद मिलाकर या बत्तख की बूंदों के माध्यम से मिट्टी में सूक्ष्मजीव जैव विविधता को भी प्रोत्साहित करता है। पारंपरिक चावल उत्पादन प्रणाली की तुलना में आईएफएस के द्वारा चावल–मछली–बत्तख, चावल–बत्तख और चावल–मछली प्रणाली में प्लवक और मैक्रो–बेन्थोस के उत्पादन के साथ पोषक तत्व पुनर्चक्रण (जैविक खाद) के कारण मिट्टी की सूक्ष्मजीव विविधता में संरचनात्मक भिन्नता देखी गई।

6. एकीकृत कृषि प्रणाली का खाद्य और पोषण सुरक्षा पर प्रभाव : आईएफएस प्रणालियाँ के समुचित उपयोग से भूमि के एक छोटे से टुकड़े से कृषक परिवारों की आहार संबंधी आवश्यकताओं को आंशिक या पूर्ण रूप से पूरी कर सकते हैं। आईएफएस के द्वारा भूमि और समय का सदुउपयोग करके कम अवधि की सब्जी वाली फसलें, दालें और पशुओं के लिए चारा वाली फसलें उगाकर हम बढ़ती भारतीय आबादी के लिए भविष्य में भोजन और पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा कर सकते हैं। गरीब छोटे और सीमांत किसानों के लिए पशुधन घटक से अंडे, दूध और मांस के माध्यम से प्रोटीन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए आईएफएस का विशेष महत्व है।

आईएफएस के फायदे :

1. आईएफएस फसलों और संबद्ध उद्यमों की गहनता के आधार पर प्रति इकाई क्षेत्र मे उत्पादकता को बढ़ावा देता है।
2. विभिन्न उत्पादन प्रणालियों के एकीकरण से यह कुपोषण जैसी समस्याओं को हल करने का अवसर प्रदान करता है।
3. यह उचित फसल चक्र से मिट्टी की उर्वरता और मिट्टी की भौतिक संरचना में सुधार करता है।
4. उचित फसल चक्र के माध्यम से यह खरपतवार, कीड़ों और बीमारियों के प्रभाव को कम करता है जिससे उच्च शुद्ध रिटर्न अधिक प्राप्त होता है।
5. एकीकृत खेती में जुड़ी गतिविधियों जैसे दूध, मशरूम, सब्जियां, और शहद और रेशमकीट कोकून एवं अंडे जैसे उत्पादों के माध्यम से नियमित रूप से आय भी स्थिर होती है।
6. यह संबद्ध उद्यमों के उप–उत्पादों से इनपुट रीसाइक्लिंग के माध्यम से घटकों की उत्पादन लागत को कम करता है। उत्पादन के लिए कचरे के पुनर्चक्रण से कचरे के ढेर और परिणामी प्रदूषण से बचने में मदद मिलती है।
7. पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा मिलता है जैसे, रासायनिक उर्वरक की आवश्यकता कम हो जाती है, कीटनाशकों का उपयोग कम हो जाता है।
8. प्रौद्योगिकी को अपनानाः बढ़ी हुई आय का स्तर किसानों को आधुनिक प्रौद्योगिकियों और मशीनीकरण को अपनाने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है।

एकीकृत कृषि प्रणाली के नुकसान :

1. भारी प्रारंभिक निवेश।
2. जागरूकता और ज्ञान की कमी।
3. उच्च ज्ञान और कौशल की आवश्यकताएं।
4. बहु–विषयक गतिविधियों में भागीदारी।
5. श्रम और समय की आवश्यकताओं में वृद्धि ।
6. विभिन्न उद्यमों को समझने के कारण विशेषज्ञता में कमी।
7. विभिन्न के बीच विरोधाभास खेती की गतिविधियाँ।
8. दोहरा लाभ प्राप्त करने की योजना बनाते समय, दोहरी जिम्मेदारी वहन करने की भी क्षमता होनी चाहिए क्योंकि किसान जिन विभिन्न क्षेत्रों को संयोजित करना चुनता है, उनकी अपनी विशिष्ट विशेषताएं होंगी जबकि वो ऐसा करने मे असमर्थ होता है।
9. वैज्ञानिक एकीकृत खेती के लाभों के बारे में तर्क देते हैं। इस प्रक्रिया पर छोटे से छोटे विवरण तक अच्छी तरह से विचार किया जाना चाहिए, ताकि सार्वजनिक स्वास्थ्य के मानदंडों का खंडन न हो।
10. कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि पक्षियों, सूअरों और मछलियों के मेल से इन्फ्लूएंजा जैसी बीमारियाँ हो सकती हैं। यह ज्ञात है कि सुअर के शरीर में मानव और एवियन इन्फ्लूएंजा मिश्रित हो सकते हैं और उत्परिवर्तन की प्रक्रिया में नए घातक वायरस उत्पन्न हो सकते हैं। इसकी कोई सटीक पुष्टि नहीं है कि ऐसा होगा, हालांकि, सतर्क रहना बेहतर है। सुरक्षा उपाय के रूप में, किसानों को सूअरों को पक्षियों के साथ मिलाने से बचना चाहिए।

मेंथा की अन्तर फसल खेती गेहूँ के साथ

इन्दुबाला सेठी[1], उम्मेद सिंह[3], एवं नरेन्द्र कुमार पारीक[2]

[1]सहायक आचार्य, [2]सह आचार्य एवं [3]आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

रबी ऋतु में उगाई जाने वाली फसलों में गेहूँ का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान में हमारे देश में गेहूँ की खेती लगभग 28 मिलियन हेक्टर में की जाती है। गेहूँ और मेंथा की एक साथ बुवाई कुंड–मेड विधि से की जाती है। उत्तरांचल एवं मध्य यूपी के तराई जिलों के अलावा पंजाब के कुछ क्षेत्रों में मेंथा उगाया जाता है। अतः गेहूँ को मेड पर बोया जाता है और मेंथा को कुंड में बोया जाता है। गेहूँ की बुवाई के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20 से 22.5 से. मी. रखी जाती है। दोनों फसलों को एक साथ उगाकर कम समय व कम क्षेत्र में अधिक आय प्राप्त की जा सकती है । मेंथा (पुदीना) एक नगदी फसल है। विश्व में मेंथा (पेपरमिंट) के तेल की अधिक मांग है। मेंथा ऑयल इसके पत्तों से तैयार किया जाता है। मेंथा का उपयोग दवाइयां बनाने से लेकर सौंदर्य प्रसाधन और भोजन में उपयोग होने के कारण इसकी मांग लगातार बढ़ती जा रही है। मेंथा ऑयल मुख्य रूप से पेपरमिंट और स्पीयरमिंट प्रजातियों से प्राप्त होता है और इसका फार्मास्यूटिकल्स, सौंदर्य प्रसाधन और स्वाद सहित विभिन्न उद्योगों में प्रयोग किया जाता है। मेंथा ऑयल को फार्मेसी में विभिन्न दवाओं और टॉपिकल क्रीमों के रूप में उपयोग किया जाता है। मेंथा ऑयल खुशबू वाले उत्पादों जैसे कि टूथपेस्ट, माउथवाश, शैंपू, तरल परफ्यूम, बॉडी लोशन और दर्द नाशक क्रीम आदि में उपयोग किया जाता है। मेंथा ऑयल को खाद्य उद्योग में जैसे मसाले, च्युइंग गम, कैंडी, चॉकलेट, टॉफी, चाय, नमकीन, चिप्स, नमकीन, बिस्कुट और मिठाई में उपयोग किया जाता है। मेंथा ऑयल को ग्रोसरी उत्पादों आदि में उपयोग किया जाता है।

गेहूँ के साथ मेंथा की अन्तर फसल खेती के लाभ :

- गेहूँ के अतिरिक्त अन्य खाद्य और सौंदय पदार्थों का उत्पादन होता है।
- गेहूँ उत्पादन की आमदनी के अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।
- मेंथा के लिए अलग से खेत तैयार करना नहीं पड़ता है।
- वर्षा जल व सिंचाई जल का समुचित उपयोग हो जाता है।
- खरपतवारों की समस्या कम आती है।
- रोग व कीटों का प्रकोप कम हो जाता है।
- भूमि व अन्य संसाधनों जैसे सूर्य प्रकाश, स्थान, पोषक तत्व आदि का इष्टतम उपयोग होता है।

मृदा का चुनाव :

गेहूँ व मेंथा अच्छी तरह से दोमट, रेतीली दोमट और दोमट मिट्टी में उगा सकते हैं। मृदा पीएच 6.5–7.0 होना चाहिए। अम्लीय और क्षारीय मिट्टी बीज के अंकुरण को रोकती हैं।

फसल चक्र का चुनाव :

गेहूँ व मेंथा की खेती रबी में की जाती है। गेहूँ व मेंथा अन्य फसलों जेसे मक्का, बाजरा, कपास, धान, आदि चना की कटाई के बाद बोई जाती हैं। दलहनी फसलों के साथ फसल चक्र अपनाने से गेहूँ व मेंथा में मिट्टी जनित रोगों और कीट को नियंत्रित करने में मदद मिलती है। इस तरह से फसल चक्र कीट और रोग चक्र को तोड़ने में लाभदायक है। गेहूँ की 8 से 12 पंक्तिया और सरसों की एक पंक्ति की बुवाई की जाती है। गेहूँ को आसानी से मेंथा के आलावा चना, जौ, अलसी, सूरजमुखी और रेपसीड और सरसों के साथ मिश्रित और अंतरवर्ती फसल के रूप में उगाया जा सकता है, निम्नलिखित फसल चक्र इस प्रकार है–
(1) मक्का – गेहूँ+मेंथा (2) परती – गेहूँ+मेंथा (3) धान – गेहूँ+मेंथा (4) बाजरा – गेहूँ+मेंथा (5) ज्वार – गेहूँ+मेंथा (6) गन्ना –गेहूँ (7) कपास –गेहूँ (8) जूट –गेहूँ

गेहूँ की उन्नत किस्में :

समय पर सिंचित क्षैत्र में बुवाई : डी. बी. डब्ल्यू 70 (कर्ण वेधी), डी. बी. डब्ल्यू 371 (कर्ण वृन्दा), डी. बी. डब्ल्यू 372 (कर्ण वरुणा), डी. बी. डब्ल्यू 327 (कर्ण शिवानी), डी. बी. डब्ल्यू 332 (कर्ण आदित्या), डी. बी. डब्ल्यू 303 (कर्ण वैष्णवी), डी. बी. डब्ल्यू 187 (कर्ण वंदना)

अगेती बुवाई, मध्यम प्रजनन क्षमता और असिंचित क्षेत्र : सी 306, डब्ल्यू.एच.– 1025, के – 1080

सामान्य बुवाई, मध्यम प्रजनन क्षमता और असिंचित क्षेत्र : के – 147, डब्ल्यू.एच. – 416 डी. बी. डब्ल्यू . 296 (कर्ण ऐश्वर्या), एच. डी. 2987, डी. बी. डब्ल्यू . 93, एच. डी. 2781, एन. आई. ए. डब्ल्यू . 1415

सामान्य बुवाई, उच्च प्रजनन और सिंचित क्षेत्र– के – 711, डब्ल्यू.एच.– 542, डब्ल्यू.एच. – 283, पी.बी.डब्ल्यू.–502, पी.बी.डब्ल्यू. – 550, डी. बी. डब्ल्यू .–17, यूपी– 2338, पी.बी.डब्ल्यू. – 343, डी. डी. डब्ल्यू. 55 (करन मंजरी), डी. बी. डब्ल्यू. 359 (कर्ण शिवांगी), डी. बी. डब्ल्यू 187 (कर्ण वंदना), एच. डी. 3086, एच. डी. 3249, एच. डी. 297, एन. डब्ल्यू. 5054, के. 1006, राज 4120, डी. बी. डब्ल्यू.222 (कर्ण नरेन्द्र), डी. बी. डब्ल्यू 303 (कर्ण वैष्णवी).

पछेती बुवाई व उच्च प्रजनन– के – 1021, पी.बी.डब्ल्यू.–373, राज. – 3765, एच. डी. 2932, एच डी. 2833, एच. डी. 3090, एच. डी. 3118, डी. बी. डब्ल्यू 107, एच. आई. 1563, राज 4083

अतिविलम्ब से बुआई– एच. डी. 3271, एच. आई1621, डी. बी. डब्ल्यू. 316 (कर्ण प्रेमा)

लवणता और क्षारीयता सहनशील– डब्ल्यू. एच. – 157, के. आर. एल. 210, के. आर. एल. 213, के. आर. एल. 19

डूरम गेहूँ की किस्म – के – 896, डब्ल्यू.एच. – 912, पी.डी. डब्ल्यू. – 233, डी. बी. डब्ल्यू 48, डी. डी. डब्ल्यू. 55, डब्ल्यू. एच. डी. 948, यू. ए. एस. 415, यू. ए. एस. 428, यू. ए. एस. 446

डाई कोकम गेहूँ की किस्म – मेक्स 2971, डी. डी. के. 1025, डी. डी. के. 1029

मेंथा– मास–1, कालका (एच वाई –77, शिवालिक, चुनाव आयोग – 41911, गोमती, हिमालय, कोसी, सक्षम, कुशाल,किरण, पंजाब स्पेअरमिंट–1, एम् एस एस –1, एम् एस एस –5

खेत की तैयारी :

पिछली फसल कि कटाई के पश्चात् मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई करें । बाद में अच्छे अंकुरण के लिए भूमि कि 2 –3 जुताई हल या हेरो से करनी चाहिए ताकि मिट्टी भुरभुरी हो जाये । इसके बाद पाटा चलाकर बुवाई के लिए खेत तैयार करना चाहिए। इस बात का खेत तैयार करते समय अवश्य ध्यान रखना चाहिए ।

बुवाई का समय :

गेहूँ की फसल की बुवाई का उपयुक्त समय अक्टूबर-नवम्बर के पहले पखवाड़े तक है। जिस समय अधिकतम तापमान 23° सेल्सियस के आसपास होना चाहिए। वर्षा आधारित क्षेत्रों में बुवाई का उपयुक्त समय मध्य अक्टूबर तक है, जबकि सिंचित क्षेत्रों में मध्य अक्टूबर से मध्य नवंबर तक है। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए बुवाई उचित समय अक्टूबर के दूसरे पखवाड़े से नवंबर के पहले पखवाड़े में तक करें। मेंथा की जनवरी-फरवरी के माह में बुवाई की जाती है ।

बीज उपचार करना :

बीज की अंकुरण क्षमता बढाने के लिए 8–10 घंटे के लिए पानी में भिगोया जाना चाहिए। गीला बीज की चिपचिपाहट को दूर करने के लिए छाया में सुखाया जाना चाहिए। बीज को भिगोने के बाद बुवाई से पूर्व कीट व रोग से बचाव, अंकुरण प्रतिशत बढ़ाने एवं वायुमंडलीय नत्रजन स्थिरीकरण को बढ़ाने के लिए बीजोपचार अतिआवश्यक है। कवकजनित रोगों से बचाव हेतु बीजों को फफूंदनशी ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज कि दर से उपचारित करते है। ट्राइकोडर्मा उपलब्ध न होने पर कार्बेण्डाजिम या थारयम 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज तथा इसके उपरान्त कीटनाशी से उपचारित करना चाहिए ।

मेंथा का वान्स्पतिक प्रसारण– मेंथा के स्वस्थ तने कि 3 से 4 इंच की कटिंग ले, जिसमें हरी पत्तियाँ हो।

बीज दर एवं बुवाई की विधि :

प्रति हेक्टेयर गेहूँ की बुवाई के लिए 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज की जरूरत होती है। डिब्लिंग विधि से बुवाई करने के लिए 35 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। संकर किस्म के लिए बीज दर 15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। अतः मोटे आकार की किस्मों के लिए, देरी से बुवाई और लवणीय क्षेत्रों के लिए (25 प्रतिशत से अधिक बीज दर) 125 किलो बीज प्रति हेक्टेयर की दर से आवश्यकता पडती है। 20 सेमी पंक्ति से पंक्ति के बीच की दूरी रखते हुए वांछित बीज की मात्रा का उपयोग कर 60 से. मी. चोडी मेड पर गेहूँ की 3 पंक्ति नम मिट्टी में बोया जाना चाहिए। बीज बेहतर जमाव के लिए 3–5 सेमी गहराई में बोया जाना चाहिए। मेंथा की बुवाई 30 से. मी. आकार की कूंड़ में की जाती है। मेंथा के लिए लगभग 500 किलो सकर्स एक हेक्टेयर के लिए आवश्यक हैं। 10–12 से.मी. लंबाई के सकर्स को कुंड में 60–75 की दूरी पर 5–1 सेमी की गहराई पर बुवाई की जानी चाहिए । कुंड–मेड बुवाई विधि से उपज की हानि के बिना 40 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है।

उर्वरक प्रबंधन :

उर्वरक की मात्रा क्षेत्र विशेष की मिट्टी की उर्वरता स्थिति पर निर्भर करती है। सामान्यतः एक हेक्टेयर फसल के लिये 120 किलो नाइट्रोजन 60 किलो फॉस्फोरस और 40 किलो पोटाश की सिफारिश की जाती है। फास्फोरस सिंगल सुपर फास्फेट के रूप में डालना चहिये, क्योंकि इसमें 12 प्रतिशत सल्फर होता है जो तेल की मात्रा बढ़ाने के लिए आवश्यक है। फॉस्फोरस, पोटाश की पूरी मात्रा और आधा (1/2) भाग नत्रजन को बीज बुवाई के साथ–साथ डाला जाना चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा पहली सिंचाई के समय पर डाला जाना चाहिए। गहन फसल प्रणाली में 20–30 किलो गंधक का प्रयोग करना चाहिए और 2 किलो बोरेक्स का छिड़काव किया जाना चाहिए। जिंक बुवाई के समय पर नहीं डाला गया है तो दो बार 45 और 60 दिन पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट 2.5 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव बुवाई के बाद करना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन :

सामान्यतया गेहूँ की फसल के लिए 5–6 सिंचाईयों की आवश्यकता होती हैं। पहली सिंचाई बुवाई के 22 दिन बाद करनी चाहिए। दूसरी सिंचाई बुवाई के 85 दिन बाद करनी चाहिए। अतरू शरद ऋतु में 10–12 दिनों के अन्तराल पर और 4–6 दिनों के अंतराल पर गर्मी के मौसम में सिंचाई करनी चाहिए। बरसात के मौसम में जल भराव की समस्या हो जाती है तो जल निकास कर देना चाहिए। मेंथा की फसल के लिए मिट्टी में नमी की आवश्यकता होती है।

खरपतवार प्रबंधन :

फसल के विकास के प्रारंभिक 35–40 दिनों के दौरान गंभीर खरपतवार प्रतिस्पर्धा होती है। फसल की अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए इस अवधि के दौरान खरपतवार रहित रखा जाना चाहिए। यांत्रिक खरपतवार नियंत्रण में फसल का हैंड हो या खुरपी से एक या दो निराई – गुड़ाई कर खरपतवार को नियंत्रित करने में सहायक हैं। इसके अधिक लागत होने के करण रसायन का उपयोग किया जाता है ।

पादप संरक्षण :

रोग प्रबंधन

रोली रोग : नियंत्रण के लिए जाइनेब और मेन्कोजेब 1.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 500 – 600 लीटर पानी मे घोलकर 15 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए।

अनावर्त कंडवा एवं पती कंडवा : इस रोग से बचाव हेतु बीजों को फफूंदनशी कार्बेण्डाजिम या थारयम 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज या टेबुकोनाजोल 1 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज कि दर से उपचारित करते है।

करनाल बंट : इसके नियंत्रण के लिए रोग मुक्त बीज और फसल चक्र को अपनाये। कार्बेन्डाजिम या बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के साथ उपचारित करना चाहिए। मेन्कोजेब 2 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए ।

ईयर कोकल एवं तुंदु : नियंत्रण के लिए बीज को बोने से पहले कुछ मिनट के लिए नमक के 20 प्रतिशत पानी के घोल में धोकर छाया में सुखाकर बोया जाना चाहिए। ऊपर तैरते कचरे को निकालकर जला देंवे।

मोल्या रोग : इसके प्रबंधन के लिए एकीकृत दृष्टिकोण से गर्मियों में गहरी जुताई किया जाना चाहिए। हमेशा स्वस्थ गुणवत्ता के बीज का उपयोग करें। समय पर फसल की बुवाई करें। यह बहुत ही महत्वपूर्ण कारक है जो एक प्रमुख रोगों से बचने के लिए फसल में मदद करता है। विभिन्न फसलो के साथ फसल चक्र अपनाना चाहिए। प्रतिरोधी किस्म को उगायें और बीज को उपचारित करके बोयें।

कीट प्रबंधन

दीमक – बुवाई से परिपक्वता तक फसल को नुकसान पहुंचाती है। यह क्षतिग्रस्त पौधों को पूरी तरह से सूखा देता है और पोधे आसानी से उखड़ जाते है। इसके नियंत्रण के लिए 100 किलोग्राम बीज को 1500 मिलीलीटर क्लोरपायरीफॉस 20 ईसी को 2 लीटर पानी में मिलाकर उसके साथ उपचारित करें। उसके बाद पॉलिथीन शीट या फर्श पर बीज को फेलाकर सुखाये।

एफिड या मोयला या माहू – यह कीट फसल के फूल चरण में अधिक सक्रिय होता है। बादल और नम मौसम में इस कीट की तेजी से संख्या में वृद्धि होती है। यह छोटे हरे रंग के पोधों के सभी भागों से रस चूसते हैं। इसके नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोरप्रीड 17.8 एस.एल. का 100 मिलीलीटर या मिथाइल–ओ–डिमेटोन 30 ईसी 625 – 1000 मिलीलीटर को 500 – 600 लीटर पानी के साथ मिलाकर फसल पर छिड़काव करना चाहिए। अगर जरूरत है तो 15 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव दोहराना चाहिए। यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि फसल साग के लिए उगाया है तो उसमे 500 – 600 लीटर पानी में मेलाथियान 50 ईसी की 625–1000 मिलीलीटर मात्रा को मिलाकर छिड़काव किया जाना चाहिए।

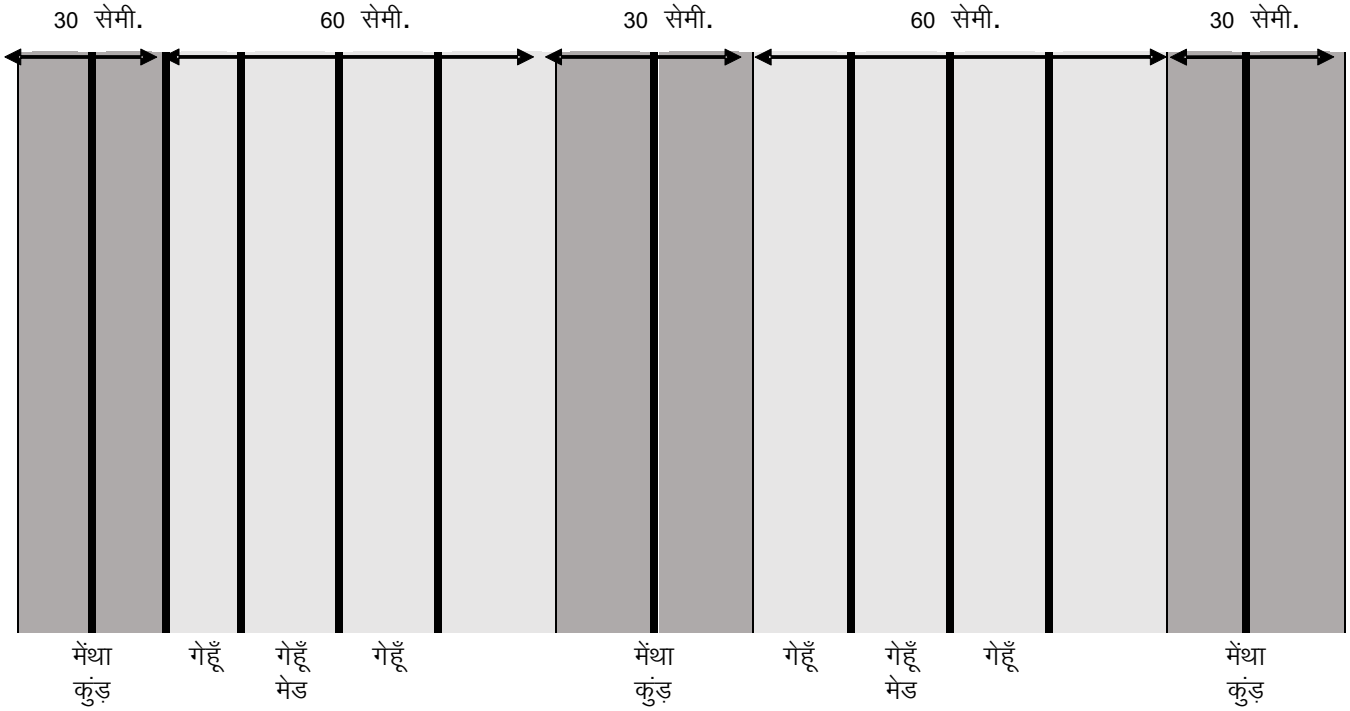

मौसम परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव

राम स्वरुप चौधरी[1], रोशन चौधरी[2], बोलता राम मीणा[3] एवं दीपिका यादव[1]

[1]विद्यावाचस्पति शोधार्थी, [2]उप निदेशक अनुसंधान, [3]सहायक प्रोफेसर, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

आजकल विश्व जलवायु परिवर्तन की समस्या से जूझ रहा है, जिससे भारत भी प्रभावित है। जलवायु परिवर्तन के कारण पर्यावरण में अनेक प्रकार के परिवर्तन जैसे तापमान में वृद्धि, वर्षा का कम या ज्यादा होना, हवाओं की दिशा में परिवर्तन आदि हो रह हैं, जिसके फलस्वरूप कृषि पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण ग्लोबल वार्मिंग है एवं ग्लोबल वार्मिंग का मुख्य कारण पर्यावरण में ग्रीन हाउस गैसों जैसे कार्बन डाइ ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, की मात्रा में वृद्धि है। ये ग्रीन हाउस गैसें धरातल से निकलने वाली अवरक्त विकिरणों यानि इन्फ्रारेड रेडिएशन को वायुमण्डल से बाहर नहीं जाने देती, जिसके फलस्वरूप पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि होती है, जो ग्लोबल वार्मिंग अथवा भूमण्डलीय तापक्रम वृद्धि कहलाता है। भूमण्डलीय तापक्रम में वृद्धि के कारण धुव्रीय हिम पिघलते जा रहे हैं, जिसके परिणाम स्वरूप समुद्रों तथा नदियों के जलस्तर में वृद्धि होती जा रही है और इससे सूखा, बाढ़ एवं चक्रवातों की संख्या में बढ़ोतरी हो रही है।

भारतीय कृषि पर अनावृष्टि का संकट अधिक है, क्योंकि आज भी सिंचाई संबंधित व्यवस्था मानसून आधारित है तथा कृषि योग्य भूमि का दो–तिहाई भाग वर्षा आधारित क्षेत्र है। पूर्वोत्तर भारत में बाढ़ का, पूर्वी तटीय क्षेत्रों में चक्रवात, उत्तर–पश्चिम भारत में पाले का, मध्य और उत्तरी क्षेत्रों में गर्म लहरों का खतरा बढ़ता जा रहा है। ये जलवायु आपदाएँ कृषि उत्पादन पर भारी मात्रा में नुकसान पहुँचाती हैं। जलवायु परिवर्तन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष माध्यम से जैसे फसलो, मृदा, पशुओ, कीट–पतंगों पर प्रभाव आदि के द्वारा कृषि को प्रभावित कर रहा है। मानसून के दौरान वर्षा अवधि में कमी, वर्षा–आधारित क्षेत्रों की उत्पादकता में गिरावट, शीतलहर एवं पाला, तिलहनों तथा सब्जियों के उत्पादन में कमी लाता है। जनवरी माह में शीत लहर के परिणाम स्वरूप विभिन्न खाद्य पदार्थों जैसे आम, पपीता, केला, बैंगन, टमाटर, आलू, मक्का, चावल आदि की उपज पर अत्यधिक दुश्प्रभाव पड़ता है।

समय–समय पर मौसम में होने वाले बदलाव का प्रभाव सीधे तौर पर कृषि पर पड़ता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, मौसम का प्रभाव फसल की उपज और गुणवत्ता पर गहरा असर डालता है। जलवायु परिवर्तन, अत्यधिक वर्षा, सूखा, तापमान में वृद्धि, और आसमान मौसम की स्थिति किसान की फसल को नुकसान पहुंचाती है। ऐसे में, किसानों के लिए यह जरूरी हो गया है कि वे मौसम के बदलाव के साथ खुद को और अपनी फसलों को बचाने के उपायों को अपनाएं।

मौसम परिवर्तन और उसकी चुनौतियाँ

मौसम में बदलाव से उत्पन्न होने वाली प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित है।

अत्यधिक बारिश और बाढ

बाढ़ और अत्यधिक वर्षा से खेतों में पानी जमा हो जाता है, जिससे फसलों के सड़ने और नष्ट होने का खतरा बढ़ जाता है। विशेष रूप से खरीफ फसलों के लिए यह समस्या गंभीर हो सकती है।

सूखा और पानी की कमी

लंबे समय तक बारिश न होने पर सूखा की स्थिति उत्पन्न होती है, जिससे जलस्तर घटता है और फसलें पानी के बिना सुखने/मुरझाने लगती हैं। यह मुख्य रूप से रबी और खरीफ फसलों के लिए नुकसानदेह हो सकता है।

तापमान में वृद्धि

अत्यधिक गर्मी और उच्च तापमान से फसलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इससे न केवल उत्पादन में कमी आती है, बल्कि पौधों की वृद्धि भी रुक जाती है। तापमान में असामान्य वृद्धि से कीटों और रोगों का प्रकोप भी बढ़ जाता है।

बर्फबारी और ओले

ठंडे मौसम में बर्फबारी और ओलावृष्टि फसलों को नुकसान पहुंचाती है, जिससे पैदावार का बहुत नुकसान होता है और किसानों को भारी वित्तीय नुकसान उठाना पड़ता है।

कीट और रोग

मौसम परिवर्तन से कीटों और बीमारियों की संख्या में वृद्धि हो सकती है। बारिश और गर्मी के कारण कीटों और बैक्टीरिया का प्रकोप बढ़ सकता है, जिससे फसलों का उत्पादन घट सकता है।

सिंचाई की समस्या

सूखा या अनियमित बारिश सिंचाई के लिए पानी की कमी पैदा कर सकते हैं, जिससे फसल की वृद्धि में कमी आती है।

मौसम के बदलाव से फसल सुरक्षा के उपाय

समय पर मौसम का पूर्वानुमान प्राप्त करना

किसानो को मौसम के पूर्वानुमान के बारे में समय–समय पर जानकारी प्राप्त रखनी चाहिए। इससे वे आने वाले मौसम की परिस्थितियों के बारे में तैयार हो सकते हैं। इसके लिए कृषि विभाग और मौसम विज्ञान विभाग की सेवाएं उपलब्ध हैं। इसके जरिए किसान यह जान सकते हैं कि बारिश कब होगी, तापमान में कितनी वृद्धि हो सकती है, हवा की गति क्या रहेगी, हवा किस दिशा की ओर चलेगी और सूखा जैसी समस्याएं आ सकती हैं या नहीं।

उन्नत तकनीकों का प्रयोग

मौसम के साथ तालमेल बैठाने के लिए उन्नत कृषि तकनीकों का उपयोग करना महत्वपूर्ण है। किसानों को मौसम के अनुकूल बीजों का चयन करना चाहिए, जो सूखा, ठंड और अधिक तापमान का सामना कर सकें। उदाहरण के लिए, सूखा सहनशील और रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन फसल की सुरक्षा के लिए आवश्यक है।

सिंचाई और जल प्रबंधन

सूखा से बचाव के लिए जल प्रबंधन महत्वपूर्ण है। किसान ड्रिप सिचाई जैसी तकनीकों का उपयोग करके पानी की बचत कर सकते हैं और फसलों को पर्याप्त पानी प्रदान कर सकते हैं। साथ ही, वर्षा के पानी को संचित करने के लिए वर्षा जल संचयन प्रणाली अपनाना भी एक अच्छा उपाय हो सकता हैं।

जलवायु अनुकूल फसलें

किसान उन फसलों को उगाने का प्रयास करें जो मौसम के बदलाव के अनुसार ज्यादा सहनशील हों।

पौधों की रोग और कीट सुरक्षा

मौसम में बदलाव से कीटों और रोगों के फैलने का खतरा बढ़ जाता है। किसानों को समय–समय पर कीटों और बीमारियों की पहचान करनी चाहिए और उन्हें नियंत्रित करने के लिए जैविक कीटनाशकों और अन्य उपायों का इस्तेमाल करना चाहिए।

कृषि में विविधता

फसल विविधता को बढ़ाकर मौसम के प्रभाव को कम किया जा सकता है। एक ही प्रकार की फसल उगाने से यदि किसी मौसम में नुकसान होता है, तो पूरी फसल प्रभावित हो सकती है। इसलिए, विभिन्न प्रकार की फसलों को उगाना फसल सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है।

स्मार्ट एग्रीकल्चर और डाटा एनालिटिक्स

तकनीकी प्रगति के साथ, स्मार्ट एग्रीकल्चर का उपयोग बढ़ रहा है। ड्रोन, सेंसर और अन्य आधुनिक तकनीकियों का उपयोग करके मौसम का सटीक आंकलन और मिट्टी की स्थिति की निगरानी की जा सकती है। इससे किसानों को समय पर सही निर्णय लेने में मदद मिलती है और फसल सुरक्षा सुनिश्चित होती है।

मिट्टी का स्वास्थ्य बनाए रखना

मौसम परिवर्तन से मिट्टी की सेहत पर भी असर पड़ता है। किसान को यह सुनिश्चित करना होगा कि उनकी मिट्टी उपजाऊ और संतुलित हो। जैविक खादों और उर्वरकों का उपयोग मिट्टी की सेहत बनाए रखने के लिए किया जा सकता है।

मौसम के बदलाव और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए किसानों को अपनी कृषि पद्धतियों में समग्र बदलाव करने की आवश्यकता है। उन्हें आधुनिक कृषि तकनीकों का उपयोग करना चाहिए, जैसे कि प्रतिरोधी किस्मे, बूँद–बूँद सिंचाई, सटीक कृषि, और फसल विविधीकरण, ताकि वे बदलते मौसम के अनुकूल खेती कर सकें। इसके साथ ही, किसानों को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को समझते हुए मौसम के अनुकूल फसलें उगाने और मिट्टी व जल संरक्षण के उपायों को भी अपनाना चाहिए। इस तरह से, वे अपनी खेती को टिकाऊ बना सकते हैं और कृषि उत्पादन को बढ़ा सकते हैं।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में जल बचत तकनीकें और किसानों की आय को बढ़ाने हेतु सुझाव

कविता भादू

सहायक प्रोफेसर, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, राजस्थान

हमारे देश की आर्थिक उन्नति में कृषि का बहुमूल्य योगदान है। देश में अधिकांश कृषि योग्य भूमि वर्षा आधारित है। वर्षा आधारित खेती में हमेशा अनिश्चितता बनी रहती है क्योंकि वर्षा की तीव्रता तथा मात्रा पर मनुष्य का कोई वश नहीं चलता है। भाकृअनुप–केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद, तेलंगाना के अनुसार वे क्षेत्र जहां 30 प्रतिशत से कम सिंचित क्षेत्रफल हैं, वर्षा आधारित क्षेत्रों में आते हैं। इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादन पूर्ण रूप से मानसूनी एवं गैर मानसूनी वर्षा पर निर्भर करता है। अक्सर ये क्षेत्र सूखे से ग्रसित होते हैं तथा प्रत्येक तीन वंषो में अक्सर एक बार सूखा पड़ता है। वर्षा आधारित कृषि क्षेत्र देश के कुल कृषि क्षेत्रफल के लगभग 60 से 65 प्रतिशत भूभाग में फैला हुआ है। ये क्षेत्र महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, उत्तर प्रदेश, गुजरात, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु आदि राज्यों के साथ देश में लगभग पंद्रह राज्यों में फैले हुए हैं। पश्चिमी एवं पूर्वी राजस्थान, गुजरात, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु राज्य इससे सबसे ज्यादा प्रभावित हैं। वर्तमान में ये क्षेत्र देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इन क्षेत्रों के अंतर्गत लगभग 48 प्रतिशत खाद्यान फसल क्षेत्र एवं लगभग 68 प्रतिशत अखाद्यान्न फसल क्षेत्र आते हैं। इन क्षेत्रों में ज्वार, बाजरा, मक्का, दलहन, मूंगफली, कपास और सोयाबीन की कुल बिजाई क्षेत्रफल का क्रमशः 92, 94, 80, 83, 73 और 99 प्रतिशत हिस्सा बोया जाता है।

कृषि की समृद्धि मृदा की गुणवत्ता एवं जल की उपलब्धता तथा इन दोनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर निर्भर करती है। वर्षा आधारित कृषकों की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए ऐसी विधियों का उपयोग करना आवश्यक होगा जो कम खर्चीली तथा आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद हों। वर्षा ऋतु के आगमन से पूर्व ही कुछ व्यवस्थाएं करनी पड़ेगी जिससे वर्षा से होने वाले भूक्षरण को कम करके वर्षा जल का अधिकतम उपयोग खेती में किया जा सके। वर्षा पर आधारित खेती के लिए तकनीकी रूप से जल बचत की विभिन्न विधियों का सुनियोजित उपयोग करना अत्यावश्यक होगा।

जल बचत तकनीकें

भूमि एवं जल प्रकृति द्वारा मनुष्य को दी गई दो अनमोल संपदाएं हैं। वर्षाजल का संचयन वर्षा आधारित कृषि में सिंचाई हेतु बहुलाभकारी सिद्ध होता है। वर्षा पर आधारित खेती को अधिक सफल बनाने के लिए वर्षा की एक–एक बूंद का उपयोग अत्यावश्यक है चाहे वह नमी के रूप में भूमि में निहित रहे या वर्षा जल को किसी उचित स्थान पर संचित करके किया जाए जिससे आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई की जा सके। वर्षा आधारित कृषकों हेतु जल की पर्याप्तता एवं शुद्धता बनाए रखने हेतु इसका उचित प्रबंधन आवश्यक है। इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण तकनीकियां इस प्रकार हैं।

- ड्रिप या टपक प्रणाली वर्षा आधारित कृषकों हेतु सिंचाई की एक उन्नत विधि है, जिसके प्रयोग से सिंचाई जल की पर्याप्त बचत की जा सकती है।
- पानी की बचत और उत्पादन की अधिक पैदावार के लिहाज से बौछारी सिंचाई प्रणाली अति उपयोगी और वैज्ञानिक तरीका मानी गई है। इसे 'ओवर हेड' सिंचाई भी कहते हैं।
- वर्षा जल को पुनर्भरण खाई खोदकर भूमि के अंदर पहुंचा दिया जाता है, इससे वर्षाजल का संचयन कर भूमिगत जलस्तर को बढ़ाया जा सकता है।
- जलग्रहण या वाटरशेड भूमि पर एक जल निकास क्षेत्र है, जो वर्षा के बाद बहने वाले जल को किसी नदी, झील, बड़ी धारा अथवा समुद्र में मिलाता है। इस उपाय के अंतर्गत कृषि भूमि के लिए ही नहीं, अपितु भूमि जल संरक्षण, अनुपजाऊ एवं बेकार भूमि का विकास, वनरोपण और वर्षाकाल के जल का संचयन कार्य किया जा सकता है।

- पर्वतीय क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन हेतु पॉलिथीन युक्त टैंकों का निर्माण किया जा सकता है। इन पॉलिथीन युक्त टैंकों की बनावट, सुरक्षा तथा रखरखाव हेतु टैंक की क्षमता की आंकलन जल की आवश्यकता तथा उपलब्धता के आधार पर ठीक प्रकार से होना चाहिए। पॉलिथीन की मोटाई 0.25 मिलिमीटर से कम नहीं होनी चाहिए और न ही उसमें कोई छेद होना चाहिए।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में किसानों की आय बढ़ाने हेतु सुझाव

1. अनुसंधान, नीतियाँ एवं कार्यक्रमों का दायरा प्रत्येक किसान के खेत पर केंद्रित करने की आवश्यकता है, क्योंकि इन क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की विविधता विद्यमान है।
2. विकसित की गई कृषि तकनीकों को समय के साथ पुनः परिष्कृतध्संशोधित करके पूर्ण पैकेज के रूप में किसानों तक पंहुचाया जाना चाहिए।
3. प्राकृतिक संसाधनों में मृदा एवं जल के समुचित प्रबंधन को सर्वोपरी प्राथमिकता देते हुए, इस दिशा में और कार्य करने की आवश्यकता है।
4. तकनीक के सभी घटकों (बीज, रासायनिक खाद, बिजाई यंत्र, पशुधन की नस्लें, खेत तालाब इत्यादि) को एक साथ किसानों तक पहुंचाया जाए। साथ ही साथ यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि किसानों को उत्पादित माल की उचित कीमत प्राप्त हो।
5. माल की उचित विविधिकरण के साथ कृषि प्रणाली में पशुधन को शामिल करने की जरूरत है।
6. कृषि मौसम सलाह को प्रत्येक गाँव के स्तर तक पहुँचाने की अति आवश्यकता है। इस दिशा में कृषि विस्तार तंत्र को और मजबूत करने की जरूरत है। साथ ही साथ कृषि विस्तार की नई विधाएं विकसित करने की आवश्यकता है, जिससे उपलब्ध तकनीकों एवं सूचनाओं को सरल भाषा एवं तीव्रता के साथ किसानों तक पहुँचाया जा सके।
7. कृषि आगतों (बीज, रासायनिक खाद, जीवाणु खाद, कृषि यंत्र, रोग एवं कीटनाशक दवाइयां इत्यादी) की सुगम एवं सुलभ उपलब्धता की दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है।
8. गाँव स्तर पर सामुदायिक बीज एवं चारा बैंक, सामुदायिक उपयोग केंद्र, कृषि बीमा, विपणन तंत्र इत्यादि पर नीतियाँ और क्रियान्वयन के लिए ठोस रणनीति बनाने की आवश्यकता है।
9. वर्तमान में कृषि, ज्ञान आधारित होती जा रही है। अतरू ऐसी रणनीति एवं योजनायें बनाने की जरूरत है, जिनसे शिक्षित युवा इस तरफ आकर्षित हो सकें।
10. इन क्षेत्रों में तकनीकी दक्षता हासिल करने के लिए वैज्ञानिकों के बहुआयामी एवं बहु संस्थान दल तैयार कर अनुसंधान का दायरा बढ़ाने की नितांत जरूरत है।

समय पर उपरोक्त सुझावों पर कार्रवाई की जाती है तो इससे कृषि प्रणाली में स्थिरता प्रतिस्पर्धा, विपरीत जलवायु से लड़ने की क्षमता के साथ ही उपलब्ध संसाधनों का सरंक्षण एवं समुचित उपयोग भी किया जा सकता है। इस प्रकार इन क्षेत्रों के कृषकों में कृषि आय को बढ़ाने की क्षमता विकसित की जा सकती है।

कुल मिला कर निष्कर्ष यही निकलता है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन क्षेत्रों के किसानों को जल बचत की उचित तकनीकों से निरंतर अवगत कराते रहना होगा। इसके साथ ही साथ जन सहभागिता की भी परमावश्यकता है। जब तक किसान भाई इस नेक काम हेतु जागृत नहीं होंगे, प्रकृति द्वारा प्रदत्त यह उपहार यूं ही व्यर्थ होता रहेगा और वर्षा आधारित कृषि से जुड़े हमारे किसान भाईयों को एक–एक बूंद के लिए संघर्ष करते हुए देखना पड़ेगा।

प्राकृतिक खेती में खरपतवार प्रबंधन

सुमित्रा देवी बम्बोरिया, अमरचंद शिवरान एवं मीना चौधरी
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर, राजस्थान

खरपतवार, कीट, रोग आदि के कारण फसल उपज काफी प्रभावित होती है। कृषि उत्पादों के कुल वार्षिक हानि में खरपतवारों द्वारा लगभग 45 प्रतिशत, कीटों द्वारा 30 प्रतिशत, पादप रोगों द्वारा 20 प्रतिशत तथा अन्य कारकों द्वारा 5 प्रतिशत क्षति होती है। असिंचित क्षेत्रों में, खरपतवार फसलों से तीव्र प्रतिस्पर्धा करके भूमि में निहित नमी एवं पोषक तत्वों का अधिकांश भाग को शोषित कर लेते हैं तथा साथ ही साथ फसल को आवश्यक प्रकाश एवं स्थान से भी वंचित रखते हैं, फलस्वरूप फसल की विकास गति धीमी पड़ जाती है तथा पैदावार कम हो जाती है। खरीफ मौसम में उच्च तापमान एवं अधिक नमी के कारण रबी मौसम की अपेक्षा अधिक खरपतवार उगते हैं और समय पर इनका नियंत्रण नहीं होने से पौधों की बढ़वार काफी कम जाती है। जिससे इनकी उपज पर भी बुरा असर पड़ता है। इसके अतिरिक्त खरपतवार फसलों में लगने वाले रोगों के जीवाणुओं एवं कीट व्याधियों को भी आश्रय देते हैं। इसके आलावा कुछ जहरीले खरपतवार जैसे गाजर घास, धतुरा, गोखरू, कांटेदार चौलाई आदि न केवल फार्म उत्पाद की गुणवत्ता को घटाते हैं बल्कि मनुष्यों ओर पशुओं के स्वास्थ्य के प्रति खतरा उत्पन्न करते हैं। फसलों में उपज कम होने का एक मुख्य कारण खरपतवारों की वृद्धि और समय से उनका नियंत्रण न करना है। कम ऊँचाई एवं जल्दी पकने वाली किस्मों में खरपतवार की समस्या और बढ़ जाती है। इनमें खरपतवारों की समय पर रोकथाम से न केवल पैदावार बढ़ाई जा सकती है अपितु उसमें गुणवत्ता को भी बढ़ाया जा सकता है। शाकनाशियों के आविष्कार के बाद से, किसानों ने अपने खेतों से खरपतवारों को खत्म करने के लिए इन रसायनों का इस्तेमाल किया है। शाकनाशियों के इस्तेमाल से न केवल फसल की पैदावार बढ़ी बल्कि खरपतवारों को हटाने के लिए आवश्यक श्रम भी कम हुआ। लेकिन कृषि–रसायनों के इस्तेमाल से कथित पर्यावरण और स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ पैदा हुई हैं, इसलिए खरपतवारों के प्रबंधन के लिए प्राकृतिक तरीकों की जरूरत है।

प्रमुख खरपतवार

रबी मौसम की फसलों की तुलना में खरीफ में खरपतवारों के प्रकोप से अधिक क्षति होती है। खरपतवारों द्वारा फसल में होने वाली क्षति की सीमा, फसल, जलवायु, मौसम, मृदा, सिंचाई तथा खरपतवारों के प्रकार तथा उनकी संख्या पर निर्भर करती है। अतः सभी फसलों में खरपतवारों की उपस्थिति के कारण समान क्षति नहीं होती। खरीफ व रबी फसलों में विभिन्न प्रकार के खरपतवार पाये जाते है, जैसे सकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार और मोथाकुल परिवार के खरपतवार।

सकरी पत्ती वाले खरपतवार – सांवा (इकानोक्लोआ कोलोना),दूब घास (साइनोंडान डेक्टीलोन), मकड़ा घास (डेकटाईलोप्टिकम एजीप्टीकम), कोदों/गूज घास (इल्यूसिन इन्डिका), क्रैब घास (डिजिटेरिया संगुइनेलिस), बनरा/फॉक्सटेल (सिटैरिया ग्लाऊका) व भरूट (सेन्चुरुस बाइफ्लोरस)

चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार – पत्थरचटा (ट्रायन्थमा पोस्टलाकैस्ट्रम), कनकवा (कोमेलिना बेघालेनसिस), चौलाई (अमरंथस स्पीसीज), वन मकोय (फाइजेलिस मिनीमा), हजारदाना (फाइलेन्थस निरुरी) व डाईजेरा अरवेंसिस (कुंद्रा)

मोथाकुल परिवार के खरपतवार – मोथा (साइपेरस रोटन्ड्स, सा. इरिया आदि)

फसल खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रान्तिक समय एवं खरपतवारों द्वारा पैदावार में कमी

खरपतवार नमी, तापमान, हवा एवं पोषक तत्वों आदि के लिए फसल से प्रतिस्पर्धा करते हैं जिससे 15 से 50 प्रतिशत तक पैदावार में कमी कर देते हैं। फसल के प्रारम्भिक 15–45 दिनों में खरपतवार नियंत्रण बहुत आवश्यक होता है। खरीफ फसलों में सामान्यतः खरपतवार फसलों को प्राप्त होने वाली 47% फास्फोरस, 50% पोटाश, 39% कैल्शियम और 34% मैग्नीशियम तक का उपयोग कर लेते हैं।

खरपतवार प्रबंधन

फसल की प्रारंभिक अवस्था में बुवाई के 15 से 45 दिन के मध्य फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखना जरूरी है। खरपतवार नियंत्रण की कोई भी विधि किसी निश्चित स्थान पर दक्षता के वांछित स्तर तक नहीं पहुँच सकती है। अतः प्राकृतिक खेती में खरपतवारों के प्रभाव को कम करने के लिए एक से अधिक तरीकों जैसे – बचावकारी क्रियाएँ, कृषि क्रियाएँ, यान्त्रिक क्रियाएँ एवं जैविक क्रियाएँ आदि का प्रयोग करते हैं ताकि भूमि की उत्पादकता एवं उर्वरता प्रभावित न हो तथा मानव सहित अन्य किसी भी जीव–जन्तुओं, पशु–पक्षियों व वांछित पेड़–पौधों को किसी भी प्रकार का नुकसान नहीं हो और साथ ही पर्यावरण भी सुरक्षित रहें। प्राकृतिक खेती में उत्पादन हानि को कम करने एवं खरपतवारों के द्वारा होने वाले अन्य दुष्प्रभावों को रोकने के लिए विभिन्न विधियाँ अपनाई जाती हैं वे निम्नलिखित हैं :

(क) बचावकारी उपाय/निवारण विधि– इसके अन्तर्गत वे सभी उपाय आते हैं जिनके द्वारा खरपतवार के बीजों को उन स्थानों पर पहुँचने या फैलने से रोका जाता है जहाँ वे पहले से मौजूद नहीं हैं। इसके लिए उन सभी परिस्थितियों को जानना आवश्यक है, जिनमें खरपतवार एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचते हैं। खरपतवार के बीजों के फैलाव को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय मुख्य रूप से अपनाये जाते हैं :

1. बुवाई के लिए खरपतवार रहित साफ–सुथरे बीजों का उपयोग करें।
2. खेत की मेड़ और सिंचाई नालियों को खरपतवार से मुक्त रखें।
3. फसल कटाई के समय फसल के बीज के साथ खरपतवार के बीज को जाने से रोके।
4. जिस खेत में खरपतवार का प्रकोप हो उसकी मिट्टी उठाकर दूसरे खेत में न डालें।
5. कृषि कार्य में उपयोग होने वाले सभी उपकरण और मशीनों को उपयोग में लाने से पहले तथा उपयोग के बाद साफ कर लें।
6. खेत के चारों ओर ऐसी हेज कतारें लगायें जो कि हवा के द्वारा वितरित होने वाले खरपतवार के बीजों को खेत में आने से रोक सकें।
7. पशुओं को खरपतवार के बीजों से मुक्त चारा खिलाएं तथा पशुओं को खरपतवार वाले क्षेत्र से होकर बिना खरपतवार वाले क्षेत्र में न जाने दें।
8. यह सुनिश्चित करें कि गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट खाद का उपयोग पूर्ण अपघटन के बाद ही किया जाए, जिससे कि गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट खाद में उपस्थित खरपतवार के बीजों की अंकुरण शक्ति समाप्त हो जाये।
9. खेत में उपलब्ध सिंचाई एवं जल निकास नालियों में भारी मात्रा में खरपतवार पनपते रहते हैं और यहाँ से इनका फैलाव खेतों तक होता है। अतः सिंचाई एवं जल निकास नालियों का क्षेत्रफल कम करके खरपतवारों की संख्या एवं इनके दबाव में कमी लाई जा सकती है।

(ख) कृषिगत या शस्य विधियाँ – कृषिगत विधियों के द्वारा फसल के पौधों को स्वस्थ एवं रोगमुक्त रखा जाता हैं जिससे फसलों के पौधे खरपतवारों से अच्छी तरह से संघर्ष करके उनकी वृद्धि एवं विकास को रोक सकें। प्रमुख कृषिगत विधियाँ निम्नलिखित हैं :

1. फसल चक्र– फसल चक्र लम्बे समय के लिए खरपतवार नियंत्रण के लिए महत्वपूर्ण होता है। किसी खेत में एक ही प्रकार की फसल को उगाते रहने से उस फसल में होने वाले खरपतवारों का दबाव उसमें बढ़ जाता है क्योंकि उनकी उगने तथा वृद्धि की दशाएं अनुकूल होती हैं। फसल चक्र में परिवर्तन करके फसल को उगाने से इन खरपतवारों की अंकुरण क्षमता एवं वृद्धि भिन्न फसल के लिए उपयोग की जाने वाली कर्षण क्रियाओं (बुवाई का समय, फसल प्रतियोगिता आदि) के कारण नष्ट हो जाती है और इनका नियंत्रण हो जाता है।

2. किस्म का चुनाव– खरपतवार नियंत्रण हेतु ऐसी फसल किस्म का चुनाव करना चाहिए जो शीघ्र उगने वाली हो एवं अधिक क्षेत्र घेरती हो। ऐसी फसल किस्में खरपतवार की वृद्धि को दबा देती हैं। शीघ्र वृद्धि करने वाली फसलों में खरपतवारों से प्रतियोगिता करने की क्षमता अधिक होती है।

3. बुवाई का समय– बुवाई के समय में परिवर्तन करके खरपतवारों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। किसी खरपतवार विशेष को नष्ट करने के लिए फसल बुवाई के 10–15 दिन पूर्व पलेवा करने से खरपतवार उग आते हैं। इन उगे हुए खरपतवारों को जुताई द्वारा नष्ट करने के बाद फसल की बुवाई करना लाभकारी होता है।

4. बीज दर एवं पंक्तियों की दूरी– बीज दर अधिक रखने से पौधों की संख्या बढ़ जाती है। बढ़ी हुई पौध संख्या से भूमि में फसल का अधिक सायेदार हो जायेगी जो कि बाद में उगने वाले खरपतवारों को पनपने नहीं देती है, क्योंकि फसल के वानस्पतिक आच्छादन से खरपतवारों के पौधों को पर्याप्त मात्रा में प्रकाश उपलब्ध नहीं हो पाता है। देर से बोयी जाने वाली फसलों में खरपतवारों के नियंत्रण की यह बहुत अच्छी विधि है। बीज दर फसल एवं फसल किस्म पर निर्भर करती है। पंक्तियों की दूरी जितनी कम होगी उतनी ही फसल भूमि में सायेदार होगी, जिसके कारण सूर्य का प्रकाश भूमि पर नहीं पहुँचेगा और नए खरपतवारों को पर्याप्त मात्रा में प्रकाश नहीं मिलने के कारण वे पनप नहीं पाएंगे।

5. सजीव आच्छादन फसलें– ऐसी फसलें जिनका विकास तेजी से होता है एवं भूमि की सतह को सघनता से आच्छादित कर लेती हैं तथा खरपतवारों की वृद्धि को दबा देती हैं जिससे खरपतवारों को पनपने का मौका नहीं मिल पाता है, उन्हें सजीव आच्छादन फसलें कहते हैं तथा इस विधि को सजीव आच्छादन कहते हैं। जैसे– लोबिया, उडद आदि आच्छादन फसलों का उपयोग खरपतवारों के नियंत्रण के लिए किया जा सकता है।

6. प्रतिस्पर्धी फसल उगाना– खरपतवारों से अधिक प्रतिस्पर्धा करने वाली फसलें जैसे– लोबिया, उडद आदि उगाने से खरपतवारों को अच्छी तरह से नियंत्रित किया जा सकता है। प्रतिस्पर्धी फसल में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए :

- ऐसी फसल जिसका अंकुरण एवं वृद्धि तीव्रता से होती हो।
- कमजोर अथवा कम उपजाऊ भूमि में भी सफलतापूर्वक उग सकती हो तथा मौसम की प्रतिकूल दशाओं से अधिक प्रभावित न होती हो।
- ऐसी फसल जिसकी जड़ें मृदा की ऊपरी तथा निचली दोनों परतों से पोषक तत्वों को अवशोषित करने की क्षमता रखती हों।
- ऐसी फसल जो रोगरोधी होने के साथ–साथ अल्पकालीन भी हो।

7. अन्तरवर्ती खेती– अन्तरवर्ती खेती में मुख्य फसल की दो कतारों के बीच में ऐसी फसल लगा देनी चाहिए जो कि खरपतवारों की वृद्धि को दबा देती है। अन्तरवर्ती फसलों के लिए फसल का चुनाव इस प्रकार करना चाहिए जिससे खरपतवारों की रोकथाम की जा सके, किन्तु ये मुख्य फसल से पोषक तत्वों के लिए प्रतियोगिता न करें। खाद्यान्न फसलों के साथ दलहनी फसलों की अन्तरवर्ती खेती लाभदायक होती है। जैसे मक्का या ज्वार के साथ सोयाबीन, उडद या मूँगफली की अन्तरवर्ती खेती खरपतवारों को अंकुरण एवं उनके विकास को रोक देती है तथा मुख्य फसलों को भी प्रभावित नहीं करती है। सामान्यतः अन्तःवर्ती फसल प्रणाली में छोटी अवधि एवं जल्दी उगने वाली फसलें, लम्बी अवधि एवं देर से उगनें वाली फसलों की अपेक्षा खरपतवार नियंत्रण हेतु अधिक प्रभावशाली होती है।

8. परती– फसल चक्र में परती अवधि को शामिल करने से बारहमासी खरपतवारों प्रकोप कम होता हैं। जब खेत में कोई फसल न हो तो खरपतवारों को नष्ट करना बहुत आसान हो जाता है और परती खेत में खरपतवारों का बीज बैंक भी नियंत्रित रहता है। खरपतवार के बीज मिट्टी में अलग–अलग गहराई पर दबे होते हैं, कुछ में सख्त बीज आवरण होते हैं और अन्य खरपतवार चर होते हैं जो उन्हें लंबे समय तक अंकुरित होने का कारण बनते हैं। यदि वे सभी एक ही समय में उगते हैं, तो उन्हें नियंत्रित करना बहुत आसान होगा।

9. जैविक आच्छादन या जैविक पलवार– मृदा सतह को ढककर खरपतवार के बीजों को अंकुरित होने तथा वृद्धि करने से रोका जा सकता है, क्योंकि यह प्रकाश संचार एवं वायु संचार को रोक देता है। जैविक आच्छादन के रूप में कम्पोस्ट खाद, भूसा, पुआल, सूखी घास, सूखी पत्तियां, फसल अवशेष इत्यादि का उपयोग किया जा सकता है। इनके द्वारा प्रभावी खरपतवार नियंत्रण होता है। इस पद्धति में खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ मृदा की उर्वरा शक्ति भी बढती है।

10. फलियों के अवशेषों का उपयोग–फसल की नाइट्रोजन की जरूरतों को पूरा करने के लिए रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरक के विपरीत फलियों के अवशेषों का उपयोग खरपतवार दमन को बढ़ा सकता है। फलियों के अवशेष अवांछित खरपतवार वृद्धि की कम उत्तेजना के साथ धीरे–धीरे नाइट्रोजन छोड़ते हैं।

(ग) यांत्रिक विधियाँ– खरपतवार नियंत्रण की यह एक सरल एवं प्रभावी विधि है। इस विधि में खरपतवारों का नियंत्रण हाथ से, हस्तचालित यन्त्रों व जल आदि द्वारा किया जाता है। यांत्रिक विधि द्वारा खरपतवार नियंत्रण हेतु नये विकसित किये गये उन्नत कृषि यंत्रों जैसे कोनो वीडर, व्हील–हो, मोटर चालित वीडर, आदि का उपयोग भी किया जा सकता है। यांत्रिक विधियाँ निम्न प्रकार से हैं :

1. खरपतवारों को हाथ से उखाड़ना– फसल बुवाई के 20–25 दिन बाद जब खरपतवारों को हाथ से पकड़ा जा सके तब उखाड़ कर इनका उपयोग आच्छादन के रूप में किया जाना चाहिए या उसे उखाड़ कर फसल क्षेत्र से दूर मिट्टी में गहराई में दबा दें। यह विधि छोटे क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती है। सिंचित क्षेत्रों में पहली सिंचाई के बाद हाथ से खरपतवार उखाड़ना बहुत उपयोगी रहता है।

2. हस्तचालित यंत्रो से निराई–गुड़ाई करना– जैविक विधि से खरपतवार नियंत्रण के लिए निराई–गुड़ाई सबसे अच्छा तरीका है। इसमें खुरपी, पैडी वीडर, कोनोवीडर आदि यंत्रों के द्वारा खरपतवारों पर नियंत्रण किया जाता है। इस विधि का प्रयोग करने के लिए फसलों की बुवाई पंक्तियों में की जानी चाहिए। निराई–गुड़ाई का सबसे सही समय फसल की बुवाई या रोपाई के 3–4 सप्ताह बाद है। सिंचित क्षेत्रों में फसल बुवाई के 20–25 दिनों बाद या पहली सिंचाई के बाद प्रथम निराई–गुड़ाई व आवश्यकता पड़ने पर 10–15 दिन बाद दूसरी निराई–गुड़ाई कर देनी चाहिए क्योंकि यह खरपतवारों का वृद्धि काल होता है। इस अवस्था में निराई करने से फसल की वृद्धि अच्छी हो जाती है और बाद में उगने वाले खरपतवारों को यह पनपने नहीं देती है। गहरी जड़ वाले खरपतवारों के ऊपरी भाग को बार–बार काटने से इनका प्रस्फुटन बंद हो जाता है और ये पूर्ण रूप से समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार एकवर्षीय खरपतवारों को उनमें बीज बनने या फूल आने से पहले निकाल देने से इन पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

राजस्थान के बदलते जलवायु परिदृश्य में सरसों की उन्नत खेती

गणेश कुमार कोली, सुरेश कुमार एवं गोपाल लाल चौधरी
श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर, राजस्थान

राजस्थान भारत का एक महत्वपूर्ण कृषि राज्य है, जहां सरसों प्रमुख तिलहन फसलों में से एक है। सरसों की खेती राज्य की अर्थव्यवस्था और किसानों की आजीविका में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हालांकि, बदलते जलवायु परिदृश्य के कारण सरसों की खेती पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। राजस्थान में इसकी खेती 54.8 लाख टन उत्पादन और 1627 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर उत्पादकता के साथ 33.7 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है राजस्थान में सरसों की खेती मुख्य रूप से शुष्क और अर्ध–शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में की जाती है। राजस्थान में भरतपुर, अलवर, सीकर, झुंझुनू, गंगानगर, जयपुर, हनुमानगढ़, दौसा, टोंक, चूरू और नागौर जैसे जिले सरसों उत्पादन के लिए प्रमुख क्षेत्र हैं। यह रबी मौसम की प्रमुख फसल है, जिसे मुख्य रूप से अक्टूबर से दिसंबर के बीच बोया जाता है और मार्च–अप्रैल में इसकी कटाई होती है। सरसों का उपयोग खाद्य तेल, चारे, जैविक खाद और मसालों के रूप में किया जाता है।

जलवायु परिवर्तन और उसके प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण राजस्थान में मौसम के स्वरूप में कई परिवर्तन देखे गए हैं। इनमें निम्नलिखित प्रभाव प्रमुख हैं:

1. **तापमान में वृद्धि :** अत्यधिक तापमान सरसों की उत्पादकता को प्रभावित करता है। विशेष रूप से पुष्पन और फली बनने की अवस्था में उच्च तापमान से फसल की उपज में गिरावट आती है।

2. **अनियमित वर्षा :** मानसून की अनिश्चितता और अल्प वर्षा के कारण मिट्टी में नमी की कमी हो जाती है, जिससे बीज अंकुरण और फसल विकास प्रभावित होता है।
3. **सूखा और जल संकटः** राजस्थान के कई हिस्सों में पानी की कमी और गिरते जलस्तर के कारण सिंचाई की समस्याएँ बढ़ रही हैं, जिससे सरसों की खेती प्रभावित हो रही है।
4. **कीट एवं रोगों में वृद्धिः** जलवायु परिवर्तन के कारण सरसों की फसल पर सफेद रतुआ, तना गलन और माहू जैसी बीमारियों का प्रकोप बढ़ रहा है।

बदलते जलवायु परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए, सरसों की खेती को अधिक टिकाऊ और लाभकारी बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए :
जलवायु अनुकूलित किस्मों का उपयोग : गर्मी–सहिष्णु और कम जल की आवश्यकता वाली सरसों की किस्मों का उपयोग करना चाहिए। नवीनतम अनुसंधान और तकनीकों के माध्यम से अधिक उपज देने वाली और रोग प्रतिरोधी किस्में विकसित की जानी चाहिए।

किस्म का नाम	पौधे की ऊँचाई (से.मी.)	पकने की अवधि (दिन)	तेल की मात्रा (प्रतिशत)	औसत उपज (क्विंटल प्रति हेक्टेयर)	विशेषताएँ
आर.आर.एन. 505	135	125	40.2	14	पछेती बुवाई के लिए उपयुक्त, तना सड़न रोग व पाले के प्रति सहिष्णु
आर.जी.एन. 145	160–170	120–125	38–39	20	पछेती बुवाई के लिए उपयुक्त
नवगोल्ड	160–180	125–135	41–42	22–25	हल्का पीला तेल, पछेती बुवाई के लिए उपयुक्त
एन.आर.सी.डी.आर. 2	165–212	140–143	40	22	सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त, लवणीयता व अधिक तापमान सहनशील
एन.आर.सी.डी.आर. 601	161–210	140	40	23	अधिक तापमान व खारे पानी के लिए उपयुक्त
आर.आर.एन.–573	172	135–140	41.4–42.3	15–20	सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त, लोजिंग प्रतिरोधी
गिरिराज (डी.आर.एम.आर.आई.जे.31)	170	125–130	37–40	15–20	सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त, 140–240 फलियां प्रति पौधा
एन.आर.सी.एच.बी. 101	170–200	130–135	35–42	12–15	देर से बुवाई के लिए उपयुक्त
पूसा सरसों–26	120–150	126	37.6	16–17	देरी से बुवाई के लिए उपयुक्त

समय पर बुवाई और उचित प्रबंधनः बदलते जलवायु को देखते हुए, बुवाई का सही समय चुनना आवश्यक है। बुवाई के लिए उपयुक्त तापमान और नमी का ध्यान रखा जाए तो उत्पादकता में सुधार किया जा सकता है। गहराई में बुवाई करने से अंकुरण बेहतर हो सकता है और नमी संरक्षण में मदद मिलती है। बारानी क्षेत्रों में सरसों की बुवाई 15 सितंबर से 15 अक्तूबर तक तथा सिंचित क्षेत्रों में इसकी बुवाई अक्तूबर के अंत तक कर देनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधनः पानी की बचत और फसल की उच्च उत्पादकता सुनिश्चित करने के लिए फव्वारा सिंचाई प्रणाली अपनाई जानी चाहिए। फव्वारा सिंचाई प्रणाली अपनाने से उर्वरकों का प्रभावी उपयोग किया जा सकता है।

जैविक खाद और हरी खादः रासायनिक उर्वरकों की जगह जैविक खादों का उपयोग किया जाए, जिससे मृदा स्वास्थ्य और जलधारण क्षमता में सुधार होता है। हरी खाद फसल अवशेष प्रबंधन में सहायक होती है।

एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन

एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन के लिए बुवाई से पूर्व के समय से लेकर फूल एवं फल बनने की अवस्था तक निम्नानुसार प्रबंध करें।

1. बुवाई पूर्व प्रबंधन

- खेत की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें।
- पूर्व फसल के अवशेष और खरपतवार को नष्ट करें।
- तना गलन रोग नियंत्रण के लिए 2.5 कि.ग्रा. ट्राइकोडर्मा को 50–100 कि.ग्रा. अच्छी सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर प्रति हेक्टेयर भूमि में प्रयोग करें।

2. बुवाई के समय :

- कीट व रोगों के प्रकोप से बचाव के लिए फसल की बुवाई 10–12 अक्तूबर के आस पास करें।
- उर्वरक की संतुलित एवं अनुशंसित मात्रा का ही प्रयोग करें : 80 कि.ग्रा. नत्रजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि. ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर।
- पोटाश का प्रयोग रोग प्रतिरोधी क्षमता को बढ़ाता है।
- तना गलन रोग नियंत्रण के लिए उपयुक्त बीज दरः 4 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर का उपयोग करें।

- एप्रोन 35 एसडी (6 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज) अथवा ट्राइकोडर्मा (10 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज) से बीजोपचार करें या लहसुन का सत 2 प्रतिशत से बीजोपचार करें।
- पेन्टेड बग के नियन्त्रण हेतु इमीडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यू एस (7 मिली प्रति कि.ग्रा. बीज) से बीजोपचार करें ।

3. अंकुरण एवं पौध अवस्था

- खेत को खरपतवार मुक्त रखें (पेन्टेड बग के नियन्त्रण हेतु)।
- उपयुक्त पौध संख्या सुनिश्चित करें।

4. शाखा बनने की अवस्था

- मूली, शलजम, तोरिया की अगेती फसलों पर कीट प्रबंधन करें।
- आरा मक्खी के कीटों को प्रातः एकत्र कर नष्ट करें।
- सफेद रोली के नियंत्रण हेतु रिडोमिल एम जेड 72 डब्लू पी (2.5 ग्राम प्रति लीटर) या मेंकोजेब (2.0 ग्राम प्रति लीटर) का 50 दिन की फसल पर छिड़काव करें।
- माहू (चेपा) नियंत्रण हेतु नीम की पत्तियों का 2 प्रतिशत सत बनाकर छिड़काव करें।

5. फूल एवं फल बनने की अवस्था

- सफेद रोली व अल्टरनेरिया झुलसा के नियंत्रण हेतु रोग लक्षण दिखते ही 2 प्रतिशत लहसुन के सत का छिड़काव करें या अल्टरनेरिया झुलसा के नियंत्रण हेतु एन्ट्राकोल 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
- तना सड़न के प्रबंधन के लिए उचित जल निकासी एवं सीमित नमी बनाए रखें तथा 50 प्रतिशत पुष्पावस्था पर 0.05 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम का छिड़काव करें और तना सड़न ग्रसित पौधों को उखाड़कर जला दें।
- माहू (चेपा) नियंत्रण हेतु प्रभावित पुष्प गुच्छ तोड़कर नष्ट करें, नीम की निम्बोली का 5 प्रतिशत सत बनाकर छिड़काव करें या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल (20 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर) पानी में घोलकर छिड़काव करें या थायोमैथोक्जाम 25 प्रतिशत डब्ल्यूजी (1 ग्राम प्रति लीटर पानी) प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

बदलते जलवायु परिदृश्य में राजस्थान में सरसों की खेती कई चुनौतियों का सामना कर रही है, लेकिन उचित कृषि तकनीकों, जलवायु–अनुकूलित उपायों और उन्नत किस्मों का चुनाव व समन्वित कीट व रोग प्रबंधन से सरसों की खेती को अधिक उत्पादक और टिकाऊ बनाया जा सकता है, जिससे राजस्थान की कृषि अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया जा सके।

रबी फसलों में सिंचाई प्रबन्ध- क्रान्तिक अवस्थाएँ

सुपर्ण सिंह शेखावत, रामप्रताप यादव, रेनू कुमारी गुप्ता एवं सरदार मल यादव
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

यह शाश्वत सत्य है कि जल के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। राजस्थान प्रदेश में देश का मात्र 1 प्रतिशत जल उपलब्ध है, जबकि क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का लगभग 11 प्रतिशत भूभाग राजस्थान में है। अधिक फसलोत्पादन लेने के लिए उचित जल प्रबन्धन की जरूरत है। सिंचाई हेतू उपलब्ध जल की एक–एक बूँद का कुशलतापूर्वक अधिक से अधिक क्षेत्रफल में उपयोग करके प्रति इकाई पानी से उत्पादन लेने की विधि को ही उचित जल प्रबन्ध कहते हैं। अधिक सिंचाई करने से उत्पादन लागत भी बढ़ जाती है। फसलों में उचित समय पर सिंचाई नही करने से पौधों को उचित वृद्वि एवं विकास नहीं होगा जिसमें उत्पादन में भी भारी कमी हो जायेगी। इस प्रकार अधिक फसलोत्पादन करने के लिए फसलों में सही समय पर सिंचाई करनी चाहिए।

फसलों की आवश्यकतानुसार क्रान्तिक अवस्थाओं पर कृत्रिम विधि से पानी देने को सिंचाई कहते है। भारतवर्ष में कुल बोये गये कुल क्षेत्रफल का 40 प्रतिशत एव राजस्थान का 32 प्रतिशत ही सिंचित है। फसलोत्पादन को विभिन्न कारकों में से सिंचाई का प्रमुख स्थान है। फसलों का अधिक उत्पादन लेने के लिए सिंचाई की क्रान्तिक अवस्थाओं पर मृदा में पर्याप्त नमी जरूरी हैं।

सिंचाई के लिए क्रान्तिक अवस्था वह अवस्था कहलाती है। जिस अवस्था पर फसलों में सिंचाई करने से उत्पादन में आशातीत बढ़ोत्तरी होती हो तथा उस अवस्था पर सिंचाई नहीं करने से पैदावार में भारी गिरावट होती हैं।

विभिन्न फसलों में सिंचाई उनकी आवश्यकतानुसार एवं फसल की क्रान्तिक अवस्थाओं पर की जाती हैं।

1. **गेहूँ** :– गेहूँ में सिंचाई खेत को छोटी – छोटी पट्टियों में बांट कर करनी चाहिए। सिंचाई की गहराई 4–5 से.मी. रखे यदि पौधों में बालियां निकल आई हो तथा दाने दूधिया हो, तब सिंचाई शान्त वातावरण में करनी चाहिए। गेहूँ में प्रथम सिंचाई शीर्ष जडे निकलते समय (बुआई के 20–25 दिन बाद), दूसरी सिंचाई कल्लें निकलते (बुआई के 45–50 दिन बाद), तीसरी सिंचाई गांठ बनते समय (65–70 दिन बाद), चौथी सिंचाई फूल निकलते समय (बुआई के 85–90 दिन बाद), पांचवी सिंचाई दानों में दूध पड़ने के समय (बुआई के 100–110 दिन बाद), एवं छठी सिंचाई दाना पकते समय (बुआई के 115–120 दिन बाद) करनी चाहिए।

   यदि सिंचाई के लिए सीमित साधन हो तब इन क्रान्तिक अवस्थाओं पर सिंचाई करनी चाहिए। यदि एक ही सिंचाई उपलब्ध हो तब शीर्ष जड़ निकलते समय बुवाई के 20–25 दिन बाद यदि दो सिंचाई उपलब्ध हो तब (अ) शीर्ष जड़ निकलते समय (ब) दानों में दूध पड़ने के समय, यदि तीन सिंचाई उपलब्ध हो तब (क) शीर्ष निकलते समय (ख) कल्लें निकलने की उत्तरावस्था पर (स) दानों में दूध पड़ने के समय, यदि चार सिंचाई उपलब्ध हो तब (क) शीर्ष जड़ निकलते समय (ख) कल्लें निकलते समय (ग) बालियां आने पर (घ) दानों में दूध पड़ने के समय।
2. **जौ** :– जौ की फसल में 2–3 सिंचाईयों की जरूरत पड़ती है। इसमें सिंचाई 5–6 से.मी. गहरी करनी चाहिए। जौ में प्रथम सिंचाई बुवाई के 25–30 दिन बाद, दूसरी सिंचाई फूल आने पर (बुआई के 65–70 दिन बाद), तीसरी सिंचाई दानों में दूध बनते समय (बुआई के 100–105 दिन बाद) करनी चाहिए। सिंचाई के सीमित साधन हो तब पहली सिंचाई बुवाई के 30–35 दिन बाद तथा दूसरी सिंचाई दानों में दूध पड़ते समय करनी चाहिए। यदि एक ही सिंचाई का पानी उपलब्ध हो तब कल्ले निकलते समय (बुआई के 30–35 दिन बाद) करनी चाहिए।

- **3. सरसों** :– सरसों सिंचित एवं असिंचित क्षेत्रों में बोई जाती है। सिंचित क्षेत्रों में 2–3 सिंचाई करते हैं। प्रथम सिंचाई फूल आने से पहलें (बुआई के 35–40 दिन बाद) दूसरी सिंचाई फली बनते समय (बुआई के 55–60 दिन बाद) तथा तीसरी सिंचाई फलियों में दाना मोटा होते समय करनी चाहिए। यदि दो सिंचाई ही देने हो तब प्रथम सिंचाई बुवाई के 35–40 दिन बाद, दूसरी सिंचाई फली बनते समय करके भी अच्छा फसलोत्पादन लिया जा सकता है। तारामीरा में भी सिंचाई सरसों की तरह ही करनी चाहिए।

4. **चना** :– चना सामान्य रूप से बारानी क्षेत्रों में बोई जाती है। सिंचित क्षेत्रों में बोई चने की फसल में दो सिंचाई करनी चाहिए। प्रथम सिंचाई फूल आने से पहलें (बुआई के 45–55 दिन बाद) तथा दूसरी सिंचाई फसलों में दाना बनते समय करनी चाहिए। सीमित पानी की सिंचाई में बुवाई के 60 दिन बाद देनी चाहिए। चनें में हल्की सिंचाई करनी चाहिए। यदि चने के खेत में जल्दी उखटा रोग लग जावे तंब क्यारी बनाकर बुआई के 20–25 दिन बाद हल्की सिंचाई करना लाभदायक रहती है।

5. **मटर** :– मटर की फसल में सामान्य परिस्थितियों में दो सिंचाईयों की आवश्यकता होती हैं। प्रथम सिंचाई मटर में फूल निकलते समय तथा दूसरी सिंचाई मटर की फलियों में दाना बनते समय करनी चाहिए।

रबी फसलों की सिंचाई के लिए क्रान्तिक अवस्था

क्र.सं.	फसल का नाम	सिंचाई के लिए फसलों की क्रान्तिक अवस्था	फसल की आयु (दिनों में)
1.	गेहूँ	1. शीर्ष जड निकलते ही समय 2. कल्लें बनते समय 3. गांठ बनते ही समय 4. फूल निकलते समय 5. दानों में दूध पड़ने के समय 6. दाना पकते समय	20–25 45–50 65–70 85–90 110–110 115–120
2.	जौ	1. कल्लें निकलतें समय 2. फूल आने पर 3. दानों में दूध बनते समय	25–30 65–70 100–105
3.	सरसों	1. फूल आने के समय से पहलें 2. फलियां बनते समय 3. दानों में दूध बनते समय	35–40 55–60 85–90
4.	चना	1. फूल आने से पहलें 2. फलियों मे दाना भरते समय	45–55 95–100
5.	मटर	1. फूल निकलत समय 2. फलियों मे दाना मोटा होते समय	45–50 80–85

बीज उपचार : किसानों के लिए खुशहाली का आधार

सरोज ओला[1] एवं आनंद कुमार मीना[2]

[1]विद्यावाचस्पति छात्र, [2]सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

हमारे देश में ऐसे किसानों की संख्या ज्यादा है जिनके पास छोटे–छोटे खेत है और प्रायः खेती ही उनके जीवन–यापन का प्रमुख साधन है। आधुनिक समय मे खाधान्न की मांग बढ़ती जा रही है तथा आपूर्ति के संसाधन घटते जा रहे है। विज्ञान के नवीन उपकरणों, तकनीकों तथा प्रयोगों से किसानों की स्थिति मे सुधार हुआ है। नवीन तकनीकों के प्रयोग करने से उनकी जीवन शैली में तीव्र बदलाव आये है।

इन्ही में से एक तकनीक बीचोपचार है। जिसको सुनियोजित तरीके से अपनाने से खेती की उत्पादकता बढ़ सकती है। बीजोपचार एक सस्ती तथा सरल तकनीक है, जिसे करने से किसान भाई बीज जनित एवं मृदा जनित रोगों से अपनी फसल को खराब होने से बचा सकते हैं। इस तरीके में बीज को बोने से पहले फफूंदनाशी या जीवाणुनाशी या परजीवियों का उपयोग करके उपचारित करते हैं। भारत एक उष्ण कटिबंधीय प्रदेश है। उष्ण प्रदेश होने के कारण यहाँ रोगों एवं कीटों का प्रकोप अधिक होता है जिससे की उपज को बहुत अधिक नुकसान होता है।

उन्नत प्रजातियों के प्रयोग, पर्याप्त उर्वरक देने व सिंचाई के अतिरिक्त यदि पौध संरक्षण के उचित उपाय न किये जाये तो फसल की अधिकतम उपज नही मिल सकती है। बीज की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए बीजोपचार करना अति मत्वपूर्ण है, जैसे बच्चे को सही समय पर टीका नहीं लगने पर जीवन भर बहुत सारे बिमारियों का खतरा बना रहता है वैसे ही अगर पौधे का टीकाकरण, जो की यहाँ पर बीजोपचार से है, ना किया जाये तो बहुत सारे रोगों के आक्रमण होने का भय बना रहता है।

बीजोपचार करने के लिए निम्नलिखित विधियाँ हैः—

1. **जीवाणु बीजोपचार :**

इस विधि मे सुक्ष्म परजीवीनाशी जैसे ट्राइकोड्रमा विरिडी, ट्राइकोड्रमा हारजिएनम, स्यूडोमोनास, फ्लोरेसेंस इत्यादि का उपयोग करके बीज को उपचारित करते हैं।

2. **स्लरी बीजोपचार :**

यह विधि समय की बचत वाली विधि है। इस विधि से बीज बुआई के लिए जल्दी तैयार हो जाते है। इसमे अनुशंसित मात्रा की दवा के साथ थोड़ा पानी मिलाकर पेस्ट बना लेते है। इस पेस्ट को बीज में मिलाकर छाया में सुखा लेते है सूखे हुए बीजो से यथाशीघ्र बुआई करते हैं। इस विधी द्वारा बीज कम समय में बुआई के लिए जल्दी तैयार हो जाते हैं।

3. **सूखा बीजोपचार :**

इस विधि में बीज को अनुशंसित मात्रा की दवा के साथ सीड ड्रेसिंग ड्रम में डालकर अच्छी तरह हिलाते हैं जिससे दवा का कुछ भाग प्रत्येक बीज पर चिपक जाए। सीड ड्रेसिंग ड्रम का उपयोग तब करते है, जब बीज की मात्रा ज्यादा होती है। अगर बीज सीमित मात्रा में है तो सीड ड्रेसिंग ड्रम के स्थान पर मिट्टी के घड़े का प्रयोग कर सकते हैं। सीड ड्रेसिंग ड्रम या मिट्टी के घड़े में बीज की मात्रा दो तीहाई से ज्यादा नहीं रहनी चाहिए।

4. **भीगा बीजोपचारः** इस विधि का उपयोग सब्जियों के बीजों के लिए ज्यादा फायदेमंद होता है। इस विधि में अनुशंसित मात्रा की दवा का पानी में घोल बना कर बीज को कुछ समय के लिए उसमें छोड़ देते हैं तथा, कुछ समय पश्चात् छायादार स्थान में 6—8 घंटे सुखाकर यथाशीघ्र बुआई करते हैं।

5. **गर्म जल द्वारा बीजोपचार :**

यह विधि जीवाणु एवं विषाणुओं की रोकथाम के लिए ज्यादा लाभदायक है। इस विधि में बीज या बीज के रुप में प्रयोग होने वाले पादप भाग जैसे कंद को 52—54 डिग्री तापमान पर 15 मिनट तक रखते हैं। जिससे रोगजनक नष्ट हो जाते हैं लेकिन बीज अंकुरण पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है।

6. **सूर्यताप द्वारा बीजोपचार** :

यह विधि गेहूँ, जौ एवं जई जिनमें अनावृत कंडवा रोग लगता है, उसके नियंत्रण के लिए लाभदायक है। इस विधि में बीज को पानी में कुछ समय (3—4 घंटे) के लिए भिगोते हैं और फिर सूर्यताप में 4 घंटे तक रखते हैं बीज के आंतरिक भाग में रोगजनक का कवकजाल नष्ट हो जाता है। रोगजनक को नष्ट करने के लिए रोगजनक की सुषुप्तावस्था को तोड़ना होता है, जिससे रोगजनक नाजुक अवस्था में आ जाता है, जो कि सूर्य की गर्मी द्वारा नष्ट किया जा सकता है। यह विधि गर्मी के महीने (मई—जून) में कारगर पाई गई है।

7. **राईजोबियम कल्चर से बीजोपचार**

इस विधि में खरीफ की पाँच मुख्य फसलों (अरहर, उड़द, मूँग, सोयाबीन एवं मूँगफली), तथा रबी की तीन दलहनी फसलें (चना, मसूर तथा मटर) में राईजोबियम कल्चर से बीजोपचारित कर सकते हैं। 100 ग्राम कल्चर आधा एकड़ जमीन में बोये जाने वाले बीजों को उपचारित करने के लिए प्रर्याप्त होता है।

इस विधि में 1.5 लीटर पानी में लगभग 100 ग्राम गुड़ डालकर खूब उबाल लेते है। ठण्डा होने पर एक पैकेट कल्चर डालकर अच्छी तरह मिला लेते है। इस कल्चरयुक्त घोल के साथ बीजों को इस तरह मिलाते है कि बीजों पर कल्चर की एक परत चढ़ जाए। उपचारित बीजों को छाया में सुखा कर यथाशीघ्र बुआई करते हैं।

विभिन्न फसलों मे बीजोपचार के लिए अनुशंसा :

वैसे तो भारत सरकार ने अभी कुछ ही दिन पहले लगभग 27 कीटनाशी के प्रयोग को बंद करने का एक ड्राफ्ट तैयार किया है जिसके लिए 45 दिनों का समय दिया है, कि अगर किसी को इस संदर्भ में याचिका देकर सरकार के फैसले को चुनौती देनी है तो वे ऐसा तर्क के साथ कर सकते हैं। परंतु इस प्रक्रिया में समय लगने की संभावना है और आज की तारीख में नीचे तालिका में वर्णित संस्तुति को किसान भाई अपना सकते हैं।

पौधा (बिचड़ा) उपचार :

इस विधि द्वारा मुख्यतः धान, टमाटर, बैंगन, गोभी, मिर्च इत्यादि के पौधों को जीवाणु रोगों से बचाया जाता है। इस विधि में रोपाई पहले पौधों की जड़ों को एंटीवायोटिक (एस्ट्रेप्टोसाईक्लिन) के घोल में डुबो कर उपचारित करते है।

बीज उपचारित करने का क्रम :

बीज उपचारित करने के लिए सर्वप्रथम एफ.आई.आर. क्रम याद रखना चाहिए। बीज को सर्वप्रथम फफूंदनाशी से उसके बाद कीटनाशी से (2 घंटे बाद) और अन्त में राईजोबियम कल्चर से (4 घंटे बाद) उपचारित करें। कवकनाशी, कीटनाशी तथा जैविक नियंत्रण क्रम गैर दलहनी फसलों पर लागू करनी चाहिए।

सावधानियाः

1 बीज उपचारित करने के लिए निर्धारित मात्रा का ही प्रयोग करें।
2 बीजोपचार करने के बाद बीज को छायेदार जगह में ही सुखाएं।
3 रसायनों के प्रयोग से पहले उसकी एक्सपायरी तिथि अवश्य जाँच लें।
4 उपचार के बाद डिब्बों तथा थैलों को मिट्टी के अंदर अवश्य दबा दें तथा अच्छी तरह साबुन से हाथ धो लें।
5 रसायनों को बच्चों तथा मवेशियों की पहुंच से दूर रखें।
6 रसायनों के प्रयोग के समय न तो कुछ खायें, न ही धूम्रपान करें।
7 दवा को उसके मूल डिब्बे में रखें तथा उसका लेबिल खराब न होने दे। खाद्य, जल या शराब के डिब्बों पर कीटनाशक रसायन को कभी न भरें।

बीजोपचार एक सस्ती तथा सरल विधि है। कोई भी किसान भाई बड़ी आसानी से इस विधि को अपना सकते हैं। रसायनिक पदार्थो का प्रयोग इस विधि में कम से कम होता है। बीजोपचार करने के बाद खड़ी फसल में सुरक्षा के अन्य उपायों की कम आवश्यकता पड़ती है इसलिए यह एक पर्यावरण अनुकूल तकनीक है। फसल उत्पादन में इस विधि द्वारा किसान भाईयों को 15—20 प्रतिशत तक मुनाफा मिलता है।

कृषि में जैव कारकों का महत्व : एक विस्तृत विश्लेषण

मनीषा खीचड[1], एस. के. गोयल[2], निकिता कुमारी[1] एवं कोमल चौधरी[1]

[1]विद्यावाचस्पति विद्यार्थी, [2] सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है एवं भारत की अधिकतम जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर है, परंतु वर्तमान समय में कृषि के क्षेत्र में बहुत अधिक मात्रा में रासायनिक कीटनाशकों तथा कवकनाशकों का उपयोग करने से मृदा की उर्वरता कम हो रही है, पौधे लगातार विभिन्न फाइटोपैथोजेन्स जैसे कि कवक, बैक्टीरिया, और वायरस के संपर्क में आते हैं। ये रोगजनक फसलों की उत्पादकता को काफी कम कर सकते हैं । रोगों के कारण फसल उपज में 20 से 40 प्रतिशत तक की हानि होती है। रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग प्रमुख फसलों में कई बीमारियों को नियंत्रित करने में प्रभावी रहा है, रासायनिक रसायनों के अत्यधिक उपयोग से पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। फाइटोपैथोजेन्स का जैव नियंत्रण एक कम विषाक्त और सुरक्षित तरीका है जो विभिन्न फसल रोगों की गंभीरता को कम करता है, उपयोग के लिए कई प्रकार के जैविक नियंत्रण एजेंट (BCA) उपलब्ध हैं ।

दुनिया की बढ़ती आबादी को पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराने के लिए, विभिन्न फसल रोगों को नियंत्रित करने के लिए एक कुशल प्रबंधन प्रणाली की आवश्यकता है। आज तक, रोग प्रतिरोधी फसलों का विकास, रासायनिक कीटनाशकों का अनुप्रयोग और प्रभावी रणनीतियों को लागू करना पौधों की बीमारियों को नियंत्रित करने के प्राथमिक दृष्टिकोण हैं। विभिन्न रोग कारकों के नियंत्रण हेतु विभिन्न उपाय किए जाते हैं जैसे की प्रतिरोधी किस्म का चयन, सांस्कृतिक क्रियाएं इत्यादि, इसके साथ ही रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग भी किया जाता है रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण हो रहा है इसके साथ में मृदा की उर्वरता भी प्रभावित हो रही है, इसे अंतिम उपाय के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए। परंतु पौधे एवं मृदा के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिए जैव कारकों का उपयोग महत्वपूर्ण है ।

राइजोस्फीयर क्षेत्र में बीसीए स्थान और संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा करता है, और विभिन्न पदार्थों जैसे लिपोपेप्टाइड्स, बायोसर्फेक्टेंट्स, बैक्टीरियोसिन, वाष्पशील और एंजाइम के माध्यम से रोगजनकों की रोगजनकता में हस्तक्षेप करता है, जिनमें रोगजनकों के विकास या चयापचय गतिविधि को धीमा करके रोगाणुरोधी प्रभाव होते हैं ।

ट्राइकोडर्मा, सूडोमोनास और बैसिलस का कृषि में उपयोग

1. ट्राइकोडर्मा फफूंद

- यह एक लाभकारी कवक है जो मिट्टी में पाया जाता है तथा हानिकारक रोगजनकों को नियंत्रित करने में मदद करता है
- ट्राइकोडर्मा को हाइपोक्रेसी परिवार का कवक माना जाता है।
- यह जैविक नियंत्रण एजेंट के रूप में उपयोग किया जाता है।
- ट्राइकोडर्मा पौधों में रोगों को कई तरह से प्रबंधित करता है जैसे परजीवीकरण, मेजबान–पौधे के प्रतिरोध को प्रेरित करना और प्रतियोगिता शामिल हैं इससे आर्द्रगलन, जड़–सड़न, उकठा, तना सड़न , फल–सड़न, कालर रोट जैसी बीमारिया नियंत्रित होती है
- ट्राइकोडर्मा मिट्टी में मौजूद कार्बनिक पदार्थों को विघटित कर पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करता है।
- इसका प्रभाव मिट्टी मे लम्बे समय तक रहता हैं।
- ट्राइकोडर्मा के कुछ प्रकार ट्राइकोडर्मा हरजियानम टी–22 और ट्राइकोडर्मा पॉलीस्पोरम हैं।
- ट्राइकोडर्मा पौधों की वृद्धि और जड़ों के विकास को बढ़ावा देने के लिए इंडोलएसेटिक एसिड (IAA) और हरजियानोलाइड जैसे पादप विकास उत्तेजक का उत्पादन कर सकता है, जो पौधों द्वारा Fe और P के अवशोषण को बढ़ावा देते हैं।

2. सूडोमोनास बैक्टीरिया

- यह एक लाभकारी बैक्टीरिया है जो पौधों को कई प्रकार के रोगों से बचाने में मदद करता है।
- यह ग्राम–नेगेटिव बैक्टीरिया है तथा यह गामाप्रोटोबैक्टीरिया वर्ग के स्यूडोमोनैडेसी परिवार से संबंधित है।
- सूडोमोनास फ्लोरेसेंस जैविक नियंत्रण एजेंट के रूप में कार्य करता है और रोगजनक कवकों के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है।
- यह मिट्टी में फास्फोरस की उपलब्धता को बढ़ाता है, जिससे पौधों की वृद्धि में सहायता मिलती है।
- सूडोमोनास पौधों में रोगों को कई तरह से जैसे एंटीबायोसिस, साइडरोफोर उत्पादन और प्रेरित प्रणालीगत प्रतिरोध (ISR) द्वारा प्रबंधित करता है।

3. बैसिलस बैक्टीरिया

- बैसिलस एक छड़ के आकार का बैक्टीरिया है तथा यह ग्राम–पॉजिटिव बैक्टीरिया है।
- बैसिलस प्रजाति के बैक्टीरिया पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं और मिट्टी की उर्वरता बनाए रखते हैं।
- बैसिलस थुरिंजिएन्सिस (Bt) कीट नियंत्रण के लिए जैविक कीटनाशक के रूप में प्रयोग किया जाता है।
- यह मिट्टी के माइक्रोबियल संतुलन को बनाए रखने में मदद करता है।
- बैसिलस पौधों में रोगों को कई तरह से प्रबंधित करता है जैसे एंटीबायोसिस, एंजाइम उत्पादन और बायोफिल्म निर्माण।

कृषि पर प्रभाव

1. **मृदा उर्वरता में वृद्धि –** ट्राइकोडर्मा, सूडोमोनास और बैसिलस जैव उर्वरकों के रूप में कार्य करते हैं और मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं।
2. **प्राकृतिक रोग नियंत्रण –** ये जैविक एजेंट फसलों को हानिकारक रोगजनकों से बचाते हैं और फसल उत्पादन में वृद्धि करते हैं।

3. **जैविक कृषि को बढ़ावा –** रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों की आवश्यकता को कम कर ये सूक्ष्मजीव पर्यावरण–अनुकूल कृषि को बढ़ावा देते हैं।

जैव नियंत्रण एजेंटों के अनुप्रयोग विधियाँ

1. **बीज उपचार (Seed Treatment)**
- जैव नियंत्रण एजेंटों को बीजों पर लेपित किया जाता है ताकि वे अंकुरण के समय पौधों की रक्षा कर सकें।
- यह विधि फफूंद जनित रोगों से बचाव के लिए प्रभावी होती है।
- ट्राइकोडर्मा का 6–10 ग्राम पाउडर प्रति किलो बीज की दर से मिलाकर बीजों को उपचारित करें ।

2. **मिट्टी उपचार (Soil Treatment)**
- ट्राइकोडर्मा और बैसिलस को जैव उर्वरक या जैव नियंत्रक के रूप में मिट्टी में मिलाया जाता है।
- यह मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाकर पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करता है।

3. **पत्तों पर छिड़काव (Foliar Spray)**
- सूडोमोनास और अन्य जैविक एजेंटों को तरल रूप में पौधों की पत्तियों पर छिड़का जाता है।
- यह विधि पौधों को रोगजनकों और कीटों से बचाने में सहायक होती है।

4. **जड़ संसेचन (Root Dipping)**
- पौधों की जड़ों को जैव नियंत्रण एजेंटों के घोल में डुबोकर रोपाई की जाती है।
- यह जड़ों को संक्रमण और रोगों से बचाने में मदद करता है।

5. **संयुक्त अनुप्रयोग (Integrated Application)**
- बीज उपचार, मिट्टी उपचार और पत्तों पर छिड़काव का संयोजन करके प्रभावी जैव नियंत्रण किया जाता है।
- यह दीर्घकालिक और टिकाऊ कृषि के लिए उपयुक्त होता है।

जैव नियंत्रण एजेंटों के अनुप्रयोग में चुनौतियाँ

1. **पर्यावरणीय परिस्थितियाँ**
- जैव नियंत्रण एजेंटों की प्रभावशीलता तापमान, नमी और मिट्टी की संरचना पर निर्भर करती है।
- प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में इनकी क्षमता कम हो सकती है।

2. **भंडारण और जीवनकाल**
- जैव नियंत्रण एजेंटों का भंडारण और उनकी शेल्फ–लाइफ सीमित होती है, जिससे इनके दीर्घकालिक उपयोग में कठिनाई होती है।

3. **अनुप्रयोग की सटीक विधियाँ**
- किसानों को सही अनुप्रयोग विधियाँ अपनाने की जानकारी होनी आवश्यक है।
- गलत तरीके से उपयोग करने पर जैविक एजेंट प्रभावी नहीं होते।

4. **अन्य कीटनाशकों और उर्वरकों का प्रभाव**
- रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों का अधिक उपयोग जैव नियंत्रण एजेंटों के प्रभाव को कम कर सकता है।

5. **लागत और उपलब्धता**
- कुछ जैव नियंत्रण एजेंटों की उत्पादन लागत अधिक होती है और वे सभी क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं होते।

ट्राइकोडर्मा, सूडोमोनास और बैसिलस जैसे लाभकारी सूक्ष्मजीव कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनका उपयोग जैविक नियंत्रण, मृदा स्वास्थ्य सुधार और फसल उत्पादन में वृद्धि के लिए किया जाता है, जिससे सतत कृषि प्रणाली को बढ़ावा मिलता है। इनके प्रभावी उपयोग से न केवल उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण भी सुनिश्चित किया जा सकता है।

कृषि में जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका

एम. के. मीणा, कैलाश चन्द्र एवं आशीष शीरा
सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान का एक उभरता हुआ क्षेत्र है क्योंकि इसमें कई जैविक समस्याओं को हल करने की क्षमता है जिन्हें अब तक पारंपरिक तकनीकों से हल नहीं किया जा सका है। जैव प्रौद्योगिकी अपने अनुप्रयोगों को व्यापक स्पेक्ट्रम तक विस्तारित करती है जिसमें दवाएं, कृषि, ट्रांसजेनिक, आनुवंशिक इंजीनियरिंग आदि शामिल हैं। कृषि जैव प्रौद्योगिकी पौधों, और सूक्ष्मजीवों को बेहतर बनाने के लिए वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग है। इसे एग्रीटेक के नाम से भी जाना जाता है।

जनसंख्या के आकार में बड़ी वृद्धि के कारण संसाधनों और भोजन, आश्रय, कपड़े आदि जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की मांग बढ़ गई है। जनसंख्या में वृद्धि का एक और प्रभाव फसल उत्पादन के लिए भूमि का दोहन है। इस प्रकार खेती एक छोटे से क्षेत्र तक ही सीमित रह गयी है। सीमित संसाधनों के साथ मांगों को पूरा करने के लिए हमें बड़े प्रयास करने की आवश्यकता है। कृषि में जैव प्रौद्योगिकी ने इस स्थिति का चेहरा बदल दिया है।

जैव प्रौद्योगिकी विभिन्न उद्देश्यों के लिए उत्पादों के विकास या सुधार के लिए किसी भी जैविक प्रणाली या जीवित प्रणाली को संशोधित या हेरफेर करने के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग है। इसका व्यापक रूप से विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग किया जाता है और कृषि उनमें से एक है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग : जेनेटिक इंजीनियरिंग, जिसे जेनेटिक मॉडिफिकेशन के नाम से भी जाना जाता है, एक प्रयोगशाला प्रक्रिया है जो किसी जीव के डीएनए को बदल देती है। इसका उपयोग आनुवंशिक रूप से संशोधित जीव (जीएमओ) बनाने के लिए किया जाता है। वैज्ञानिक एक जीव से दूसरे जीव में जीन डालने के लिए प्रयोगशाला तकनीकों का उपयोग करते हैं। वे डीएनए के एक हिस्से को हटा भी सकते हैं या एक नया खंड जोड़ सकते हैं यह पौधों, जानवरों, बैक्टीरिया और अन्य छोटे जीवों के साथ किया जा सकता है

मार्कर सहायता प्राप्त चयन (एम.ए.एस) : एक पौधा प्रजनन तकनीक जो वांछित लक्षणों की पहचान और चयन के लिए आणविक मार्कर्रों का उपयोग करती है। आणविक मार्कर एक शक्तिशाली प्रणाली है जो पौधे प्रजनन की दक्षता और सटीकता में सुधार कर सकता है।

जीनोम एडिटिंग : जीनोम एडिटिंग, जिसे जीन एडिटिंग के नाम से भी जाना जाता है, एक जेनेटिक इंजीनियरिंग तकनीक है जो किसी जीव के डीएनए में बदलाव करती है। इसका उपयोग जीनोम में किसी विशिष्ट स्थान पर डीएनए को जोड़ने, हटाने या संशोधित करने के लिए किया जा सकता है। जीनोम एडिटिंग और अन्य जीनोम–संपादन प्रौद्योगिकियाँ पादप जीनोम में सटीक संशोधन के लिए सक्षम हो गई हैं। तकनीकें वैज्ञानिकों को विशिष्ट जीन को लक्षित करने की अनुमति देती हैं जिससे फसलों का विकास हो सके उन्नत लक्षण, जैसे सूखा प्रतिरोध

ऊतक संवर्धन : ऊतक संवर्धन से तात्पर्य प्रयोगशाला वातावरण में नियंत्रित परिस्थितियों में पौधों की कोशिकाओं को विकसित करने की प्रक्रिया से है, जिससे नई पौधों की किस्मों का विकास होता है, जिसका उपयोग अक्सर वांछित लक्षणों को तेजी से प्रसारित करने या माइक्रोप्रोपेगेशन नामक तकनीक के माध्यम से रोग मुक्त पौधों का उत्पादन करने के लिए किया जाता है।

कृषि में जैव प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग : कई लाभ प्रदान करता है जो हो सकते हैं वैश्विक खाद्य प्रणालियों को बदलें। कुछ कुंजी संभावनाओं में शामिल हैं फसल की पैदावार में वृद्धिः के प्राथमिक लक्ष्यों में से एक कृषि जैव प्रौद्योगिकी का उद्देश्य फसल की पैदावार बढ़ाना है, जो कि भोजन की मांग को पूरा करने के लिए आवश्यक है बढ़ती वैश्विक जनसंख्या. जेनेटिक इंजीनियरिंग सुधार के साथ फसलों के विकास की अनुमति दी गई विकास दर और उच्च पैदावार। उदाहरण के लिए, जीएम मक्का और सोयाबीन को उगाने के लिए अधिक कुशलता से इंजीनियर किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप उच्च उत्पादकता होती है

कीट और रोग प्रतिरोध : जैव प्रौद्योगिकी फसलों को कीटों और रोगजनकों के प्रति अधिक प्रतिरोधी बनाकर कीटों और पौधों की बीमारियों को नियंत्रित करने में मदद कर सकती है। इससे रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता कम हो सकती है और किसानों को अधिक उत्पादक बनने में मदद मिल सकती है। आनुवंशिक रूप से संशोधित पौधेः पौधों को विशिष्ट कीटों के प्रति प्रतिरोधी बनाने के लिए आनुवंशिक रूप से संशोधित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, बीटी–मक्का जड़ के कीड़ों और तने के छेदक के प्रति प्रतिरोधी है।

विकास द्वारा कुपोषण को दूर करने की क्षमता :
जैव–प्रचलित फसलें पोषण के लिए महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे मुख्य खाद्य फसलों में आवश्यक विटामिनों और खनिजों के स्तर को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ा देती हैं, जिससे लोगों को अपने नियमित आहार से ही अधिक सूक्ष्म पोषक तत्वों का उपभोग करने में मदद मिलती है, विशेष रूप से उन लोगों को लाभ होता है, जिनकी विविध खाद्य पदार्थों तक सीमित पहुंच है और जो सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से पीड़ित हैं, जिन्हें ''अंतर्निहित भूख'' के रूप में भी जाना जाता है।

जलवायु लचीलापन : जैव प्रौद्योगिकी अधिक लचीली फसलों को विकसित करके और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करके जलवायु परिवर्तन को कम करने और उसके अनुकूल होने में मदद कर सकती है। अधिक लचीली फसलों को विकसित करना सूखा–सहिष्णु फसलें जैव प्रौद्योगिकी ऐसी फसलों को विकसित करने में मदद कर सकती है जो सूखे के प्रति अधिक प्रतिरोधी हैं, जैसे कि गेहूं, चावल, टमाटर, सोयाबीन और कपास।

कृषि में जैव प्रौद्योगिकी का भविष्य : कृषि में जैव प्रौद्योगिकी का भविष्य उज्ज्वल है, जिसमें खाद्य उत्पादन में सुधार, अपशिष्ट को कम करने और अधिक टिकाऊ खाद्य प्रणाली बनाने की क्षमता है। संभावित अनुप्रयोग फसल सुधार आनुवंशिक इंजीनियरिंग फसल की पैदावार, पोषण मूल्य और कीटों, बीमारियों, सूखे और लवणता के प्रति प्रतिरोध में सुधार कर सकती है पर्यावरणीय स्थिरता जैव प्रौद्योगिकी पर्यावरण पर कृषि के प्रभाव को कम करने में मदद कर सकती है।

जीरे में रोग और कीट प्रबंधन

उत्तम शिवरान एवं एम. आर. चौधरी
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

जीरे में रोग और कीट

झुलसा रोग

संक्रमित पौधों की पत्तियों और तने पर गहरे भूरे रंग का झुलसा रोग दिखाई देता है, जिसके परिणामस्वरूप प्रभावित पौधे मुरझा जाते हैं।

नियंत्रण

- रोग के लक्षण दिखने पर मैन्कोजेब (0.2 प्रतिशत) या डाइफेनोकोनाजोल (0.05 प्रतिशत) या एज़ोक्सीस्ट्रोबिन (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करके रोग को नियंत्रित किया जा सकता है। उपर्युक्त कवकनाशी को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर क्षेत्र में छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव को 15 दिनों के अंतराल पर दोहराया जाना चाहिए।
- बुवाई के 45–60 दिनों पर मैन्कोजेब का छिड़काव करने के बाद 15 दिनों के अंतराल पर डाइफेनोकोनाजोल या एज़ोक्सीस्ट्रोबिन का 2–3 बार छिड़काव करने से रोग का प्रभावी ढंग से प्रबंधन होता है।

विल्ट

संक्रमित पौधों में पत्तियाँ झुक जाती हैं और बाद में एपिनेस्टी के कारण पौधे की मृत्यु हो जाती है। विल्ट संक्रमण फसल वृद्धि के किसी भी चरण में पैच में हो सकता है। जीरे में विल्ट होने के बाद, नुकसान को कम करना बहुत मुश्किल हो जाता है।

नियंत्रण

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित एकीकृत दृष्टिकोण को अपनाकर प्रभावी ढंग से किया जा सकता है–

- ग्रीष्मकालीन जुताई की जानी चाहिए। गैर–मेज़बान फसलों के साथ कम से कम तीन साल का फसल चक्र अपनाना चाहिए।
- बुवाई के लिए स्वस्थ और रोग मुक्त बीज खरीदा जाना चाहिए।
- बीज बोने से पहले इसे उपयुक्त/अनुशंसित कवकनाशी या ट्राइकोडर्मा से उपचारित किया जाना चाहिए।
- गर्मियों के दौरान 2–3 सप्ताह के लिए मिट्टी का सौरीकरण और उसके बाद ट्राइकोडर्मा विराइड के साथ बीज उपचार रोग के प्रबंधन के लिए प्रभावी है।
- ट्राइकोडर्मा प्रजातियों के संयोजन के साथ बीज उपचार (10 ग्राम/किग्रा) और मिट्टी में छिड़काव (2.5 किग्रा/हेक्टेयर) भी जीरे के विल्ट रोग के प्रबंधन के लिए प्रभावी है।

पाउडरी फफूंद

शुरुआती अवस्था में पौधे की पत्तियों और टहनियों पर सफेद पाउडर जैसा पदार्थ दिखाई देता है। बाद में पूरा पौधा इस सफेद पाउडर से ढक जाता है।

नियंत्रण

- जीरे में पाउडरी फफूंद को 20–25 किलोग्राम/हेक्टेयर सल्फर छिड़क कर या रोग की शुरुआत से 15 दिनों के अंतराल पर 0.2 प्रतिशत वेटेबल सल्फर का छिड़काव करके नियंत्रित किया जा सकता है।

कीट

एफिड (एफिड्स गॉसिपी और माइज़पर्सिका)

एफिड्स जीरे का सबसे ज़्यादा नुकसान करने वाला कीट है। जीरे पर एफिड्स की संख्या वनस्पति अवस्था से शुरू होती है और फूल आने से लेकर बीज बनने तक चरम पर होती है। असुरक्षित फसलों में एफिड संक्रमण के कारण होने वाला नुकसान कुल उपज में 50 प्रतिशत से ज़्यादा की वृद्धि कर सकता है। यह न केवल आंतरिक गुणवत्ता (कम कुल और आवश्यक तेल) को प्रभावित करता है, बल्कि बीज की सतह पर कालिख के जमाव के कारण बाहरी गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है, देर से बोई गई फसल को समय पर बोई गई फसल की तुलना में ज़्यादा नुकसान होता है। एफिड्स जनवरी के दौरान खेत में दिखाई देते हैं और अधिकतम संख्या फरवरी (फूल आने की अवस्था) के दौरान विकसित होती है और फसल के पकने तक स्थिर रहती है। अधिकतम तापमान में वृद्धि और सापेक्ष आर्द्रता में कमी के साथ–साथ वर्षा का एफिड्स की संख्या पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। एफिड्स के विकास को प्रभावित करने में तापमान और बायोटाइप के बीच काफ़ी हद तक परस्पर क्रिया होती है। 12.4 से 29.4 डिग्री सेल्सियस तक के निरंतर तापमान की सीमा पर थर्मल आवश्यकताओं से पता चला है कि तापमान बढ़ने पर संतानों का उत्पादन और जीवित रहना कम हो जाता है। नुकसान से बचने के लिए एफिड्स का समय पर और प्रभावी प्रबंधन आवश्यक है।

नियंत्रण

- जाल लगाना पीले रंग के कीट पंख वाले एफिड्स को आकर्षित करते हैं और उन्हें पकड़ने में इस्तेमाल किया जा सकता है। एफिड की आबादी को कम करने के लिए चिपचिपे जाल का इस्तेमाल किया गया है।
- अक्टूबर के दूसरे सप्ताह से नवंबर के पहले सप्ताह के बीच फसल की समय पर बुवाई करें। जीरे की बुवाई नवंबर के पहले सप्ताह तक करनी चाहिए क्योंकि इस तिथि के बाद की फसल की तुलना में इसका संक्रमण कम होता है। जल्दी बोई गई फसल में भी अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है।
- फसल को मनचाही मात्रा में बोना चाहिए।
- नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। क्योंकि नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों के अधिक इस्तेमाल से फसल अधिक रसीली हो जाती है।
- नीम के बीज की गिरी के अर्क का 5 प्रतिशत या नीम के तेल का 2 प्रतिशत छिड़काव करने से फसल पर एफिड्स की शुरुआती आबादी को प्रभावी ढंग से रोका जा सकता है।
- एन्टोमोपैथोजेन वर्टिसिलियम लेकानी (108 बीजाणु/ग्राम) पाउडर फॉर्मूलेशन का 5.0 ग्राम/लीटर पानी में प्रयोग अच्छे परिणाम देता है।

- अधिक एफिड आबादी होने पर किसी भी सिंथेटिक कीटनाशक का छिड़काव करना चाहिए, जैसे डाइमेथोएट 0.03 प्रतिशत, मेटासाइटोक्स – 0.03 प्रतिशत, इमामेक्टिन बेंजोएट / 10 ग्राम / हेक्टेयर, या इमिडाक्लोरप्रिड – 0.005 प्रतिशत।
- जीरे की फसल बड़ी संख्या में शिकारियों और परागणकों को आकर्षित करने के लिए जानी जाती है। वनस्पति / जैव एजेंटों का प्रयोग फसल पर एफिड्स के प्राकृतिक शिकार में मदद करता है।
- कीटों के प्राकृतिक शत्रु या शिकारी और परजीवी, जैसे कोक्सीनेला सेप्टमपंकटाटा एल., ब्रोमाइड्स सुतुरालिस एफ., मेनोचिलहुसेस मैकालैटस और एफिडियस एसपीपी। इन्हें संरक्षित किया जाना चाहिए क्योंकि ये एफिड्स की आबादी को कम कर सकते हैं।

थ्रिप्स (थ्रिप्स टैबैसी)

थ्रिप्स का संक्रमण फसल की शुरुआती वनस्पति वृद्धि से शुरू होता है और फूल आने तक रहता है। वे पौधे की पत्तियों को चूसते हैं और पत्तियों को पीला और सूखा कर देते हैं। अधिक जनसंख्या के कारण पूरा पौधा सूख जाता है।

नियंत्रण

नीम बीज कर्नेल एक्सट्रैक्ट 5 प्रतिशत या नीम तेल 2 प्रतिशत या डाइमेथोएट – 0.03 प्रतिशत या मेटासिस्टॉक्स – 0.03 प्रतिशत या थायोमेथोक्सम – 0.025 प्रतिशत का छिड़काव प्रभावी रूप से कीट को नियंत्रित करता है।

राजस्थान में दलहनी फसलें, उनके रोग और प्रबंधन

मनीषा कुमावत, जितेंद्र सिंह एवं एस. के. गोयल
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

राजस्थान का कृषि क्षेत्र प्राचीन समय से ही समृद्ध रहा है। यहाँ की जलवायु और मृदा विशेषताएँ विभिन्न प्रकार की फसलों के लिए उपयुक्त हैं। इन फसलों में प्रमुख स्थान दलहनी फसलों का है। दलहनी फसलें न केवल मानव आहार के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि ये मृदा की उर्वरता बढ़ाने में भी मदद करती हैं, क्योंकि ये नाइट्रोजन को वायुमंडल से स्थिर करके मृदा में समाहित करती हैं। राजस्थान में प्रमुख दलहनी फसलें जैसे चना, मूंग, मोठ ,उड़द, सोयाबीन और मटर उगाई जाती हैं। लेकिन दलहनी फसलें भी विभिन्न प्रकार के रोगों से प्रभावित हो सकती हैं, जो उत्पादन में कमी का कारण बन सकते हैं। यदि सही समय पर उनको पहचान कर नियंत्रित किया जाए तो आर्थिक नुकसान से बचा जा सकता है ।

राजस्थान में दलहनी फसलों के प्रमुख रोग

1. चना (Chickpea) के रोग

फ्यूजेरियम विल्ट (Fusarium wilt)

लक्षण- पौधों के निचले पत्ते पीले होकर मुरझाने लगते हैं, और अंततः पौधे सूख जाते हैं।

प्रबंधन- रोग प्रतिरोधक किस्मों का चयन करें जैसे अवरोधी व विकास, बीजों का उपचार करें, और उचित जल निकासी सुनिश्चित करें। साथ ही, फफूंदनाशक जैसे कारबेंडाजिम का उपयोग करें।

असकोचिता ब्लाइट (Aschochyta blight)

लक्षण- पत्तियों, तनों और फली पर गहरे भूरे धब्बे दिखाई देते हैं।

प्रबंधन- प्रभावित पौधों को हटाकर नष्ट करें, फफूंदनाशक जैसे क्लोरॉथालोनिल या मैनकोजेब का छिड़काव करें।

2. मूंग और उड़द के रोग

चूर्णी फफूंद (Powdery mildew)

लक्षण- पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद पाउडरी सतह का निर्माण होता है, जिससे पौधों का विकास रुक जाता है। यह रोग गरम व शुष्क मौसम में ज्यादा होता है।

प्रबंधन- सल्फर या मैनकोजेब जैसे फफूंदनाशकों का उपयोग करें, और रोगी पौधों को हटाकर नष्ट करें।

पीला मोजैक वायरस (Yellow mosaic)-

लक्षण- पत्तियों पर हल्के पीले धब्बे और मोजेक पैटर्न दिखाई देते हैं व पत्तियां झड़ने लगती हैं,जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है। संक्रमित पौधे में फूल व फलिया देर से व कम लगती है । यह रोग सफेद मक्खी से फैलता है ।

प्रबंधन- प्रतिरोधक किस्मों का चयन करें, सफेद मक्खियों (जो वायरस के वाहक होते हैं) का नियंत्रण करें और संक्रमित पौधों को नष्ट करें। पित्त चितरी रोग के लक्षण दिखाई देते ही डाई मिथोएट 0.5 मिली ली.प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करे।

3. सोयाबीन (Soybean) के रोग

सोयाबीन रस्ट (Soybean rust)

लक्षण- पत्तियों पर लाल–भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जिससे पत्तियाँ झड़ने लगती हैं।

प्रबंधन- ट्रिफ्लोक्सिस्ट्रोबिन या पायराक्लोस्ट्रोबिन जैसे फफूंदनाशकों का छिड़काव करें।

चारकोल रोट (Charcol rot)-

लक्षण- जड़ों में काली संरचनाएँ दिखाई देती हैं, और पौधे जल्दी मर जाते हैं।

प्रबंधन- रोग प्रतिरोधक किस्मों का चयन करें, मिट्टी में नमी का संतुलन बनाए रखें और जलभराव से बचें।

दलहनी फसलों के रोगों के प्रबंधन के उपाय -

1. फसल चक्रीय प्रणाली (Crop rotation)-

फसल चक्रीय प्रणाली से खेत में विभिन्न प्रकार की फसलों की बुआई की जाती है, जिससे रोगों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। दलहनी फसलों के बीच गैर–दलहनी फसलों को उगाकर मिट्टी में रोगजनक तत्वों के संकेंद्रण को रोका जा सकता है।

2. रोग प्रतिरोधक किस्मों का चयन-

रोगों से बचाव के लिए ऐसी किस्मों का चयन करें जो विशेष रोगों के प्रति प्रतिरोधक हों। उदाहरण के तौर पर, चने और मूंग की रोग प्रतिरोधक किस्मों का उपयोग किया जा सकता है।

3. बीजों का उपचार-

बीजों का उपचार फफूंदनाशकों और कीटनाशकों से करना रोगों के नियंत्रण के लिए आवश्यक है। कारबेंडाजिम या थिराम जैसे फफूंदनाशक बीजों के उपचार के लिए उपयुक्त होते हैं।

4. फफूंदनाशक और कीटनाशकों का उपयोग-

उचित समय पर फफूंदनाशकों और कीटनाशकों का छिड़काव करना रोगों और कीटों के नियंत्रण के लिए जरूरी है। जैसे मैनकोजेब, क्लोरॉथालोनिल और सल्फर का प्रयोग किया जा सकता है।

5. मिट्टी में नमी का संतुलन-

उचित जल निकासी और जल प्रबंधन से फसल के विकास में मदद मिलती है, और रोगों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। अधिक जलभराव से रूट रॉट जैसी समस्याएं हो सकती हैं।

6. फसल में सफाई और उचित देखभाल-

रोगी और मृत पौधों को तुरंत हटाकर नष्ट करना चाहिए, ताकि रोग अन्य स्वस्थ पौधों में न फैल सके। खेतों की नियमित सफाई और उचित देखभाल से रोगों को नियंत्रित किया जा सकता है।

7. जैविक नियंत्रण-

जैविक नियंत्रण उपायों के तहत ट्राइकोडर्मा जैसे लाभकारी बैक्टीरिया का उपयोग करके भूमि में उपस्थित रोगजनकों को नियंत्रित किया जा सकता है।

एपिडेमियोलॉजी और रोग प्रबंधन में इसका महत्त्व

हरीश कुमावत[1] एवं शैलेश गोदीका[2]

[1] विद्यावाचस्पति छात्र, [2]आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

पौध रोग विज्ञान में रोगों के कारणों, लक्षणों और उनके नियंत्रण का अध्ययन किया जाता है। एक ऐसा क्षेत्र है जो रोगों के प्रसार और फैलाव के अध्ययन से संबंधित है। एपिडेमियोलॉजिकल दृष्टिकोण से पौध रोग प्रबंधन एक सशक्त तरीका है, जिससे हम विभिन्न रोगजनकों के प्रभावी नियंत्रण के लिए वैज्ञानिक रणनीतियाँ तैयार कर सकते हैं।

एपिडेमियोलॉजिकल दृष्टिकोण से रोगों का प्रसार

पौध रोगों का फैलाव एक जटिल प्रक्रिया है जो रोगजनक, पौधे (होस्ट), और पर्यावरणीय कारकों के परस्पर प्रभाव से होता है। एपिडेमियोलॉजिकल दृष्टिकोण से रोगों के फैलाव को निम्नलिखित कारकों द्वारा समझा जा सकता है :

1. **रोगजनक :** रोगजनक वे सूक्ष्मजीव (फफूंद, बैक्टीरिया, वायरस) होते हैं जो पौधों में संक्रमण पैदा करते हैं। इनका जीवन चक्र और उनके प्रसार के तरीके अलग–अलग होते हैं। रोगजनकों की संक्रामकता और उनके जीवन चक्र की समझ से उनके नियंत्रण के उपाय तय किए जा सकते हैं।
2. **पौधा** : पौधा वह जीव है जो रोगजनक का शिकार बनता है। प्रत्येक पौधे की रोगों के प्रति संवेदनशीलता अलग होती है, और कुछ पौधे विशेष रोगों के लिए अधिक संवेदनशील होते हैं। एपिडेमियोलॉजी में यह अध्ययन किया जाता है कि कौन से पौधे रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता रखते हैं और कौन से नहीं।
3. **पर्यावरण** : पर्यावरणीय कारक जैसे तापमान, आर्द्रता, वर्षा, और मिट्टी की स्थिति रोगजनकों के विकास और फैलाव को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, उच्च आर्द्रता और तापमान कुछ रोगजनकों के विकास के लिए अनुकूल होते हैं।

एपिडेमियोलॉजिकल दृष्टिकोण से पौध रोग प्रबंधन

एपिडेमियोलॉजिकल दृष्टिकोण से पौध रोगों का प्रबंधन तीन प्रमुख तत्वों पर आधारित होता है : रोगजनक, पौधा, और पर्यावरण। इन तीनों तत्वों को ध्यान में रखते हुए प्रबंधन रणनीतियाँ तैयार की जाती हैं।

1.रोगजनक नियंत्रण

रासायनिक नियंत्रण : कवकनाशक, कीटनाशक और बैक्टीरियासाइड जैसे रासायनिक पदार्थों का प्रयोग करके रोगजनकों का नाश किया जा सकता है। यह एक तात्कालिक उपाय है, लेकिन इसके अधिक उपयोग से रासायनिक प्रतिरोध पैदा हो सकता है।

जैविक नियंत्रण : कुछ सूक्ष्मजीव (जैसे लाभकारी फफूंद) रोगजनकों को नष्ट करने का कार्य करते हैं। इस उपाय से पर्यावरणीय संतुलन भी बना रहता है। उदाहरण ट्राइकोडर्मा, रोगजनकों का समय–समय पर सर्वेक्षण करना और उन्हें जल्दी पहचान कर हटाना चाहिए।

2. पौधों की प्रबंधन रणनीतियाँ

प्रतिरोधी किस्मों का चयन : रोगों के प्रति प्रतिरोधी पौधों की किस्मों का चयन करना रोग के प्रभाव को कम कर सकता है। यह तरीका पौधों के लिए प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करता है।

सिंचाई और पोषण : पौधों को उचित पानी और पोषण देना ताकि वे मजबूत रहें और रोगों के प्रति उनकी प्रतिरोधक क्षमता बढ सके।

3. पर्यावरणीय कारकों का प्रबंधन

सिंचाई व्यवस्था : जल का सही प्रबंधन करना, क्योंकि अधिक या कम पानी से रोगों का फैलाव हो सकता है।

मिट्टी की संरचना और स्वास्थ्य : मिट्टी की सही देखभाल और पोषण देने से रोगजनकों के प्रसार को रोका जा सकता है।

वातावरण की निगरानी : तापमान और आर्द्रता पर नजर रखना, क्योंकि ये पर्यावरणीय कारक रोगजनकों के फैलाव को बढावा देते हैं।

4. संवर्धन और प्रौद्योगिकी का उपयोग

स्मार्ट कृषि तकनीकों का उपयोग आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी और उपकरणों का प्रयोग कर रोगों के प्रसार को कम किया जा सकता है।

सूचना और शिक्षा किसानों को एपिडेमियोलॉजी और रोग प्रबंधन के बारे में शिक्षा देना ताकि वे समय रहते रोगों का पहचान सकें और उचित उपाय अपना सकें।

एपिडेमियोलॉजी का महत्व

एपिडेमियोलॉजी का प्रमुख उद्देश्य रोगों के फैलने की प्रक्रिया को समझना है। यह पौधों में रोगों के प्रकोप, उनके प्रसार के कारणों, और इसके प्रभावों का विश्लेषण करता है। एपिडेमियोलॉजिकल दृष्टिकोण से हम यह पता लगा सकते हैं

1. रोगजनक के प्रकार, उनका जीवन चक्र, और उनका प्रसार।
2. रोग के प्रभावों को बढाने वाले पर्यावरणीय और जैविक कारक।
3. रोगों के प्रसार की गति और इसके नियंत्रण के उपाय।

एपिडेमियोलॉजिकल दृष्टिकोण से पौध रोगों का प्रबंधन एक समग्र और वैज्ञानिक तरीका है। यह हमें रोगजनकों, पौधों, और पर्यावरण के परस्पर प्रभावों को समझने में मदद करता है। इसके माध्यम से हम पौधों में रोगों के प्रसार को नियंत्रित कर सकते हैं, कृषि उत्पादन को बढा सकते हैं और पर्यावरण को संतुलित रख सकते हैं। उचित प्रबंधन के उपायों को अपनाकर हम पौध रोगों के प्रभाव को न्यूनतम कर सकते हैं और किसानों को अधिक लाभ प्राप्त करवा सकते हैं।

कीटनाशकों की खरीद और उनके सुरक्षित इस्तेमाल के लिए किसान उपयोगी कुछ सुझाव

देवा राम बाज्या, सुमन चौधरी एवं शंकर लाल शर्मा
सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

खरीद के दौरान :

कीटनाशक और जैव कीटनाशक केवल पंजीकृत कीटनाशक डीलर से ही खरीदें जिसके पास वैध लाइसेंस हो। किसी विशिष्ट क्षेत्र में एक बार के छिड़काव के लिए जितनी आवश्यवकता हो, उतना ही कीटनाशक खरीदें। एक साथ अधिक मात्रा में कीटनाशक न खरीदें। कीटनाशकों के कंटेनर या पैकेट पर मान्यता प्राप्त लेबल देखें। यदि कंटेनर पर पंजीकृत लेबल नहीं है तो कीटनाशक न खरीदें। लेबल पर बैच संख्या, पंजीकरण संख्या, मैन्युफैक्चर और एक्सपाइरी तिथि देखें। कभी भी एक्सपाइरी तिथि खत्म होने के बाद कीटनाशक न खरीदें। कंटेनर में अच्छी तरह से पैक किए हुए कीटनाशक ही खरीदें। खुले, बिना सील किये हुए अथवा लीक कर रहे कीटनाशकों के कंटेनर न खरीदें।

संग्रहण के दौरान :

कीटनाशकों का संग्रहण घर से दूर ऐसे स्थान पर किया जाना चाहिए जो बच्चों और पशुओं की पहुंच से दूर हो। कभी भी कीटनाशकों का संग्रहण घर के आंगन में न करें। कीटनाशकों / खरपतवारनाशक को कभी भी उनके कंटेनरों से निकाल कर दूसरे कंटेनरों में न रखें। कीटनाशकों को उन्हीं के कंटेनर में अलग–अलग संग्रहित किया जाना चाहिए। जिस क्षेत्र में कीटनाशकों को संग्रहित किया गया हो, उस स्थान पर चेतावनी के संकेत दिए जाने चाहिए। कीटनाशकों के संग्रहण के स्थान को सीधी धूप और बारिश से बचाव किया जाना चाहिए। खरपतवारनाशक और कीटनाशकों का संग्रहण एक साथ नहीं किया जाना चाहिए।

प्रबंधन के दौरान :

इस्तेमाल वाले स्थान पर अधिक मात्रा में कीटनाशक पहुंचाने के लिए अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए। कभी भी अधिक मात्रा में कीटनाशक को अपने सिर, कंधे या पीठ पर न ले जाएं। परिवहन के दौरान कीटनाशकों को अलग–अलग रखें। कभी भी कीटनाशकों को खाद्य पदार्थों /चारे या अन्य खाद्य वस्तुओं के साथ न ले जाएं।

छिड़काव के लिए घोल तैयार करते समय :

हमेशा साफ पानी का ही इस्तेमाल करें, कीचड़ वाले या गंदे पानी का इस्तेमाल कभी न करें। अपनी नाक, आंख, कान और हाथों के बचाव के लिए दस्ताने, मास्क, टोपी, एप्रॉन, पूरी पैंट आदि सुरक्षात्मक कपड़ों का इस्तेमाल करें, सुरक्षात्मक कपड़ों के बिना कभी भी छिड़काव का घोल तैयार न करें। इस्तेमाल करने से पहले कीटनाशक के कंटेनर पर लिखे निर्देशों को सावधानीपूर्वक पढ़ लें, कभी भी निर्देशों की अनदेखी न करें। आवश्यकता के हिसाब से छिड़काव करने की सामग्री को तैयार करें। कीटनाशक के घोल को तैयार करने के बाद कभी भी 24 घंटे पश्चात इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। दानेदार कीटनाशक का उसी रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए, दानों का इस्तेमाल पानी के साथ न करें। स्प्रे टैंक को भरते समय छिड़काव के लिए बनाए गए कीटनाशक के घोल को शरीर के किसी भी भाग पर गिरने से बचाएं। हमेशा कीटनाशकों का इस्तेमाल बताई गई मात्रा में ही करें। कीटनाशकों की अत्यधिक मात्रा इस्तेमाल नहीं करनी चाहिए। यह पौधे के स्वास्थ्य और पर्यावरण को प्रभावित कर सकता है। कीटनाशकों के छिड़काव के दौरान ऐसी कोई भी गतिविधियां नहीं करनी चाहिए, जो आपके स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती हो।

उपकरणों का चयन :

सही प्रकार के उपकरणों और सही आकार की नलिकाओं का चयन करें। लीक कर रहे या खराब उपकरण का इस्तेमाल न करें। खरपतवारनाशक और कीटनाशक के छिड़काव के लिए अलग–अलग स्प्रे उपकरण का इस्तेमाल करें। बंद नालिका या नॉजल को अपने मुंह से साफ न करें, बल्कि उसकी सफाई के लिए स्प्रेअर वाले दांत साफ करने वाले ब्रश का प्रयोग करें। खराब और जिन्हें प्रयोग न करने के सलाह न दी गई हो उन नॉजलों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

छिड़काव करते समय :

सामान्यतः हवा की दिशा में, ठंडे और सही मौसम (धूप वाले दिन) में ही छिड़काव किया जाना चाहिए। तेज धूप वाले दिन या तेज हवा में, बारिश से तुरंत पहले और बारिश के तुरंत बाद या हवा की विपरीत दिशा में छिड़काव नहीं किया जाना चाहिए। हरेक छिड़काव के लिए केवल बताई गई मात्रा और पानी का, बताए गए स्प्रे उपकरण का ही इस्तेमाल करें। छिड़काव के बाद स्प्रे उपकरण और बाल्टियों को डिटर्जेंट/ साबुन का इस्तेमाल कर साफ पानी से धोया जाना चाहिए। कीटनाशक को मिलाने के लिए इस्तेमाल में लाई बाल्टियों और कंटेनरों को धोने के बाद भी घरेलू इस्तेमाल में नहीं लाया जाना चाहिए। छिड़काव के तुरंत बाद उस स्थान पर पशुओं/ मजदूरों को प्रवेश नहीं करने देना चाहिए। इमल्सिफाएबल कॉन्संट्रेट फार्म्यूलेशंस को बैटरी से संचालित यूएलवी स्प्रे उपकरण से नहीं छिड़का जाना चाहिए। सुरक्षात्मक कपड़ों के बिना घोल के छिड़काव के तुरंत बाद खेत में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

छिड़काव के बाद :

बची हुई स्प्रे सामग्री को नाली या पास के तालाब में नहीं बहाना चाहिए, उस सामग्री को बंजर भूमि जैसे स्थान पर फेंक देना चाहिए। इस्तेमाल में लाए गए खाली कंटेनरों को जल संसाधनों से दूर मिट्टी में गाड़ देना चाहिए। उन्हें अन्य सामग्री के संग्रहण के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। साबुन से अच्छी तरह से नहाने तथा कपड़े धोने से पहले कभी कुछ भी खाना धूम्रपान नहीं करना चाहिए। जहर के लक्षण दिखने पर सर्वप्रथम प्राथमिक उपचार करें और मरीज को डॉक्टर को दिखाएं। डॉक्टर को खाली कंटेनर भी दिखाएं। डॉक्टर को जहर के लक्षण न बताने का खतरा नहीं उठाना चाहिए क्योंकि यह मरीज के जीवन के लिए खतरनाक हो सकता है।

सरसों में कीट एवं रोग प्रबंधन

ममता देवी चौधरी, सुमन चौधरी एवं पिंकी शर्मा
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

सरसों की उपज को बढाने तथा उसे टिकाउपन बनाने के मार्ग में नाशक जीवों और रोगों का प्रकोप एक प्रमुख समस्या है। इस फसल को कीटों एवं रोगों से काफी नुकसान पहुंचता है जिससे इसकी उपज में काफी कमी हो जाती है। यदि समय रहते इन रोगों एवं कीटों का नियंत्रण कर लिया जाये तो सरसों के उत्पादन में बढ़ोत्तरी की जा सकती है। चेंपा या माहू, आरामक्खी, चितकबरा कीट, लीफ माइनर, बिहार हेयरी केटरपिलर आदि सरसों के मुख्य नाशी कीट हैं। काला ध्ब्बा, सफेद रतुआ, मृदुरोमिल आसिता, चूर्णल आसिता एवं तना गलन आदि सरसों के मुख्य रोग हैं।

सरसों के प्रमुख कीट

चेंपा या माहू : सरसों में माहू पंखहीन या पंखयुक्त हल्के स्लेटी या हरे रंग के 1.5–3.0 मिमी. लम्बे चुभने ,चूसने वाले मुखांग वाले छोटे कीट होते है। इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़ पौधों के कोमल तनों, पत्तियों, फूलो एवम नई फलियों से रस चूसकर उसे कमजोर एवम छतिग्रस्त तो करते ही है साथ–साथ रस चूसते समय पत्तियो पर मधुस्राव भी करते है। इस मधुस्राव पर काले कवक का प्रकोप हो जाता है तथा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित हो जाती है। इस कीट का प्रकोप दिसम्बर–जनवरी से लेकर मार्च तक बना रहता है।

प्रबन्धन : माहू के प्राकृतिक शत्रुओ का संरक्षण करना चाहिए। प्रारम्भ में प्रकोपित शाखाओं को तोडकर भूमि में गाड़ देना चाहिए। जब फसल में कम से कम 10 प्रतिशत पौधें की संख्या चेंपा से ग्रसित हो व 26–28 चेंपा प्रति पौधा हो तब एसिटामाप्रिड 20 प्रतिशत एस पी 500 ग्राम या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस. एल 150 एम. एल. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर में सायंकाल में छिड़काव करना चाहिए। यदि दुबारा से कीट का प्रकोप हो तो 15 दिन के अंतराल से पुनः छिड़काव करना चाहिए।

आरा मक्खी : इस मक्खी का धड नारंगी रंग का होता है। इसका सिर व पैर काले होते है। सुण्डियों का रंग गहरा हरा होता है। जिनके उपरी भाग पर काले धब्बो की तीन कतारें होती है। इस कीडे की सुण्डियां फसल को उगते ही पतो को काट–काट कर खा जाती है। इसका अधिक प्रकोप अक्टूम्बर–नवम्बर में होता है।

प्रबंधन : गर्मियों की गहरी जुताई करें व सिंचाई करने पर भी इसका प्रकोप कम हो जाता है। इस कीट की रोकथाम हेतु मेलाथियान 50 ई.सी. मात्रा को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर में छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर दुबारा छिड़काव करना चाहिए।

पेन्टेड बग या चितकबरा कीट : यह कीडा काले रंग का होता है जिस पर लाल पीले, नारंगी धब्बे होते है। इस कीडे के शिशु हल्के, पीले, लाल रंग के होते है। दोनो प्रौढ व शिशु इस फसल को दो बार नुकसान पंहुचाते है। पहली बार फसल उगने के तुरन्त बाद सितम्बर से अक्टूबर तथा दुसरी बार फसल की कटाई के समय फरवरी मार्च में प्रौढ व शिशु फलियों से रस चूसते है। जिससे पतियों का रंग किनारों से सफेद हो जाता है। फसल के पकने के समय भी कीडे के प्रौढ व शिशु फलियों का रस चूसकर दानो में तेल की मात्रा को कम कर देते है।

प्रबंधन : फसल में सिंचाई करने से प्रौढ, शिशु एवं अण्डे नष्ट हो जाते है। बीज को 5 ग्राम इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यु एस. प्रति किग्रा. की दर से उपचारित करें। मृदा उपचार के लिए 20–25 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 1.5 प्रतिशत क्यूनालफॉस चूर्ण का भुरकाव करें। फसल की शुरू की अवस्था में 200 मिली. मैलाथियॉन 50 ई. सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड छिडकाव करें।

सफेद रतुवा या श्वेत किट्ट : इस रोग के कारण 23–55 प्रतिशत तक नुकसान होता है। सरसों के अतिरिक्त यह रोग मूली, शलजम, तारामीरा, फूलगोभी, पतागोभी, पालक और शकरकंद पर भी पाया जाता है।

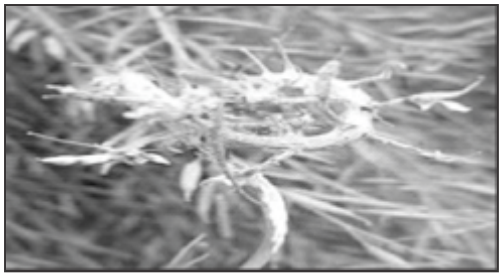

रोग के लक्षणः– इस रोग के लक्षण पौधे पर दो प्रकार के संक्रमण के रूप में प्रकट होते हे।

सीानीय संक्रमणः–इस संक्रमण के फलस्वरूप पत्ती , तने, पुष्पवृंतों पर विभिन्न आकार व माप के सफेद स्फोट बन जाते है।

सर्वांगी संक्रमणः– इस संक्रमण में तरूण तनों तथा पुष्पक्रम पर इस रोग का सर्वांगी संक्रमण होता है। इन भागो के उतकों की अतिवृद्वि एवं अतिवर्धन के कारण पुष्प अंगो का निरूपण हो जाता है तथा यह फूलकर दर्शाते है।

प्रबंधनः–बीजो को मेटालेक्जिल (एप्रोन 35 एस डी) 6 ग्राम/किग्रा. बीज या मैन्कोजेब 2.5 ग्राम/किग्रा. बीज से उपचारित कर बोना चाहिए। खडी फसल में रोग के लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब (डाइथेन एम–45) या रिडोमिल एम.जेड. 72 फफूँदनाशी के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव 15–15 दिन के अन्तर पर करने के सफेद रतुआ से बचाया जा सकता है।

मृदुरोमिल आसिता : सफेद रतुआ रोग के प्रबंधन द्वारा इस रोग का भी नियंत्रण हो जाता है।

पत्ती धब्बा रोगः–सामान्यता यह रोग दिसम्बर–जनवरी में प्रकट होता है। इस रोग के कारण 35–65 प्रतिशत तक हानि होती है।

रोग के लक्षणः–इस रोग के लक्षण सभी वायवीय भागों पर दिखाई देते है। इस रोग में धब्बों का रंग व आकार रोगजनक पर निर्भर करता है। आल्टरनेरिया ब्रेसीकीकोला संकेन्द्री वलय के रूप में होते है जबकि आल्टरनेरिया ब्रेसीकी के कारण बनने वाले धब्बे हल्के रंग के तथा छोटे अरकार के संकेद्री वलय के रूप में होते है। उग्र अवस्था में रोग के लक्षण तने व फलियों पर भी दिखाई देते है।

प्रंबधनः–बुवाई के लिए हमेशा स्वस्थ व प्रमाणित बीजों का ही उपयोग करना चाहिए। फसल चक्र अपनाना चाहिए। गर्मियों की गहरी जुताई करनी चाहिए। खडी फसल में इस रोग की रोकथाम हेतु 45 दिन बाद मेन्कोजेब (डाइथेन एम–45), या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के 2.5 ग्राम/लीटर पानी घोल का छिड़काव रोग के लक्षण दिखाई देने पर 15–15 दिन से अधिकतम तीन छिड़काव करें।

चूर्णिल आसिता : यह रोग शुष्क व गर्म मौसम में ज्यादा होता है इस रोग के कारण 45–90 प्रतिशत उपज में हानि होती है।
रोग के लक्षण : पादप की निचली पत्तियों की ऊपरी सतह पर छोटी गोलीय या अनियमित सफेद कवक कॉलोनी का पाया जाना ही इस रोग का प्रमुख लक्षण है। धीरे–धीरे ये कवक वुद्वि करते हुए ऊपरी पत्तियों, तनें, शाखाओं तथा फलियों पर प्रकट हो जाता है। फलस्वरूप सम्पूर्ण पादप धूसर सफेद रंग का दिखाई देता है।
अनुकुल कारक : 15–20 डी. से. ग्रे. तापमान, कम नमी तथा कम बरसात रोग के विकास में सहायक होते है। अगेती बुवाई करने पर रोग का प्रकोप अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है।
प्रबंधन : फसल कटाई के बाद फसल अवशेषों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए। खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए। नत्रजन उर्वरकों का समन्वित उपयोग करना चाहिए। चूर्णिल आसिता रोग की रोकथाम हेतु घुलनशील सल्फर (0.2 प्रतिशत) या केराथेन (0.1 प्रतिशत) की वांछित मात्रा का घोल बनाकर रोग के लक्षण दिखाई देने पर छिड़काव करें। आवश्यकता होने पर 15 दिन बाद पुनः छिड़काव करें।

तना गलन : इस रोग के कारण लगभग 50–60 प्रतिशत तक हानि होती है।
रोग के लक्षण : पत्तियाँ गिरने के साथ ही पौधे का सूख जाना, इस रोग का मुख्य लक्षण है। तने के शिखर भाग पर कवक की सफेद रूई जैसी वृद्वि दिखाई देती है। तने के उपरी भाग पर संक्रमण से तना गलकर सफेद हो जाता है। ऐसे तने टूटकर गिर जाते है। तनों को चीरने पर उनमें काले स्केलेरोशिया दिखाई देते है। खेत में रोगी पौधे सफेद व सूख जाने के कारण आसानी से दिखाई देते है।
प्रबंधन : हमेशा बुवाई के लिए स्वस्थ व प्रमाणित बीज काम में लेना चाहिए। फसल की कटाई के बाद गर्मियों में गहरी जुताई करनी चाहिए। बुवाई के 50–60 दिन बाद निचली पत्तियों को हटा देना चाहिए। बीजो को कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम/किग्रा बीज के हिसाब से उपचारित करके बोना चाहिए। खडी फसल में 50–60 दिन पश्चात कार्बेन्डाजिम 0.1 प्रतिशत कवकनाशी को पानी में घोलकर छिडकाव करना चाहिए।
जैविक प्रबंधन : ट्राइकोडर्मा कल्चर 4 ग्राम/किग्रा. बीज से बीजोपचार करना चाहिए। 2.5 कि.ग्रा. ट्राइकोडर्मा कल्चर को 50 किलो सडी हुई खाद में मिलाकर 10–15 दिन रखने के बाद खेत में छिटक कर बुवाई करनी चाहिए।

स्मार्ट एपिकल्चर की आवश्यकताएं

निकिता पाटीदार, देवा राम बाज्या, शंकर लाल शर्मा एवं अख्तर हुसैन
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

स्मार्ट एपिकल्चर पारंपरिक मधुमक्खी पालन का भविष्य है, जो वैज्ञानिक नवाचारों और डिजिटल प्रौद्योगिकियों का उपयोग करके इसे अधिक कुशल और लाभकारी बनाता है। मधुमक्खी पालन एक ऐसी प्रक्रिया है जो कि शहद, मॉम, पराग और अन्य उत्पाद प्राप्त करने के लिए उपयोगी है। मधुमक्खी पालन हमारे लिए प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों ही रूप से काफी लाभदायक है। यह एक कृषि पर आधारित व्यवसाय है, जो कि कई तरीकों से किसानों की उन्नति में सहयोगी है जैसे कि शहद उत्पादन, परागण ,पर्यावरण संरक्षण एवं आर्थिक विकास इत्यादि।

पारंपरिक मधुमक्खी पालन में समस्याएं :

मधुमक्खियां की कम उत्पादकता : 2024 मई के अध्ययन के अनुसार पश्चिमी और उत्तर अमेरिकी प्रदेशों में मधुमक्खियों और तितलियों की संख्या आकस्मिक आपदा एवं पर्यावरण परिवर्तन के कारण काम हो गयी।
स्वचालित मधुमक्खी पालन : स्वचालित मधुमक्खी पालन के प्रयोग से शहद की कटाई को संरक्षित, सुरक्षित एवं सरल बनाया जा सकता है। इस प्रकार से आधुनिकरण के प्रयोग से मधुमक्खियों के नुकसान को कम से कम तथा उत्पादकता को अधिकतम किया जा सकता है।
जैव तकनीक और जेनेटिक सुधार : मधुमक्खियों की प्रजातियों के सुधार तथा उन्हें रोग रहित रखने के लिए जैव तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है। कृषक उपज को उपभोक्ताओं तक पहुंचा सकता है, जिस से उन्हें अधिक फायदा होता है। स्मार्ट सेंसर जैसे उपकरणों के माध्यम से विभिन्न प्रकार के डाटा को माप सकते है, और उसे तार या अन्य किसी माध्यम के बिना ही भेज सकते है, यह खास तौर पर औद्योगिक स्वचालन, स्मार्ट सिटी के प्रबंधन कार्यों तथा कृषकों के लिए लाभदायक है जैसे मिट्टी और जलवायु की निगरानी आदि ।

डेटा संचालित मधुमक्खी पालन क्या है ?

यह एक प्रभावी एवं आधुनिक तकनीक पर आधारित दृष्टिकोण है जिसमें मुख्यतः मधुमक्खियों के छत्तों की रियल टाइम मॉनिटरिंग मतलब वास्तविक समय की निगरानी की जाती है। जिसकी मदद से मधुमक्खियों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है तथा पर्यावरण की स्थितियों को अच्छे से समझा जा सकता है। डेटा संचालित मधुमक्खी पालन के मुख्य फायदे :
1). एकदम सटीक डाटा पर आधारित प्रबंधन से उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है तथा समय और श्रम की बचत होती है। आकस्मिक आपदाओं से बचाव वैश्विक नेविगेशन सिस्टम की मदद से मधुमक्खियों के संरक्षण निर्धारित किया जा सकता है। अंततः डेटा संचालित मधुमक्खी पालक परंपरागत प्रक्रियाओं से ज्यादा उन्नत उच्च एवं लाभकारी है। वैज्ञानिक और व्यावसायिक रूप से भी यह कल्याणकारी है। यह न केवल मधुमक्खियों का रक्षण करता है अपितु शहद उत्पाद में वृद्धि एवं कृषि में परागण की विशेषता को भी बढ़ाता है।

स्मार्ट एपिकल्चर की स्थिति :

वैश्विक स्तर पर स्थिति : कई देश जैसे अमेरिका, यूरोप और चीन में यह मधुमक्खी पालन का आधुनिकरण काफी प्रचलन में है। ब्लॉक चेन तकनीक के उपयोग से शहद की शुद्धता और परिपूर्णता श्रृंखला को बढ़ावा दिया जा रहा है। सरकार और कृषि विश्विद्यालयों द्वारा मधुमक्खी पालन को तकनीकी रूप से संवर्धन की ओर रुझान बढ़ाया जा रहा है। मधुमक्खी पालन और शहद मिशन के तहत कृषि जगत में मधुमक्खी पालन के आधुनिकरण को विशेष प्रेरणा दी जा रही है।

भविष्य की संभावनाएं : भारत में आधुनिक मधुमक्खी पालन की विशेष तीव्रता की संभावनाएं हैं खास तौर पर कृषि तथा शुरुआती उद्यमो में स्मार्ट हाईव सिस्टम को प्रचूर रूप से मुनाफा दायक तथा सरल बनाया जा सकता है, ताकि सीमांत किसान तथा मध्यम किसान भी इनका लाभ ले सके। यह पर्यावरण हितकारी है जिसकी मदद से कृषि में एक क्रांति लाई जा सकती है, तथापि इसके कई लाभ है जिनसे भारत के भविष्य को बहुत फायदा होगा।

सरकार की योजनाएं और सब्सिडी : स्मार्ट एपिकल्चर के प्रयोग से मधुमक्खी पालन को सुदृढ़ करना तथा किसानों की आय में वृद्धि करना है। आत्मनिर्भर भारत अभियान के तहत सरकार ने NBHM मिशन की शुरुआत की है। मिशन के हेतु 500 करोड रुपए का आवंटन किया गया जिसका प्रमुख उद्देश्य वैज्ञानिक और आधुनिक तरीकों से मधुमक्खी पालन को सहायता तथा प्रेरणा प्रदान करना है । एकीकृत मधुमक्खी विकास केंद्र, शहद प्रशिक्षण प्रयोगशालाएं और एपीथेरेपी केदो की स्थापना । महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए रोजगार है। स्मार्ट हाई उपकरणों पर सब्सिडी जैसे (IoT) इंटरनेट ऑफ थिंग्स, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, अन्य उपकरणों द्वारा तापमान आर्द्रता नमी की मॉनिटरिंग, इत्यादि कार्यों के लिए उपयोग किए जाते हैं। किसानों को आधुनिक तकनीक और स्मार्ट उपकरणों के प्रयोग हेतु प्रशिक्षण और कार्यशालाएं प्रदान करना। वित्तीय सहायता स्मार्ट मधुमक्खी पालन संबंधित अनुसंधान और विकास परियोजनाओं हेतु योजनाओं के अंतर्गत वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाई जाती है वर्तमान में सरकार ने NBHM के तहत 2560 लाख रुपए की 11 परियोजनाओं की स्वीकृति दी है, जो की वैज्ञानिक विकास और स्मार्ट तकनीको के उपयोग को प्रोत्साहित करती है। इन कदमों के माध्यम से सरकार किसानों की आय में वृद्धि, कृषि उत्पादन में सुधार और देश में मीठी क्रांति के सपने को साकार करने पर ध्यान केंद्रित कर रही है। भारत में सफल स्टार्टअप उद्यम और किसान जो इसे अपना रहे हैं, इंडियन सोसाइटी ऑफ एग्री बिजनेस प्रोफेशनल्स परियोजनाओं के माध्यम से किसानों को प्रशिक्षित किया गया है इस पहल से किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। पंजाब कृषि विश्वविद्यालय ने एपीस मेलीफेरा प्रजाति की मधुमक्खियों के पालन को प्रोत्साहित किया है उन्होंने किसानों को आधुनिक तकनीक का प्रशिक्षण दिया है जिससे शहद उत्पादन में वृद्धि हुई है। रामकृष्ण मिशन पश्चिम बंगाल और कुछ पूर्वोत्तर राज्यों में रामकृष्ण मिशन ने मधुमक्खी पालन को बढ़ावा दिया है। कीस्टोन फाउंडेशन तमिलनाडु के नीलगिरी क्षेत्र में स्थित इस फाउंडेशन ने स्थानीय जनजातीय को आधुनिक मधुमक्खी पालन से अवगत करवाया है।

चुनौतियां और समाधान :

जलवायु परिवर्तन और मौसम अस्थिरता के कारण परागण क्षमता और शहद उत्पादन में नुकसान हो जाता है कीटनाशकों और रासायनिक प्रदूषण का असर शहर की गुणवत्ता और मधुमक्खियां के घटते क्रम तथा मृत्यु दर पर सीधा पड़ रहा है। तकनीकी जानकारी ज्ञान और प्रशिक्षित किसने की कमी होने के कारण बहुत से किसान आधुनिक तकनीको का उपयोग नहीं कर पाए तथा उन्हें स्मार्ट हाईव सिस्टम को अपनाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सीमांत किसान तथा छोटे मधुमक्खी पलकों को उनके उत्पाद का सही मूल्य नहीं मिलता और बिचौलियों के कारण किसानों को शहर की उचित कीमत से वंचित रहना पड़ता है। शुरुआती उच्च लागत अधिक होने के कारण किसानों का स्मार्ट एपिकल्चर (आधुनिक मधुमक्खी पालन) में निवेश करना मुश्किल हो जाता है।

समाधान :

जैविक और प्राकृतिक कीटनाशकों का उपयोग करने से मधुमक्खियों की मृत्यु दर में कमी आएगी तथा शहर की गुणवत्ता में भी वृद्धि होगी । स्मार्ट सेंसर और आईओटी इंटरनेट का थिंग्स पर आधारित तकनीक से तापमान, मधुमक्खियों की गतिविधियां, आर्द्रता और कॉलोनी के स्वास्थ्य तथा सेहत की निगरानी की जा सकती है तथा रियल टाइम मॉनिटरिंग अर्थात सटीक समय पर निगरानी करने की मदद से सही समय पर फैसला लेने में मदद मिलती है। बीमारियों की पहचान हेतु मशीन को सीखना और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस पर आधारित एप्लीकेशंस और कैमरा विजन तकनीक से मधुमक्खियों की गतिविधियों और बीमारियों का पता लगाया जा सकता है। किसानों को स्मार्ट मधुमक्खी पालक की ट्रेनिंग देने के लिए सरकारी योजनाओं और कृषि विश्वविद्यालय की मदद ली जा सकती है, जिससे अधिक किसान लाभ कमा सकते हैं। मार्केटिंग और ई–कॉमर्स प्लेटफार्म का सही उपयोग शहर बचने के लिए किया जा सकता है जैसे अमेजॉन फ्लिपकार्ट लोकल कृषि एप्स और डायरेक्ट कंज्यूमर मॉडल अपनाए जाए। आधुनिक मधुमक्खी पालन में कई चुनौतियां हैं लेकिन आधुनिक प्रौद्योगिकी सरकारी समर्थन और जागरूकता से इन्हें हल किया जा सकता है। आधुनिकरण के साथ मधुमक्खी पालन की दक्षता और उत्पादकता बढ़ाने की एक प्रभावशाली प्रणाली है। इस प्रणाली में सेंसर, डाटा एनालिटिक्स, इंटरनेट ऑफ थिंग्स और मोबाइल एप्लीकेशन जैसी उन्नत तकनीक का उपयोग किया जाता है, जिससे मधुमक्खी पालन बहुत सुलभ हो जाता है। यह तकनीक मधुमक्खी पालकों की आय बढ़ाने में सहायक है। जलवायु परिवर्तन और बीमारियों से बचने के लिए तथा अन्य चुनौतियों का सामना करने हेतु स्मार्ट एपीकल्चर एक स्थाई एवं सटीक समाधान प्रदान करता है।

स्मार्ट एपिकल्चर का भविष्य का महत्व :

आधुनिक तकनीक का उपयोग करके मधुमक्खी पालन को अधिक प्रभावशाली, लाभदायक और पर्यावरण अनुकूल बनाने की प्रक्रिया है। मधुमक्खियों के छात्रों में सेंसर लगाए जा सकते हैं जो की तापमान, आर्द्रता, मधुमक्खियों की गतिविधियों और शहद उत्पादन पर नजर रखेंगे। स्मार्टफोन या कंप्यूटर पर डाटा प्राप्त करके किस आसानी से छात्रों की निगरानी कर सकता है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और बिग डाटा के माध्यम से मधुमक्खियों के स्वास्थ्य और उनकी आबादी में कमी का विश्लेषण किया जा सकता है। रोबोटिक बीकीपिंग और ऑटोमेशन उपकरणों के उपयोग से मधुमक्खियों की देख भाल, शहद निकालना तथा छत्तो की सफाई सरलता से की जा सकती है। सस्टेनेबल और जैविक शहद उत्पादन को बढ़ावा मिलेगा, जिससे किसानों को अधिक मुनाफा होगा। ब्लॉकचेन तकनीक के उपयोग से शहद की गुणवत्ता और शुद्धता की गारंटी मिल सकती है। उपभोक्ता अपने शहर की उत्पत्ति की नर्जन कर सकेंगे जिससे नकली शहर की समस्याएं कम हो जाएगी। भविष्य में यह एक क्रांतिकारी बदलाव लाएगा। यह न केवल किसानों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाएगा अपितु मधुमक्खियां के संरक्षण में भी कई मायनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। तकनीकी और परंपरागत ज्ञान के समावेश से मधुमक्खी पालन अधिक उपयोगी, लाभदायक और टिकाऊ बन सकता है।

अतः स्मार्ट एपिकल्चर, पारंपरिक मधुमक्खी पालन का भविष्य है, जो कि वैज्ञानिक नवाचारों और डिजिटल प्रौद्योगिकीयों का उपयोग करके इसे अधिक कुशल और लाभकारी बनाता है।

मधुमक्खी पालन एक सफल व्यवसाय

सुनीता कुमारी, अक्षय चित्तौड़ा, बनवारी लाल जाट एवं विवेक राठौर
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

मधुमक्खी पालन का महत्व : मधुमक्खी पालन बेरोजगार नवयुवको को रोजगार उपलब्ध कराता है। मधुमक्खी पालन से एक ओर शहद मिलता हैं वही दूसरी ओर मधुमक्खीयों द्वारा किये गये परागण से 20–25 प्रतिशत अतिरिक्त उपज मिलती हैं जिससे बेरोजगारी की समस्या समाधान मिलने के साथ अच्छी उपज मिलने से कृषकों के जीवन स्तर में भी सुधार आता हैं। मधुमक्खी पालन के उत्पादों जैसे मोम से क्रीम, पॉलिस, कार्बन कागज आदि एवं रायल जैली, प्रोपलिस एवं इसके डंक के जहर का ओषधीय महत्व हैं।

मधुमक्खी की प्रजातियाँ : चार प्रजातिया मुख्य रुप से हमारे यहा पायी जाती है।

1. चट्टानी मधुमक्खी (एपिस डोरसेटा) : यह आकार में बड़ी एवं गुस्सैल प्रवृत्ति होती है। अपने छत्ते चट्टानों, ऊँचे वृक्षों, पुरानी इमारतों एवं गन्ना उद्योगों के आस–पास बनाती है। इनका छत्ता आकार में बड़ा तथा सालभर में 35 किलाग्राम तक शहद प्राप्त कर सकते है। इस मधुमक्खी को पाला नहीं जा सकता है।

2. भारतीय मोना (एपिस इन्डिका) : यह शांत स्वभाव एवं घरों के आस–पास जहाँ पानी की सुविधा हो वहाँ पाई जाती है। इनके छत्ते आकार में छोटे तथा समानांतर कई छत्ते बनाती है। सालभर में 5–6 किलाग्राम किग्रा कि ग्रा तक शहद प्राप्त कर सकते है। आसानी से पाला जा सकता है। इस प्रजाति में डंक मारने / काटने की प्रवृत्ति भी कम होती है।

3. भृंग मधुमक्खी (एपिस फलारिया) : इसका आकार बहुत छोटा होता है। छोटे फूल वाली फसलों में यह आसानी से परागण का कम करती है। मसाले वाली फसले एवं रेगिस्तानी इलाकों में खेजड़ी में परागण का कम बहुत ही आसानी से करती है।

4. इटालियन मधुमक्खी (एपिस मेलिफेरा) : यह एक शांत प्रवृत्ति की घरेलु मधुमक्खी है जिसको इटली से लाया गया था। यह आकार में भारतीय मधुमक्खी के लगभग बराबर होती है। मधुमक्खी पालन में इस मधुमक्खी का अहम योगदान है। इस मधुमक्खी के एक छत्ते से 180 किलाग्राम किग्रा तक शहद प्राप्त कर सकते है। इटालियन मधुमक्खी हमारे यहा स्थापित हो गई हैं। इसका उपयोग व्यवसायिक तौर पर मधुमक्खी पालन में सबसे अच्छा हैं। इसकी एक कोलोनी का औसत शहद उत्पादन 30–40 किलाग्राम है।

मधुमक्खी कॉलोनी की संरचना : मधुमक्खी एक सामाजिक कीट हैं। इसकी एक कोलोनी में एक रानी, 500 से 1000 नर तथा 30,000 से 40,000 श्रमिक उपस्थित होते है।

मधुमक्खी का भोजन : मधुमक्खी अपने भोजन के लिए मकरंद और पराग एकत्रित करती है। इसके लिए वे विशेष फूलों पर भ्रमण करती है। मधुमक्खी पालन के लिए विशेष फूल हमेशा एक ही स्थान पर मिलना संभव नही होता हैं। इसलिए अभाव वाले स्थानों से इनको फूलों के लिए स्थानान्तरित करते हैं।

राजस्थान : सरसों राजस्थान का प्रमुख फसल है जिसके फूल लगभग 2–3 महिनें प्रचुरता से मिलते हैं। इसलिए राजस्थान में सरसों के खेत में 2–3 महिनों तक मधुमक्खी पालन आसानी से किया जाता है। इसके अतिरिक्त कटेरी, सौंफ, बाजरा, धनिया, तिल आदि के फूल यहां पर मिलते हैं।

हिमाचल प्रदेश : खेर, शीशम, सेव, अमरुद, रीठा, तून आदि

उत्तर प्रदेश : शीशम, कपास, लीची, सेब, आम, इमली, सेमल, माइकर आदि

हरियाणा : अरहर, तोरिया, तारामीरा, कपास, करंज, बरसीम, बेर आदि

मधुमक्खी पालन की विधिः मधुमक्खी के कृत्रिम पालन को एपीकल्चर कहा जाता है। प्राचीन विधि के अनुसार मधुमक्खियों के प्राकृतिक छत्तों से शहद प्राप्त करने के लिए धुँआ करके मक्खियों को उडा दिया जाता हैं और छत्तों को निचोड कर शहद इकट्ठा किया जाता था। धीरे–धीरे इस विधि को एक वैज्ञानिक विधि द्वारा बदल दिया गया हैं। इस प्रकार की विधि के अन्तर्गत मधुमक्खी को कृत्रिम तरीके से पाला जाता हैं, फिर शहद इकट्ठा किया जाता हैं। इसे ही मधुमक्खी पालन कहा जाता हैं तथा वर्तमान में इसने एक बडे उद्योग का रुप ले लिया हैं। कृत्रिम रुप से मधुमक्खी पालने के लिए निम्न वस्तुओं की आवश्यकता होती है :–

मोनाग्रह : यह लकडी के सन्दूक जैसा होता हैं। जिसमें दो खण्ड होते है। उपर का 1/4 खण्ड मधुखण्ड तथा 3/4 खण्ड शिशु खण्ड कहलाता हैं। दोनो भागों के बीच में एक जाली लगी होती हें। जिससे श्रमिक एक दूसरे खण्ड में आ जा सकते हैं। परन्तु रानी नही आ सकती हैं। लकडी का यह मोना ग्रह चारों तरफ से बन्द रहता है। केवल निचले तल पर एक छोटा छिद्र होता हैं जिसमें एक बार में केवल एक मधुमक्खी अन्दर या बाहर आ सकती हैं। शिशु खण्ड में 4 या 5 इंच की दूरी पर समानान्तर खडी दशा में लकडी के तख्ते लटका दिये जाते है एवं इन पर तार से पोला आधार लगा देते हैं। पोला आधार में मोम निर्मित षठ भुजाकार छोटे– छोटे कोष होते है।

मोनाग्रह के अलावा अन्य आवश्यक वस्तुऐं पोला आधार, धूमण यन्त्र, दस्ताने, लोहे का खुरचना, केप, मधुमक्खी निष्कासन उपकरण, चाकू ब्रुश आदि

मधुमक्खी को पकडना व पालना :– कृत्रिम छत्तें में पालने के लिए जिस समय मधुमक्खिया प्रवास में होती है तो उन्हे पकड कर पाल लेते है, इसके लिए कपडे की एक छोटी सी टोपी के अन्दर शहद लगा कर टांग देते है जिससे वे इसके अन्दर बैठ जाती है। शाम के समय इन्हें लाकर शिशु खण्ड में छोड देते हैं। इनके खाने के लिए कुछ समय के लिए शर्बत रख देते है। वैसे आजकल बहुत से मधुमक्खी पालन केन्द्र है जहां से मंगवा कर पाला जा सकता है। जिस

समय भोजन की कमी हो तो कृत्रिम भोजन शर्बत(2 भाग चीनी, 1 भाग पानी) देना आवश्यक होता है। रानी माता प्रत्येक वर्ष बदल देनी चाहिए। रानी माता को बदलने के लिए पुरानी रानी को पकड कर निकाल देते हैं तथा नई रानी पकड कर वहीं का शहद लगाकर शिशुखण्ड में छोड देते है। इन छत्तों को ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जहां पर फूल के पौधे अधिक हो तथा पानी आदि का प्रबन्ध ठीक प्रकार से हो।

मधुमक्खी के प्रमुख शत्रु एवं रोग :

- मधु डाकू : यह मधु चूसता हैं।
- मोमी कीट : ये शलभ छत्तें में अण्डें देती है। जिनमें सुण्डियां निकल कर मोम को खाती है तथा मधु चूसती है एवं सुरंग बना कर कोषावस्था में बदल जाते हैं। इनसे बचने के लिए मोमग्रहों में छत्तों को खुला ना छोडें। छत्ते के छेद को छोटा कर देना चाहिए।
- चींटियॉ : ये मधुमक्खी को नुकसान करती हैं। इसके लिए छत्ते के स्टेण्ड को मिट्टी के बर्तन में पानी भरकर रखना चाहिए।
- नोसेमा रोग इससे मधुमक्खियों में पेचिश की तरह बिमारी हो जाती है। इसके नियन्त्रण के लिए सफाई की अच्छी व्यवस्था रखनी चाहिए।
- एकरीन : यह बिमारी एक सूक्ष्म मकडी के कारण होती हैं। यह मकडी मधुमक्खी की श्वास नलिकाओं में प्रवेश कर तरल पदार्थों को खाती हुई प्रजनन करती है। जिससे मोनो की मृत्यु होने लगती है। इसके लिए सफाई की अच्छी व्यवस्था रखनी चाहिए।

उपरोक्त बीमारियों से बचनें के लिए मधुमक्खी पालन केन्द्रों व कृषि विज्ञान केन्द्रों से तकनिकी सलाह ली जा सकती है।

मधुमक्खी पालन हेतु महत्वपूर्ण तथ्य :

- जहां मधुवाटिका स्थापित करनी है उसके एक दो किलोमीटर तक प्रचूर मकरंद तथा पराग पैदा करने वाली वनस्पतियॉ / फसलें होनी चाहिए।
- आसपास के क्षेत्र में शुद्व जल उपलब्ध होना चाहिए।
- मधुमक्खियों में होने वाली बीमारियों एवं कीटों से रक्षा करने में तत्परता होनी चाहिए।
- सहनशीलता एवं जोखिम उठाने की क्षमता आवश्यक है।
- मधुमक्खी पालन हेतु खादी एवं ग्रामोद्योग, उद्यान विभाग, मण्डी समितियां, कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केन्द्रों और कृषि संस्थानों से अनुदान, प्रशिक्षण एवं तकनिकी मार्गदर्शन के लिए सम्पर्क करना चाहिए।
- मोन पालन हेतु विषम परिस्थितियों में कृत्रिम भोजन एवं भेजन को देने की विद्यियों की जानकारी आवश्यक हैं। कृत्रिम भोजन में मुख्य रुप से चीनी का शर्बत, पराग आदि होता है।
- मोन पालन शुरु करने के लिए सबसे अच्छा समय बसन्त या पतझड का आरम्भ है।
- मोन पालको को मोन पालन प्रारम्भ करने से पहले अपने क्षेत्र में विभिन्न ऋतुओं में पुष्प रस(मकरंद) एवं पराग देने वाले पौधों के बारे में जानकारी आवश्यक है।
- मधुमक्खी पालन हेतु ग्रीष्म, वर्षा एवं शीत ऋतुओं में प्रबन्ध के बारें में तकनिकी जानकारी होनी चाहिए।

मधु के उपयोग :

शहद मनुष्य के प्राकृतिक मीठे के रुप में रोटी और मिठाई एवं केन्डी बनाने में प्रयोग किया जाता है। यह मधुमेह के रोगियों के लिए मुख्य भोजन माना जाता है। कठिन शारीरिक व्यायाम करने वाले मनुष्यों के लिए यह एक लाभदायक भोज्य पदार्थ है। शहद का उपयोग आयुर्वेदिक एवं यूनानी पद्वतियों में खॉसी की रोकथाम, सर्दी, बुखार, रक्तक्षीणता एवं रक्त शुद्विकरण इत्यादि में किया जा सकता है।

जैविक एजेंट और जैविक फफूंदनाशकों के उपयोग द्वारा कृषि रक्षा प्रबंधन

रोहिताश कुमार[1], आर. पी. घासोलिया[2] एवं अर्चना कुमावत[1]

[1]विद्यावाचस्पति छात्र, [2]आचार्य , श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

कृषि रक्षा प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य फसलों को कीटों, रोगजनकों और अन्य हानिकारक कारकों से बचाना है। रासायनिक कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से पर्यावरणीय असंतुलन, मृदा गुणवत्ता में गिरावट और मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड सकता है। इसके विकल्प के रूप में जैविक एजेंटों और जैविक फफूंदनाशकों का उपयोग किया जा सकता है, जो प्रभावी होने के साथ–साथ पर्यावरण के लिए भी सुरक्षित हैं।

जैविक नियंत्रण विधि में प्राकृतिक शत्रु, लाभकारी सूक्ष्मजीव और जैविक उत्पादों का उपयोग कर कीटों, रोगों और खरपतवारों को नियंत्रित किया जाता है। यह न केवल जैव विविधता को बनाए रखता है, बल्कि मिट्टी की उर्वरता को भी संरक्षित करता हैं।

जैविक एजेंटों का उपयोग

जैविक एजेंट वे सूक्ष्मजीव या प्राकृतिक शत्रु होते हैं जो कीटों और रोगजनकों को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। इनका उपयोग निम्नलिखित रूपों में किया जाता है

1. **परजीवी और परभक्षी कीट :** ट्राइकोग्राम्मा, लेडीबर्ड बीटल और क्राइसोपरला जैसे परभक्षी कीट हानिकारक कीटों की आबादी को नियंत्रित करते हैं।
2. **बैक्टीरिया और फफूंद :** बैसिलस थूरिंजिएन्सिस (बीटी) और बीउवेरिया बेसियाना जैसे जैविक कीटनाशक प्रभावी रूप से कीटों को नष्ट करते हैं।
3. **वायरस न्यूक्लियोपॉलीहेड्रोवायरस और ग्रैनुलोवायरस :** विशिष्ट कीटों पर असर डालते हैं और अन्य जीवों के लिए सुरक्षित होते हैं।

जैविक फफूंदनाशकों का उपयोग

जैविक फफूंदनाशक प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवों से बनाए जाते हैं जो पौधों को फफूंदजनित रोगों से बचाने में सहायक होते हैं। कुछ प्रमुख जैविक फफूंदनाशक निम्नलिखित हैं

1. **ट्राइकोडमा** यह मृदा में रहने वाला फफूंद है, जो पौधों की जडों की सुरक्षा करता है और हानिकारक फफूंदों को नष्ट करता है।
2. **पायथियम और बैसिलस सबटिलिस** यह रोगजनक फफूंदों के खिलाफ कार्य करते हैं और पौधों को स्वस्थ रखते हैं।
3. **अजोस्पिरिलम और माइकोराइजा** ये लाभकारी सूक्ष्मजीव पौधों के पोषक तत्व अवशोषण को बढाते हैं और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढाते हैं।
4. **पेसिलोमाइसेस** यह एक प्रभावी जैविक कवकनाशी है, जो कीटों के कवकीय संक्रमण को नियंत्रित करता है।
5. **स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस** यह लाभकारी बैक्टीरिया पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढाता है और फफूंद जनित रोगों से बचाव करता है।

जैविक फफूंदनाशकों के उत्पाद

कुछ प्रमुख जैविक फफूंदनाशकों के व्यावसायिक उत्पाद जो किसानों द्वारा उपयोग किए जाते हैं

1. **ट्राइकोडर्मा आधारित उत्पाद**
   - ट्राइकोडर्मा विरिडे जैविक बीज उपचार और मृदा संशोधन के लिए
   - ट्राइकोडर्मा हार्जयिानम फफूंदजनित रोगों के नियंत्रण के लिए
2. **बैक्टीरिया आधारित उत्पाद**
   - बैसिलस सबटिलिस पौधों की जडों को सुरक्षा प्रदान करने और फफूंद संक्रमण को रोकने के लिए
   - स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस पर्णीय छिडकाव और मृदा उपचार के लिए
3. **माइकोराइजा आधारित उत्पाद**
   - एरबस्कुलर माइकोराइजा फंगी पौधों की पोषक तत्व अवशोषण क्षमता को बढाने के लिए
   - ग्लोमस इंट्रारैडिसेस मिट्टी में लाभकारी माइक्रोब्स को बढाने के लिए
4. **अन्य जैविक उत्पाद**
   - ब्यूवेरिया बेसियाना कीटों के जैविक नियंत्रण के लिए
   - मेटाराइजयिम एनीसोपली मिट्टी में रहने वाले कीटों को नियंत्रित करने के लिए
   - पैसिलोमाइसेस लीलासिनस नेमाटोड नियंत्रण के लिए

जैविक फफूंदनाशकों के कार्य करने की विधि

1. **प्रतिस्पर्धा द्वारा नियंत्रण** जैविक फफूंदनाशक लाभकारी सूक्ष्मजीवों को बढावा देकर हानिकारक फफूंदों की वृद्धि को रोकते हैं।
2. **प्रत्यक्ष परजीविता** कुछ जैविक फफूंदनाशक सीधे रोगजनक फफूंदों पर हमला करते हैं और उन्हें नष्ट करते हैं।
3. **प्रतिरक्षा प्रणाली का उत्तेजन** जैविक फफूंदनाशक पौधों की प्राकृतिक प्रतिरक्षा प्रणाली को सक्रिय करते हैं जिससे वे रोगों से लडने में सक्षम होते हैं।
4. **एंटीबायोटिक उत्पादन** कुछ जैविक फफूंदनाशक एंटीबायोटिक्स का उत्पादन करते हैं जो रोगजनकों को बढने से रोकते हैं।

लाभ

- पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में सहायक
- रासायनिक कीटनाशकों के दुष्प्रभावों से बचाव
- मृदा की उर्वरता में वृद्धि
- दीर्घकालिक कृषि स्थिरता
- कृषि उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा में सुधार
- लाभकारी जीवों की सुरक्षा
- जल और मृदा प्रदूषण की संभावना कम

अमरुद का अदृश्य शत्रु जड़-गाँठ सूत्रकृमि, मेलोइडोगायनी स्पीशीज

हेमराज गुर्जर[1], अकलेश गोचर[2] एवं बी. एस. चंद्रावत[1]

[1]सहायक आचार्य, [2]पी. जी. स्कोलर, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

अमरुद भारत का लोकप्रिय फल हैं। राजस्थान के सवाईमाधोपुर, बूंदी तथा कोटा जिलों में अमरुद की खेती व्यवसायिक स्तर पर की जा रही हैं। लेकिन जड़–गाँठ सूत्रकृमि के प्रकोप के कारण किसानों को भारी आर्थिक नुकसान का सामना करना पड़ रहा हैं।

रोग ग्रसित बगीचा

पौधशाला में तैयार पौधे

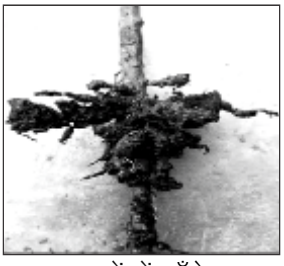

जड़ों में गाँठे

सूत्रकृमि (निमाटोड) सूक्ष्म जीव हैं, जो मृदा तथा पौधों पर परजीवी रूप में पाये जाते हैं। अग्रभाग में मुख–छिद्र होता हैं। इस भाग में एक मजबूत खंजर (स्टाईलेट) होती हैं जिसकी सहायता से दूसरी अवस्था, पौधों की पोषक जड़ो के अग्रभाग पर आक्रमण करती हैं जिसके कारण जड़े भूमि से पोषण लेना बंद कर देती हैं तथा जड़ो में शारीरिक विकार (हायपरट्रॉफी एवं हायपरप्लासिया) उत्पन्न हो जाता हैं।

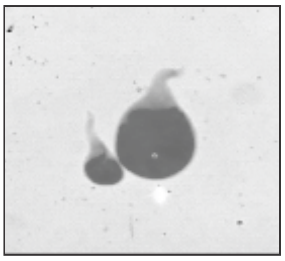
मादाएं

सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा निरिक्षण

दूसरी अवस्था

इतिहास :

भारत में सन 1901 में 'बारबर' वैज्ञानिक ने तमिलनाडु के देवला स्थान पर सर्वप्रथम चाय की जड़ों में जड़–गाँठ सूत्रकृमि को देखा। सन 1906 में 'बटलर' वैज्ञानिक ने केरला में काली मिर्च की जड़ों पर देखा, अय्यर वैज्ञानिक ने सन 1926 व 1933 में क्रमशः सब्जियों व अन्य फसलों पर देखा। नींबू की जड़ों पर संक्रमण सर्वप्रथम 'थिरूमाला राव' ने 1956 में आंध्रप्रदेश में देखा।

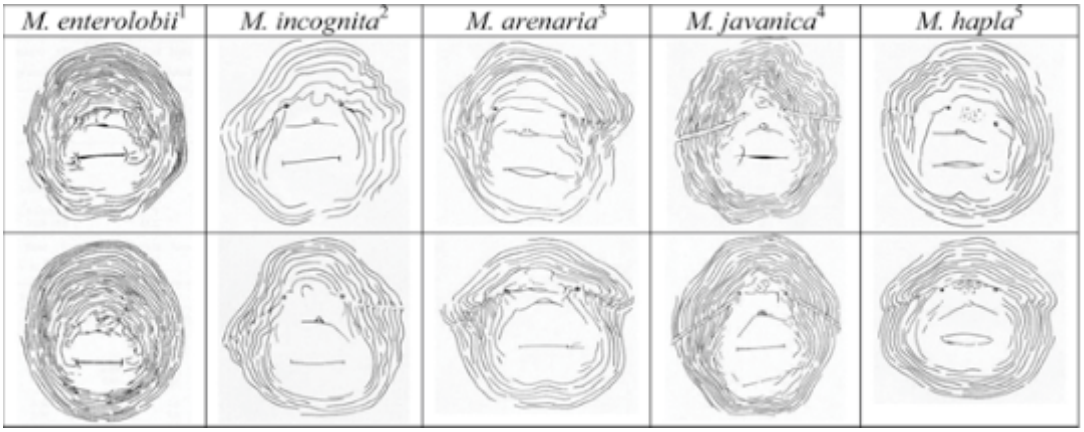

जड़–गांठ सूत्रकृमि की विभिन्न प्रजातियों के पेरिनिअल पेटर्न

आर्थिक नुकसान : जड़–गाँठ सूत्रकृमि द्वारा विश्व में विभिन्न फसलों पर लगभग 5 प्रतिशत हानि आँकी गयी है। देश में विभिन्न फसलों में लगभग 10–12 प्रतिशत हानि का आकलन है। सब्जियों में लगभग 50–90 प्रतिशत क्षति दर्ज की गयी है। धान में 16–32 प्रतिशत, तम्बाकू में 59 प्रतिशत, नींबू में 40–70 प्रतिशत, दलहनी फसलों में 8 प्रतिशत व कपास में 10–15 प्रतिशत हानि का आकलन है। विश्व में लगभग 63 प्रजातियाँ हैं, इनमें मुख्यतः पाँच प्रजातियाँ (एम. इनकागनिटा, एम. जवैनिका, एम. हैप्ला, एम. एरिनेरिया तथा एम. ग्रैमिनिकोला) बहुतायत में भारत में मिलती हैं। अमरुद में नुकसान पहुचाने वाली नई प्रजाति मिलैडोगाइन एंटरोलोबीई हैं। यह अमरुद में 60–80 प्रतिशत तक नुकसान पहूँचाती हैं।

लक्षण : पत्तियों में पीलापन, दिन के समय पौधों का मुरझाना, फूल व फल का देर से कम लगना, पौधों में बौनापन जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। जड़ों में गोल–गोल गाँठे बनी हुई दिखाई देती हैं।

प्रकोप : सूत्रकृमियों का सर्वाधिक प्रकोप संरक्षित खेती, सब्जियों, पौधशाला तथा उद्यानिकी फसलों में देखने को मिलता हैं। बलुई दोमट मृदाओं में तथा जहां नमी अधिक हो उन क्षेत्रों में अधिक होता हैं। नमी प्रिय सूक्ष्म जीव होते हैं।

जीवन चक्र : सूत्रकृमि द्वारा ग्रसित गाँठ में एक या एक से अधिक प्रौढ मादा सूत्रकृमि पाये जाते हैं। प्रत्येक मादा 300–350 तक अण्डे देती है। जीवन चक्र में छः अवस्थाएँ होती हैं जिसमें अंडा, वयस्क तथा चार त्वचा निर्मोचन होते हैं। प्रथम त्वचा निर्मोचन (J_1) अंडे के अन्दर ही पूर्ण हो जाता हैं। (J_2) अंडे से बाहर निकल कर पौधों की जड़ो पर आक्रमण करते हैं। तथा धीरे–धीरे (J_3) व (J_4) त्वचा निर्मोचन पूर्ण करते हुए व्यस्क मादा में बदल जाते हैं। इस तरह से अनुकूल परिस्थितियों में जीवन चक्र 28–32 दिन में पूरा हो जाता है।

सावधानियां एवं प्रबंधन :

पौधशाला में सूत्रकृमि प्रबंधन :

1. पौधे तैयार करने के लिए काम में ली जाने वाली मृदा को उपचारित करना चाहिए। मृदा को सूत्रकृमि की जाँच करवा कर ही काम में लेवें। क्योंकि एक बार सूत्रकृमि का प्रकोप हो जाने के बाद उसे नियंत्रित करना बहूत ही कठिन कार्य है।
2. नर्सरी में मिट्टी पर पतली पॉलीथिन डालकर मई–जून में 3–6 हफ्ते तक मिट्टी की सिकाई करना चाहिए जिससे मृदा में सूत्रकृमियों की उपस्थिति (इनोकुलम) को नियंत्रित किया जा सकता हैं।
3. उपकरणों, काम में लिया जाने वाला पानी, मृदा मिश्रण आदि को सूत्रकृमियों से संक्रमित माध्यम के संपर्क में नहीं आने देना चाहिए।
4. उपचारित की गयी मृदा में बराबर मात्रा में आधा टन (500 किलो), नीम की खल या एक टन (1000 किलो) वर्मीकम्पोस्ट या दो टन एफ.वाई.एम. (गोबर की खाद) में पर्प्यूरोसिलियम लिलासिनम, ट्राईकोडर्मा हर्जियानम, स्यूडोमोनास फ्लुओरेस्न्स प्रत्येक जैव कारक की 2 किलो मात्रा मिलाकर मिश्रण तैयार करे इस मिश्रण को 15 दिन तक छाया में संवर्धित करें तथा इसके बाद उपचारित मृदा में इस मिश्रण को बराबर मात्रा में मिलाकर थेलिओं में भरकर मूलवृन्त तैयार करें।

5. काम में ली जाने वाली मृदा में कार्बोफुरान (फ्यूराडान 3जी) या निमिटज (फ्लुएन्सल्फोन 2% जी.आर.) मिलाकर मृदा को उपचारित करके पॉलीथिन की थेलिओं में भरकर मूलवृन्त तैयार करें। बुवाई करने के बाद वेलम प्राइम (फ्लुओपाईराम 34.48 एस.सी.) अंकुरण के 40–45 दिन बाद 0.5 एम.एल. मात्रा प्रति लीटर पानी में मिलाकर मृदा को सिंचित करें तथा 3 माह के अन्तराल पर दोहराए व कम्पनी की सिफारस अनुसार हीं उपयोग में लेवें।
6. पौधे खरीदते समय दो–चार पौधों से थेलिओं को हटाकर पानी से धोकर जाँच कर लेना चाहिए कि गांठे तो नहीं बन रही हैं। यदि गांठे बनी हुयी हैं तो ऐसे पोधों का चुनाव नहीं करें तथा ऐसे पौधों को नहीं बेचना चाहिए।

बगीचों में सूत्रकृमि प्रबंधन :

1. बगीचा स्थापित करने से पहले उस खेत की मृदा में सूत्रकृमि की जाँच करवाए।
   मई–जून माह में उचित आकार के गड्ढे (1 x 1 x 1 मीटर) खोदकर धूप में तपने देना चाहिए सिफारिस अनुसार खाद, उर्वरक एवं दवाइयों का उपयोग कर गड्ढों को भरना चाहिए।
2. सूत्रकृमि ग्रसित पौधों को उपयोग में नहीं लेना चाहिए। पौधे खरीदते समय दो–चार पौधों की थेलिओं को हटाकर पानी से धोकर जाँच कर लेना चाहिय की उनकी जड़ो में गांठे तो नहीं हैं।
3. काम में लिए जाने वाले उपकरणों, सिंचाई पानी, अंतर फसल आदि को सूत्रकृमियों से संक्रमित माध्यम के संपर्क में नहीं आने देना चाहिए। इनकी समय–समय जाँच करते रहें तथा उपकरणों को उपचारित करते रहना चाहिए।
4. थावले की मेड़ पर गेंदे के पौधे को लगाने से सूत्रकृमियों की संख्या में कमी की जा सकती है, गेंदे से कुछ ऐसे तत्व (एल्फा टरथेनाईल) निकलते हैं जो सूत्रकृमियों को अरुचिकर लगते हैं।
5. रोपण करते समय आधा टन (500 किलो), नीम की खल या एक टन (1000 किलो) वर्मीकम्पोस्ट या दो टन एफ.वाई.एम. (गोबर की खाद) में पर्प्यूरोसिलियम लिलासिनम, ट्राईकोडर्मा हर्जियानम, स्यूडोमोनास फ्लुओरेस्न्स प्रत्येक जैव कारक की 2 किलो मात्रा मिलाकर मिश्रण तैयार करे इस मिश्रण को 15 दिन तक छाया में संवर्धित करें तथा इसकी मात्रा, नीम मिश्रण 250 ग्राम या वर्मीकम्पोस्ट मिश्रण 500 ग्राम या एफ.वाई.एम. (गोबर की खाद) का मिश्रण 3 किलो गड्ढे में मिलाए। 6 माह के अन्तराल पर इसे दोहराए।
6. रासायनिक उपचार हेतु प्रति गड्ढे में कार्बोफुरान (फ्यूराडान 3जी) या निमिटज (फ्लुएन्सल्फोन 2% जी.आर.) मिलाकर पौध रोपण करें। 3 माह के अन्तराल पर इसे दोहराए व कम्पनी की सिफारस अनुसार हीं उपयोग में लेवें।
7. रोपण करने के 40–45 दिन बाद वेलम प्राइम (फ्लुओपाईराम 34.48 एस.सी.) 1.0 एम.एल. मात्रा 5.0 लीटर पानी में मिलाकर गड्ढे में मृदा को सिंचित करें तथा 3 माह के अन्तराल पर इसे दोहराए व कम्पनी की सिफारस अनुसार हीं उपयोग में लेवें।

नींबू वर्गीय फलों में जड़ - गाँठ सूत्रकृमि की समस्या एवं वैज्ञानिक समाधान

अकलेश गोचर[1] एवं हेमराज गुर्जर[2]

[1]पी.जी. स्कॉलर, [2]सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

नींबू (साइट्रस लिमोन) भारत में व्यापारिक रूप से उगाई जाने वाली एक लोकप्रिय फल है। भारत में आम और केले के बाद नींबू वर्गीय फलो में तीसरी सबसे महत्वपूर्ण फल वाली फसल है। नींबू रूटेसी परिवार का सदस्य होता है। तथा देश में उगाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के खट्टे फलों में मेंड़ेरियन संतरा (सी. रेटिकुलाटा), मीठा संतरा (सी. साइनेंसिस) और एसिड लाइम (सी. ऑरेंटिफोलिया) शामिल है। नींबू भारत में व्यावसायिक रूप से राजस्थान, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, सिक्किम, पंजाब और असम के शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में उगाया जाता है। भारत में नींबू वर्गीय फलों का क्षेत्रफल 94.70 हजार हेक्टेयर है तथा औसत उत्पादकता 7.60 मिलियन टन / हेक्टेयर है, तथा राजस्थान में नींबू का क्षेत्रफल 2.78 हेक्टेयर है। राजस्थान में नींबू वर्गीय फलों का सर्वाधिक उत्पादन कोटा, बूंदी, बारा व झालावाड़ जिलों में होता है। तथा कुछ क्षेत्रों जैसे दौसा, उदयपुर, अजमेर, नागौर, हनुमानगढ़ व श्रीगंगानगर के किसान भी नींबू वर्गीय फलों को उगाने में रूचि दिखा रहे है परन्तु किसानों के सामने सबसे बड़ी चुनौती सूत्रकृमि की आ रही है। जो की एक सूक्ष्मदर्शी जीव हैं, जिसके शुरुआती दौर पर किसान इसे पहचान पाने में असफल रहता है। विभिन प्रकार के सूत्रकृमि जैसे, टायलेन्कुलस सेमीपेनेट्रांस, रैडोफोलस सिमिलिस, प्रैटिलेंकस कॉफी और मेलोइडोगाइन स्पीशीज आदि, इन सूत्रकृमियों में से सबसे ज्यादा नुकसानदायक सूत्रकृमि, टायलेन्कुलस सेमीपेनेट्रांस और मेलोइडोगाइन स्पीशीज हैद्य टायलेन्कुलस सेमीपेनेट्रांस नींबू वर्गीय फलों का महत्वपूर्ण सूत्रकृमि हैं, जो की नींबू वर्गीय फलों में "साइट्रस डिक्लाइन" नामक बीमारी का कारण होता है। तथा मेलोइडोगाइन स्पीशीज सभी प्रकार के फलों, सब्जियों और अनाजों में लगने वाला सूत्रकृमि है। यह सूत्रकृमि जड़ो व मिट्टी में पाए जाते है, पौधे की जड़ वाले भाग की मिट्टी को 15 से 20 सेंटीमीटर नीचे तक खुदाई करने पर जड़ो में गाँठे दिखाई देती है। यह सूत्रकृमि मुख्य रूप से सूक्ष्म, गोलकर्मी, बेलनाकार, खण्डहिन् व रंगहीन जीव होते है, जो की सामान्य आखों से दिखाई नही देते है, भारत में मेलोइडोगाइन सूत्रकृमि की अलग–अलग स्पीशीज पाई जाती है जैसे, एम. ग्रैमिनिकोला, एम. जावानिका, मेलोइडोगाइन हेप्ला, एम. इन्कोगनित्ता और एम. अरेनेरिया जिनमे से राजस्थान में सर्वाधिक दो स्पेसिस एम. इन्कोगनित्ता और एम. जावानिका सर्वाधिक नुकसानदायक होती है

जड़–गांठ सूत्रकृमि का इतिहास :

जड़–गांठ सूत्रकृमि को सबसे पहले इंग्लेंड के वैज्ञानिक बरकले ने सन 1855 में खीरे के पौधे में देखा, इसके बाद इस सूत्रकृमि को अन्य वैज्ञानिको के द्वारा रिकॉर्ड किया गया, सन 1879 में कोर्नु नामक वैज्ञानिक ने इस सूत्रकृमि को एंगुल्लुला मैरियोनी का नाम दिया तथा मुलर नामक वैज्ञानिक ने 1884 में हेटेरोडेरा रेडिकिकोला नाम दिया। और गोल्डी नामक वैज्ञानिक ने सन 1887 में मेलोइडोगाइन एक्जिगुइया नाम दिया, तथा बाद में हेटेरोडेरा से मेलोइडोगाइन जीनस को अलग किया गया। भारत में पहली बार बार्बर नामक वैज्ञानिक के द्वारा सन 1901 में इस सूत्रकृमि को केरला में चाय के बागानों में देखा गया।

जड़–गांठ सूत्रकृमि के द्वारा होने वाला आर्थिक नुकसान :

जड़–गांठ सूत्रकृमि के द्वारा पुरे विश्व में सभी प्रकार की बागवानी फसलों, सब्जियों, फलों, संरक्षित खेती, वनीय फसले तथा सस्य विज्ञान फसले जैसे द्लहनीय फसले, अनाज वाली फसले तथा तिलहन फसलों में जड़–गांठ सूत्रकृमि के द्वारा बहुत अधिक नुकसान होता है। विश्व में जड़–गांठ सूत्रकृमि के द्वारा 5% की हानि का अनुमान लगाया गया है। तथा भारत में 10–20% की हानि का अनुमान लगाया गया है

सूत्रकृमि के द्वारा सर्वाधिक हानि सब्जियों में इस सूत्रकृमि के द्वारा 50–90% हानि का अनुमान लगाया गया है। टमाटर में 30.6–77.5%, बेंगन में 26.3–48. 66% भिन्डी में 20–90.9%, केले में 39%, नींबू में 40–70%, अदरक में 29.6–74%, कपास में 16–41%, धान में 21%, मूंगफली में 13–50% त्तथा द्लहनीय फसलों में 8% की हानि होने का अनुमान लगाया गया है

रोग ग्रषित पौधा

रोग ग्रषित जडें

विश्व भर में मेलोइडोगाइन की 4 प्रजातिया दर्ज की गईं एम. इन्कोगनिटा, एम. जावानिका, एम. आरनेरिया और एम. हेप्ला ये चारों प्रजातिया विश्व भर में आर्थिक नुकसान का कारण मानी गयी है, ये पहली तीन प्रजातिया विश्व भर में व्यापक रूप से फेली हुई है तथा अंतिम प्रजाति एम. हेप्ला, शीतोष्ण इलाकों में आर्थिक नुकसान का कारण होती है तथा अलग–अलग फसलो में मेलोइडोगाइन की अलग–अलग प्रजातिया पाई जाती है। जिनमे से मेलोइडोगाइन जवानिका एवं इंडिका नींबू के लिए नुकसानदायक होती है।

यह सूत्रकृमि सर्वाधिक बलुई दोमट मृदा में पाया जाता है तथा ये उन क्षेत्र में अधिक पाया जाता हें, जिस स्थान की मृदा में नमी की मात्रा अधिक होती हें। ये सूत्रकृमि सर्वाधिक सक्रिय बरसात के मौसम में ये सूत्रकृमि अपनीं प्रजनन संख्या को बड़ा लेता है।

जड़–गांठ सूत्रकृमि का जीवन चक्र :

जड़–गांठ सूत्रकृमि एक अंत परजीवी जीव है, जिसकी मादाये जड़–गांठ के अंदर उपस्थित रहती है, जड़–गांठ में एक या एक से अधिक मादाये उपस्थित रहती है। मादा का सिर वाला भाग स्वहनी उतकों की और तथा पूछ वाला भाग जड़ के एपिडर्मिस की और उपस्थित रहता है। मादा का सामान्य आकार गोल व नाशपाती की तरह होता है, मादा अपने शरीर से एक चिपचिपा प्रदार्थ (जिलेटेनिन) नामक प्रदार्थ का स्त्रावण करती है, जिसमे मादाये अंडे देती है, अंडे का निर्माण 10–12 दिन में पूर्ण होता है, एक मादा एक बार में 200–250 तक अंडे देती है

सूत्रकृमि का जीवन चक्र छह चरण में पूर्ण होता है, पहले चरण में अंडे, दुसरे चरण में जुवेनाइल्स (J_1) अंडे के अंदर ही निर्मोचन करते है, तीसरे चरण में जुवेनाइल्स (J_2) बनते है, जो की पौधे में सर्वाधिक नुकसान पहुँचाने वाला चरण है, यह जुवेनाइल्स (J_2) सूत्रकृमि अपनी सुकिका (स्टायलेट) के द्वारा पौधे की जड़ो को भेद कर पौधे की जड़ो में प्रवेश कर, पौधे से उपयुक्त पोषक तत्व प्राप्त कर अपनी वृद्धि को बढ़ाते है, जिसकी एक गांठ में 2–3 मादाये उपस्थित रहती है, जिससे पौधे की कोशिकाभिती फुल जाती है, तथा इस चरण में सूत्रकृमि अपना लिंग भेदन करते है, जिसमे मादा सूत्रकृमि V (वी) आकर के जननागं तथा नर सूत्रकृमि I (आई) आकार के जननागं प्राप्त करते है। इसके एक सप्ताह बाद जुवेनाइल्स (J_3) बनते है, इसके बाद जुवेनाइल्स (J_4) अवस्था बनती है। जुवेनाइल्स (J_3) व जुवेनाइल्स (J_4) पौधे को किसी प्रकार का नुकसान नही पहुंचाते है, तथा व्यस्क अवस्था में बदलकर मिट्टी में चले जाते है, तथा अपनी 3–4 पीढ़िया पूर्ण करने के बाद मर जाते है, सूत्रकृमि की अनुकूल वातावरण मिलने पर 30–35 दिन में अपना जीवन चक्र पूर्ण कर लेते है।

जड़–गांठ सूत्रकृमि का प्रबन्धन :

बगीचे में जड़–गांठ सूत्रकृमि का प्रबन्धन :

1. नया बगीचा स्थापित करने से पहले उस स्थान की मिट्टी को जाँच के लिए किसी सूत्रकृमि प्रबन्धक प्रयोगशाला में भेजे, ताकि सूत्रकृमि की जनसंख्या का पता लग सके, तथा उस मिट्टी में सूत्रकृमि का नियन्त्रण किया जा सके।
2. किसानों को बगीचा लगाने के लिए सूत्रकृमि रहित पौधों का चयन करना चाहिए, ताकि सूत्रकृमि की जनसंख्या बगीचे तक ना पहुँच पाये।
3. बगीचे में काम में लिए जाने वाले उपकरणों को अच्छी तरह से गर्म पानी में डुबो कर कुछ समय के लिए रख देना चाहिए, त्तथा सूत्रकृमि रहित उपकरणों का उपयोग करना चाहिए ।
4. बगीचे में पौधे की रोपाई करते समय 1 गुना 1 आकर के गड्ढे में 500 gm नीम की खाद, 1 kg गोबर की खाद तथा 500 gm केचुए की खाद में उपयुक्त जेव कारक की 50gm मात्रा मिलाकर गड्ढे में उपयोग करे, तथा एक प्रक्रम प्रत्येक वर्ष में दो बार दोहराते रहे।
5. बगीचे में रासायनिक उपचार हेतु, प्रत्येक गड्ढे में कार्बोफुरान या फ्लुएन्सुल्फोन 2%GR उपयुक्त मात्रा में मिलाकर पौधे की रोपाई करे।
6. बगीचे में पौधे की रोपाई से पहले पौधे की अच्छी तरह से जाँच करे तथा पौधे की जड़ को अच्छी तरह जांचे ताकी किसी तरह का कोई संक्रमन बगीचे में ना फैल सके।
7. यदि बगीचे में कोई पौधा सूत्रकृमि के संक्रमन में आ जाये तो उस पौधे को खेत से ऊखाड कर जला देना चाहिए, तथा पौधे वाले स्थान में सूत्रकृमि नियंत्रण का उपयोग करना चाहिए।
8. बगीचे में पौधा रोपण करने के 45–60 दिन बाद फ्लुओपाइरम 34.48 SC (वेलम प्राइम) की 10 ml / पौधे की मात्रा 10 लीटर पानी में अच्छी तरह घोल कर प्रत्येक पौधे में उपयोग करे।
9. किसानों को अपने बगीचे की मिट्टी तथा पौधे की जड़ की समय–समय पर जाँच करवाते रहना चाहिए, तथा वैज्ञानिको की सलाह के अनुसार ही उपयुक्त जैव कारक एवं रसायनों का उपयोग करना चाहिऐ।

ट्राइकोग्रामा कार्ड का कार्य एवं महत्व

मनीषा शर्मा, सुमन चौधरी, पिंकी शर्मा एवं शंकर लाल शर्मा
सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

क्या है ट्राइकोग्रामा कीट

ट्राइकोग्रामा एक ऐसा अत्यंत सूक्ष्म मित्र कीट है जो अनेक प्रकार शत्रु कीटों को नष्ट करता है.यह एक अंडा परजीवी है जो शत्रु कीटों के अंडों में अपना अंडा देकर उन्हें नष्ट कर देता है। इस प्रकार यह एक जीवित कीटनाशक का काम करता है जो सिर्फ अपने लक्ष्य शत्रु पेट को मारता है वह मनुष्य और पशुओं के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव छोड़े बिना पर्यावरण को भी सुरक्षित रखता है।

ट्राइकोग्रामा का कार्य एवं महत्व

यह एक प्रकार का अंड परजीवी मित्र कीट है, जो शत्रु कीटों के अंडों में अपना अंडा देकर शत्रु अंडे को नष्ट कर देता है और शत्रु कीटों के अंडों से मित्र ट्राइकोग्रामा वयस्क बाहर आता है. यह वयस्क पुनः शत्रु कीटों के अंडों में अपना अंडा देता है. ट्राइकोग्रामा का जीवन चक्र बहुत छोटा होता है तथा एक फसल अवधि में उनकी अनेक पीढ़ियां पैदा हो जाती है. इस प्रकार इनकी संख्या शत्रु कीट के मुकाबले 9 गुना बढ़ जाती है तथा शत्रु कीटों को नष्ट करता रहता है.यह रसायन मुक्त कीट प्रबंधन का सटीक उपाय है इनमें शत्रु कीटों के अंडाशय अवस्था में ही नाश हो जाता है तथा फसल की रक्षा सुनिश्चित होती है. ट्राइकोग्रामा की वयस्क मादा एक दिन में 1–10 तक तथा पूरे जीवन काल में 190 अंडे देती है।

खेत में प्रयोग विधि

प्रयोगशाला में निर्मित ट्राइकोकार्ड, जिनमें एक कार्ड पर ट्राइकोग्रामा के 20 हजार अंडे होते है, को शाम के समय फसल में पत्तियों के नीचे इस तरह से लगाया जाता है कि ट्राइकोकार्ड पर सीधे धूप न पड़े. एक हेक्टेयर क्षेत्र में 2–5 कार्ड लगाए जाते है. इन कार्ड को पूरी फसल अवधि में 4–6 बार छोड़ने की जरूरत पड़ती है. इस कार्ड को अंडों से परजीवी निकलने की तिथि से एक दिन पहले खेत में लगा दे. ट्राइकोकार्ड लगाने के तीन दिन पहले और तीन दिन बाद किसी भी कीटनाशी का खेत में प्रयोग न करें।

कौन से कीटों के अंडों को नष्ट करता है

यह ट्राइकोग्रामा कीट लगभग सभी फसलों जैसे गन्ना, भिण्डी, बैंगन, चना, मटर, अरहर, धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, टमाटर, कपास आदि फसलों में तना छेदक, फल छेदक कीटों के अंडों को नष्ट करता है. इन परजीवी की अलग– अलग प्रजाति के माध्यम से इन शत्रु इल्लियों के अंडो को नष्ट किया जा सकता है।

ट्राइकोग्रामा कार्ड के लाभ

1. इसे प्रयोग करना बहुत ही सरल है और यह वातावरण के अनुकूल एवं सुरक्षित है।
2. मित्र कीटों को किसी भी प्रकार की हानि नहीं करता है।
3. यह अत्यधिक न्यून लागत पर शत्रु कीटों का प्रभावी नियंत्रण करता है। इसके लागत भी कीटनाशक की अपेक्षाकृत कम होती है। ट्राईकोग्रामा प्रजाति का कोई भी विषाक्त प्रभाव मनुष्यों पर नहीं पड़ता है।
4. इसके प्रयोग से लाभदायक कीटों को कोई नुकसान नहीं पहुंचता है और इसके प्रयोग से कीटों में इसके प्रति प्रतिरोधक क्षमता का विकास नहीं होता है।
5. इसे 5 से 10 डिग्री सेल्सियस ताप पर 30 दिनों तक रखा जा सकता है।

कुपोषण उन्मूलन में जैव-संवर्धित बाजरा किस्मों की भूमिका

एस. के. जैन, एस. के. शर्मा, वी. शर्मा एवं बी. एल. ढाका
श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

भारत में कुपोषण एक गंभीर समस्या बनी हुई है, जो मुख्य रूप से सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के कारण होती है। विशेष रूप से, लौह (आयरन) एवं जस्ता (जिंक) की कमी एनीमिया एवं अन्य स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म देती है। भारत में कुपोषण की स्थिति चिंताजनक है, जिसका प्रमाण 2024 के ग्लोबल हंगर इंडेक्स में देश की 105वीं रैंक एवं 27.3 के स्कोर से मिलता है। भारत में 15.5 प्रतिशत जनसंख्या को पर्याप्त कैलोरी नहीं मिल रही है। इसके अलावा, 5 वर्ष से कम आयु के 35.5 प्रतिशत बच्चे ठिगनेपन का शिकार हैं, जो दीर्घकालिक कुपोषण का संकेत देता है । बाल क्षीणता भी एक बड़ी समस्या बनी हुई है, जिसमें 18.7 प्रतिशत बच्चे अपनी ऊंचाई के अनुसार कम वजन के हैं, जो तीव्र कुपोषण को दर्शाता है और इस आयु वर्ग के बच्चों में रोग प्रतिरोधक क्षमता को कमजोर करता है। इस समस्या का समाधान पोषण से भरपूर खाद्य पदार्थों के माध्यम से किया जा सकता है। इस संदर्भ में, जैव–संवर्धित बाजरा किस्में एक प्रभावी समाधान प्रदान कर सकती हैं। बाजरा न केवल पोषक तत्वों से भरपूर होता है, बल्कि यह जलवायु अनुकूल फसल भी है, जो कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी अच्छी उपज देती है।

बाजरे का पोषण में महत्व

बाजरा भारत, विशेषकर राजस्थान में, एक महत्वपूर्ण फसल है, जो शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जाती है। वर्ष 2023–24 के दौरान भारत में बाजरा क्षेत्रफल 7.36 मिलियन हेक्टेयर था, जिसकी औसत उत्पादन क्षमता 10.67 मिलियन टन तथा उत्पादकता 1449 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थी। प्रमुख बाजरा उत्पादक राज्य राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, गुजरात और हरियाणा हैं, जो देश के कुल उत्पादन में 90 प्रतिशत योगदान देते हैं। राजस्थान लगभग 45 प्रतिशत योगदान देता है। यह अनाज पोषण से भरपूर है, जिसमें 60–70 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट होता है, जो ऊर्जा प्रदान करता है तथा रक्त शर्करा को नियंत्रित रखता है। इसमें 10–12 प्रतिशत प्रोटीन होता है, जो कोशिकाओं की वृद्धि एवं मरम्मत में सहायक होता है, तथा 8–12 प्रतिशत फाइबर पाया जाता है, जो पाचन स्वास्थ्य को सुधारने और कब्ज की समस्या को दूर करने में मदद करता है। बाजरा में कैल्शियम (40–45 मि.ग्रा. प्रति 100

ग्रा.), आयरन (3–8 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्रा.), मैग्नीशियम (137 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्रा.) एवं जिंक (2.4 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्रा.) प्रचुर मात्रा में होते हैं, जो हड्डियों की मजबूती, रक्त निर्माण और संपूर्ण शारीरिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। साथ ही, यह विटामिन बी कॉम्प्लेक्स तथा फोलिक एसिड का अच्छा स्रोत है, जो तंत्रिका तंत्र को मजबूत करने और ऊर्जा उत्पादन में सहायक होते हैं। जैव–संवर्धित बाजरा किस्में पारंपरिक किस्मों की तुलना में अधिक पोषक तत्व प्रदान करती हैं, जिससे यह कुपोषण को कम करने में सहायक हो सकती है। यह एक ग्लूटेन–मुक्त अनाज है, जो सीलिएक रोगियों और ग्लूटेन असहिष्णुता वाले लोगों के लिए उपयुक्त है। इसका ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होने के कारण यह मधुमेह रोगियों के लिए भी लाभकारी है। बाजरा जलवायु परिवर्तन के अनुकूल और सूखा–प्रतिरोधी फसल है, जो न्यूनतम कृषि इनपुट्स में भी अच्छी पैदावार देता है। इसका नियमित सेवन कुपोषण, मधुमेह और हृदय रोगों की रोकथाम में सहायक है, जिससे यह संतुलित आहार का एक आवश्यक हिस्सा बन जाता है। जैव– सुदृढ़ बाजरा किस्में विशेष रूप से उन क्षेत्रों में कुपोषण नियंत्रण में योगदान दे सकती हैं, जहां यह व्यापक समस्या है। जैव – सुदृढ़ किस्मों में आयरन, जिंक और अन्य आवश्यक सुक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा अधिक होती है, जिससे कुपोषण के कारण होने वाली बीमारियों, जैसे एनीमिया एवं कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली को कम किया जा सकता है।

प्रमुख जैव– सुदृढ़ बाजरा किस्में

श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर के अंतर्गत राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुरा, जयपुर ने दो प्रमुख जैव– सुदृढ़ संकर किस्में आरएचबी 233 एवं आरएचबी 234 विकसित की हैं । जो न केवल किसानों के लिए अधिक उत्पादक हैं, बल्कि इनमें पोषण मूल्य भी अधिक है।

आरएचबी 233

इस किस्म को विशेष रूप से उच्च लौह एवं जिंक के लिए विकसित किया गया है, जो इसे कुपोषण से निपटने के लिए प्रभावी बनाता है। यह संकर किस्म राजस्थान की जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल है तथा शुष्क तथा अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में भी अच्छा उत्पादन देती है। इस हाइब्रिड को वर्ष 2019 में भारत सरकार द्वारा अधिसूचित किया गया था। जिसकी औसत अनाज उपज 3157 किग्रा प्रति हेक्टेयर और सूखे चारे की उपज 73.7 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म 80 दिनों में परिपक्व हो जाती है तथा डाउनी मिल्ड्यू एवं ब्लास्ट रोगों के प्रति उच्च स्तर की सहनशीलता पाई जाती है। इसके साथ ही, इसमें लौह (83 पीपीएम) एवं जिंक (50 पीपीएम) की उच्च मात्रा पाई जाती है, जो इसे पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाती है। यह किस्म राष्ट्रीय स्तर के लिए अनुशंसित है, जिससे इसे विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

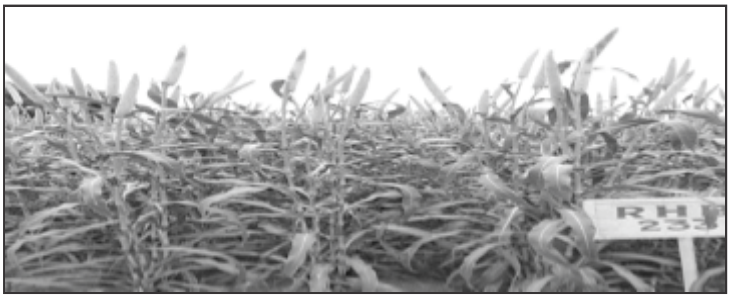

आरएचबी 234

यह एक जैव–सुदृढ़ द्वि–उद्देशीय संकर बाजरा किस्म है, जिसे वर्ष 2019 में भारत सरकार द्वारा अधिसूचित किया गया था। जिसकी अनाज उपज 3169 किग्रा प्रति हेक्टेयर तथा सूखे चारे की उपज 71.0 क्विंटल प्रति हेक्टेयर दर्ज की गई है। यह संकर 81 दिनों में परिपक्व हो जाता है तथा डाउनी मिल्ड्यू व अन्य रोगों के प्रति अधिक सहनशीलता रखता है। इसके पोषण मूल्य को देखते हुए, इसमें लौह (84 पीपीएम) तथा जिंक (41 पीपीएम) की उच्च मात्रा पाई जाती है। यह किस्म राष्ट्रीय स्तर पर अनुशंसित है, जिससे इसे विभिन्न कृषि परिस्थितियों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, भारत में डीएचएन–6, एचएचबी 299, एचएचबी 311, एएचबी 1200, एबीवी 04, फुले महाशक्ति, एएचबी 1269 और धनशक्ति जैसी अन्य पोषण–संवर्धित बाजरा किस्में भी विकसित की गई हैं जो कुपोषण से निपटने में एक प्रभावी समाधान हो सकती हैं। यह फसल न केवल पोषण प्रदान करती है, बल्कि किसानों के लिए भी लाभकारी सिद्ध हो सकती है। ये किस्में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन एवं अन्य सरकारी योजनाओं के तहत प्रोत्साहित की जा रही हैं, जिससे अधिक किसानों को इनका लाभ मिल सके। उचित नीतियों और जागरूकता अभियानों के माध्यम से इसे अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने की आवश्यकता है, जिससे भारत एक स्वस्थ और समृद्ध राष्ट्र की ओर अग्रसर हो सके। भविष्य में, जैव–संवर्धित बाजरा के उत्पादन और उपभोग को बढावा देने के लिए किसानों, वैज्ञानिकों, नीति निर्माताओं और आम जनता के बीच सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता है। इससे न केवल कुपोषण की समस्या हल होगी, बल्कि भारत के कृषि और खाद्य सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण सुधार होगा।

राजस्थान में दलहनी परिवार की महत्वपूर्ण व्यावसायिक फसल - ग्वार

वेद प्रकाश यादव, दिनेश कुमार यादव एवं बी. एल. कुम्हार
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

ग्वार (साइमोप्सिस टेट्रागोनोलोबा (एल)) जिसे आमतौर पर ग्वार के रूप में जाना जाता है लेगुमिनेसी(दलहनी) परिवार की महत्वपूर्ण फसल, बीज के रूप में उपयोग के लिए संसाधन कठिन परिस्थितियों में शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में सब्जी और चारा के रूप में उगाई जाती है। इस सूखा–प्रतिरोधी फली के बीज में उपस्थित गैलेक्टोमैनन पॉलीसेकेराइड, उद्योगों की विस्तृत श्रृंखला में उपयोग किया जाता है, जिसने इस अनाथ फसल को उच्च मूल्य वाली नकदी फसल बना दिया है। ग्वार रूपात्मक और कृषि संबंधी लक्षणों के लिए सीमित परिवर्तनशीलता एवं ग्वार फली किस्मों का संकीर्ण आनुवंशिक आधार और जैविक और अजैविक दोनों के कारण उपज में परिवर्तन की शुरुआत आनुवंशिक परिवर्तन से किस्मों में सुधार से हुई प्रगति एवं प्रसार प्रणाली से उपज बढ़ रही हैं।

1. उन्नत किस्मों की विशेषताए – ग्वार की उन्नत किस्मों का उन्नत बीजों के गुण निम्न प्रकार से हैं।

अ. सब्जी उत्पादन वाली किस्मों की विशेषताए –

1 **दुर्गा कचंन (एम 83)** – यह किस्म असिंचित और लम्बी (100–150 सेमी) पौधे, पत्तियाँ और फली युक्त होती हैं। पत्तियां चमकदार, चमकदार, गहरे हरे रंग की और दाँतेदार पत्ती मार्जिन के साथ होती हैं। इसकी फली मांसल, गैर–रेशेदार और सब्जी पकाने के लिए उपयुक्त है क्योंकि सब्जी की फसल के रूप में खेती के लिए सिफारिश की जाती है। राजस्थान राज्य में जायद (ग्रीष्म) और खरीफ़ का मौसम की फसल हैं। इस किस्म में फूल 40–45 दिन में जल्दी आते है। यह किस्म कम अवधि में, औसत 80–90 दिन में पक कर फसल तैयार हो जाती हैं। इसकी बीज दर 15–20 कि.ग्र./हैक्टेयर एवं हरी फली औसत उपज 7000–7500 कि.ग्रा./हैक्टेयर होती है। इस किस्म में जीवाणुओं पर्ण, झुलसा रोग के प्रति सहनशीलता, जड़ जलन रोग के प्रति सहनशीलता एवं कीट–पतंगो का प्रकोप कम होता है।

ब. ग्वार गम उत्पादन वाली किस्मों की विशेषताए –

1 **आर.जी.आर. 18–1 (कर्ण ग्वार–14)**– ग्वार की एक उच्च उपज देने वाली किस्म है जिसे आरजीसी–1038 और आरजीसी–1017 के बीच संकरण के बाद वंशावली प्रजनन विधि द्वारा विकसित किया गया है। यह किस्म आरजीसी 1066 (977 किग्रा/हेक्टेयर) की तुलना में 18.32 प्रतिशत की श्रेष्ठता के साथ अनाज औसतन उपज (1156 किग्रा/हेक्टेयर) देती है, इसके बाद एचजी 2–20 (1009 किग्रा/हेक्टेयर) की तुलना में 14.57 प्रतिशत अधिक उपज देती है। इस किस्म में बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट, रूट रोट और अल्टरनेरिया ब्लाइट (तालिका 3) जैसी प्रमुख बीमारियों के प्रति उच्च स्तर की प्रतिरोधक क्षमता है। यह सफेद मक्खी, लीफ हॉपर और एफिड जैसे कीट क्षति की कम घटित होती है। इसमें उच्च चिपचिपाहट प्रोफ़ाइल (3412 सीपी), के साथ प्रोटीन सामग्री (27.97 प्रतिशत), कार्बोहाइड्रेट सामग्री (42.90 प्रतिशत), एंडोस्पर्म सामग्री (32.26 प्रतिशत) और गोंद सामग्री (29.00 प्रतिशत) जैसे अच्छी गुणवत्ता वाले गुण हैं। किस्म के पौधे सीधे और शाखायुक्त, दांतेदार पत्ती के किनारों के साथ जन्मजात पत्ती वाले, गुलाबी फूल वाले होते हैं। बीज हल्के भूरे रंग के साथ हल्के काले रंग के और मध्यम मोटे (2.7–3.3 ग्राम/100 दाने) होते हैं। यह मध्यम अवधि में पकने वाली (95–96 दिन) किस्म है। अनाज और चारे की पैदावार और अच्छी गुणवत्ता वाले लक्षणों के साथ रोग प्रतिरोधक क्षमता को ध्यान में रखते हुए, आरजीआर 18–1 (करन ग्वार 14) को राजस्थान सहित भारत के सभी क्षेत्रों गुजरात, हरियाणा और महाराष्ट्र में खरीफ मौसम की वर्षा आधारित/सिंचित स्थितियों के लिए उगाया जा रहा है।

2 **आर.जी.सी. 12–1 (कर्ण ग्वार –1)** – ग्वार की इस किस्म की अधिसूचना,.2018 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा की गई है। यह किस्म कम अवधि में औसत 86 दिन में पकने वाली खरीफ के मौसम में बुवाई हेतु राजस्थान राज्य के लिए चिन्हित की गई है।यह किस्म दाने एवं चारे के लिए उपयुक्त है। बहुशाखित पौधे, कटाव वाली पत्तियां, मटमैला रंग व औसत मोटाई वाले दाने, वजन 3.2 ग्रम/100 दाने है। बीज दर 15–20 कि.ग्र./हैक्टेयर एवं औसत उपज 1058 कि.ग्रा./हैक्टेयर होती है। यह किस्म जीवाणुओं पर्ण, झुलसा रोग के प्रति सहनशील, जड़ जलन रोग के प्रति सहनशील एवं कीट–पतंगो का प्रकोप कम होता है। इसमें गोंद की मात्रा 29.50% पायी जाती है। मध्यम आकार का दाना एवं गोंद की प्रचुर मात्रा के कारण यह गोंद की औधोगिक इकाईयां के लिए उपयुक्त है। ग्वार गोंद की माँग विदेशाो में बहुतायत से होने के कारण इसका निर्यात करके देश में विदेशाी मुद्रा अर्जित की जा सकती है।

3 **आर.जी.सी.1033** – यह किस्म 95–106 दिन में पकने वाली है। राजस्थान का असिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं। इसके पौधें की लम्बाई 70 से 110 सेमी., अधिक शाखाऐं, रोऐंदार एवं गहरे हरे रंग की कटाव रहित पत्तियां, गुलाबी फूल, सफेद, गोल एवं मध्यम आकार के बीज (वजन 3.07 ग्रम प्रति 100 बीज)। जीवाणुज पर्ण झुलसा रोग के प्रति कुछ सहनशील एवं इसकी औसत उपज 1500–2500 कि.ग्रा/हैक्टेयर है।

4 **आर. जी. सी. 1066 (लाठी)** – यह पकने में 100–105 दिन लेती है तथा अशाखित, एक तने वाली किस्म, एकल फसल व अन्तर फसल पद्धति के लिए अनुकूलित, मशीन द्धारा काटने के लिए उत्तम, फलियों का पकाव नियत्रित फलियां काफी मात्रा में लगती है और फूल आने की अवधि 35 से 37 दिन 22–25 से.मी. अन्तर पंक्ति की दूरी पर उगाई जा सकती है। गोंद की मात्रा 31.32 प्रतिशत होती हैं। जायद एवं खरीफ बुवाई में समानरुप से उपयोगी होती हैं। जीवाणुज पर्ण झुलसा रोग के प्रति कुछ सहनशील एवं इसकी औसत उपज 1000–1500 कि.ग्रा/हैक्टेयर है।

5 **आर. जी. सी. 1038** – इसकी औसत उपज 1000–1500 कि.ग्रा/हैक्टेयर है। इसकी शाखित, कुछ सीमा तक प्रकाश के प्रति असंवेदनशील, ग्रीष्म व वर्षा ऋतुओं क लिए अनुकूल, भारी फलियां लगने के क्षमता तथा अच्छे उत्पादन वाली किस्म हैं इसकी पत्तियों के किनारे कटावदार, गुलाबी रंग के फूल। गोंद की मात्रा 30.79 से 32.60 प्रतिशत। जायद एवं खरीफ बुवाई में समानरुप से उपयोगी। जीवाणुज पर्ण झुलसा रोग के प्रति कुछ सहनशील हैं। यह 85–90 दिन की कम अवधि में पक कर तैयार हो जाती हैं।

6 **आर.जी.सी. 1003** – यह 90–95 दिन की कम अवधि में पक कर तैयार हो जाती हैं। यह मध्य अवधि में पकने वाली किस्म, मध्यम कद, दाने मध्यम आकार के (वजन 2.90 से 3.10 प्रति 100 बीज), पत्तियां गहरे रंग की, त्रिपत्तिये, गुलाबी फूल होते हैं। इसकी औसत उपज 1200–1500 कि.ग्रा/हैक्टेयर है।

स. पशु चारे वाली किस्मों की विशेषताए–

1. **बुंदेल ग्वार 2 –** इस किस्म को आई जी एफ आर आई, झांसी ने चयन द्वारा विकसित किया है। इसका हरा चारा, सूखा चारा और अपरिष्कृत प्रोटीन उपज क्रमशः 25.0–30.0, 5.0–6.0 और 0.12–0.15 टन/हे. के बीच है। सूखे पदार्थ के आधार पर लगभग 74प्रतिशत पाचनशक्ति के साथ इस किस्म में मवेशियों के लिए अच्छा स्वाद है। यह अनाज/गोंद उत्पादन के लिए भी श्रेष्ठ है। विविधता उर्वरकों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है और जीवाणु झुलसा के लिए मध्यम प्रतिरोधी है और रहने, सूखे और बिखरने के लिए सहनशीलता दिखाई है। इसे देश के संपूर्ण ग्वार उत्पादक क्षेत्रों में सामान्य खेती के लिए दोहरी प्रकार की ग्वार किस्म (चारा–सह–अनाज) के रूप में जारी और अधिसूचित किया गया है।
2. **बुंदेल ग्वार 3 –** यह किस्म आई जी एफ आर आई, झांसी द्वारा दुर्गापुरा, राजस्थान (आरजीसी–19–1) से एकत्रित स्वदेशी सामग्री से चयन के माध्यम से विकसित की गई थी। यह किस्म बैक्टीरियल ब्लाइट और ख़स्ता फफूंदी के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है, उर्वरकों के प्रति संवेदनशील है, बिखरने के लिए अत्यधिक सहिष्णु है और सूखे की स्थिति के लिए यथोचित विविधता प्रतिरोधी है।

खेत का चुनाव –

ग्वार की खेती सभी प्रकार की भूमियों में की जा सकती हैं। क्षारीय समस्या वाली भूमि या जिसमें पानी भरा रहता है,ग्वार नहीं बोना चाहिए। ग्वार की खेती सिंचित, या दोनों ही परिस्थितियों में की जा सकती है। वर्षा के बाद एक–दो जुताई व सुहागा लगाकर खेत तैयार कर लेना चाहिये ताकि घास फूस नष्ट हो जाये।

पलेवा या रौणी –

अगर समय पर वर्षा न हो तो जून के मध्य से जुलाई के प्रथम पखवाडे तक पलेवा देकर बुवाई करें। ग्वार के बाद दूसरी फसल न लेनी हो तो बुवाई जुलाई के अन्त तक भी की जा सकती है।

बीजोचार –

जेवाणु झुलसा रोग की रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व प्रति किलो बीज के 250 पीपीएम एग्रीमाईसीन या स्ट्रप्टोसाईक्लीन (दस लीटर पानी में एक ग्राम दवा) के घोंल में 1.5 घण्टे भिगोकर उपचारित करें। नये खेतों में जहां पहली बार ग्वार ली जावें, वहां बीज बोने से पहले राईजोबियम व पीएसबी जीवाणु खाद से उपचार अवश्य करें। शुष्क जड गलन व फंफूद जनित रोग की रोकथाम हेतु बीजों को कार्बेण्डेजिम 2 ग्राम प्रति किलों बीज से उपचारित करके बोयें।

बीज की मात्रा एवं बुवाई की विधि –

सिंचित क्षेत्र में बोने के लिए प्रति हैक्टेयर 15–20 किलो बीज पर्याप्त है। ग्वार की बुवाई ड्रिल से या दो पोरी (नायला) से करनी चाहिये और कतार से कतार की दूरी 30 सेमी रखनी चाहिये।

बुवाई का समय –

ग्वार बोने का उपयुक्त समय जून के अन्त से जुलाई के प्रथम पखवाडे तक है, यदि देर से वर्षा हो तो 30 जुलाई तक बुवाई कर सकते है।

खाद व उर्वरक –

ग्वार की अधिक उपज के लिए 0.6 टन वर्मी कम्पोस्ट अंतिम जुताई के समय प्रयोग करें। इस हेतु 20 किलो नत्रजन तथा 40 किलो फास्फोरस प्रति हैक्टेसी की दर से प्रयोग करे। इसके लिए लगभग 44 किलो यूरिया व 250 किलो सिंगल सुपर फास्फेट या 85 किलो डीएपी प्रति हैक्टेयर की दर से बिजाई से बुवाई के समय ऊर कर देवें। जहां फास्फोरस की मात्रा डी.ए.पी. उर्वरक द्वारा दी जा रही हो वहां 150 किलो जिप्सम प्रति हैक्टेयर बुवाई के साथ ऊर कर देवें। जिन क्षेत्रों में जस्ते की कमी हो वहां 20 किलो जिंक सल्फेट बुवाई के समय ऊर कर देवें अथवा 25 दिन की फसलावस्था पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0. 25 प्रतिशत बुझा चूना के घोल का छिड़काव करें।

मोटे गठान वाली मृदाओं वाले क्षेत्रों में असिंचित ग्वार फसल से अधिक उपज प्राप्त करने हेतु 10 प्रतिशत यूरिया (10 ग्राम यूरिया प्रति लीटर पानी) के घोल के दो छिड़काव, पहला फूल आने से पूर्व (35–45 दिन) व दूसरा फूल आने के बाद (55–60 दिन) पर करें। जिन क्षेत्रों में कैल्सियम भूमि या सोडियम युक्त पानी हैं (जैसे–कोलायत) वहां ग्वार की अच्छी पैदावार के लिए खडी फसल में 2 प्रतिशत हराकसीस़ 0.1 प्रतिशत साइट्रिक अम्ल के घोल के दो छिडकाव बुवाई के 25 व 35 दिन पर करें।

निराई – गुडाई–

यदि खेत में खरपतवार हो तो निराई–गुडाई करना आवश्यक है। यह क्रिया फसल की एक माह की अवस्था से पूर्व सम्पन्न कर देनी चाहिये। पहली निराई–गुडाई पौधे को अच्छी तरह जम जाने के बाद 20 से 30 दिन में ही कर दीजिए। गुडाई करते समय ध्यान रहे पौधों की जडें नष्ट ना हो। ग्वार की फसल में खरपतवार नियंत्रण हेतु फ्लूक्योरोलिन खरपतवार नाशी दवा की 190 ग्राम प्रति बीघा सक्रिय तत्व मात्रा का 200 लीटर पानी में घोल बनाकर बुवाई से पूर्व खेत की अन्तिम तैयारी के पहले छिडकाव कर भूमि में मिलावें, तब बुवाई करे। पत्तियों में बोई गई फसल में प्रथम सिंचाई के बाद एक से दो बार निराई–गुडाई करे।

सिंचाई प्रबन्धन –

ग्वार के लिए कुल 25 सेमी गहरे पानी की आवश्यकता होती है तथा ग्वार को आमतौर पर दो सिंचाई की जरूरत हैं। ग्वार बोने के तीन या चार सप्ताह बाद यदि वर्षा अच्छी ना हो और सम्भव हो तो सिंचाई अवश्य करनी चाहिये। यदि खरीफ मौसम में वर्षा का अन्तकाल ज्यादा हो एवं एक सिंचाई देने की सुविधा हो तो 50 प्रतिशत फूल आने की अवस्था (बुवाई के 45–50 दिन) सिंचाई की उपयुक्त अवस्था है। यदि ग्वार के बाद रबी की फसल लेनी हो तो 15 सितम्बर के पश्चात सिंचाई न करें क्यों इसके बाद सिंचाई करने से फसल पकने मे विलम्ब हो जाता है।

पौध संरक्षण –

कीट नियंत्रण –ग्वार की फसल में प्रायः तेला (जैसिड) सफेद मख्खी तथा चैंपा (एफिड), कातरा नामक कीट नुकसान पहुचाते है। इनकी रोकथाम हेतु निम्नलिखित रसायनों में से किसी एक का छिडकाव प्रति बीघा की दर से करे। पहला छिडकाव बिजाई के 30 दिन बाद फारमेथियान या मिथाईल डेमोटोन 20 इेसी या मैलाथियान या डाईमिथोएट 30 इेसी प्रति बीघा 60 लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करे। इस प्रकार दूसरा छिडकाव बुवाई के 60 दिन बाद फिर करें। झुलसा रोग की रोकथाम हेतु रोग के लक्षण दिखाई देते ही 2.5 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन एवं मैन्कोजेब 20 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी का छिडकाव करें। आवश्यकता होने पर एक बार फिर दोहरायें। चूर्णी फंफूद रोग नियंत्रण हेतु कैराथोन एलसी 10 मिली 10 लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करे या 6 किलो गन्धक के चूर्ण का प्रति बीघा भूरकाव करे।

कटाई व गुडाई –

बुवाई की परिस्थितयों के अनुसार फसल अक्टूम्बर के अन्त से नवम्बर तक पकती है। पूरी पकने पर कटाई करके फसल को सुखाने के लिए खेत में छोड दें या कटी हुई फसल खलिहान मे लाकर सूखा लें वर्षा हो जाने से या फसल अच्छी तरह न सूखने पर दाना काला पड जाता है। इसके लिए फसल को सूखाने में सावधानी बरतनी चाहिये।

उपज –

उन्नत विधियों से खेती करने पर ग्वार की उपज 15–20 क्विंटल प्रति बीघा ली जा सकती है। करीब इतनी मात्रा में चारा हो जाता है

कृषि में जड़ों का स्वास्थ्य और वृद्धि : उत्पादकता बढ़ाने के लिए स्मार्ट खेती समाधान

बसंत कुमार दादरवाल, मनोज कुमार शर्मा एवं डी. एल. बागड़ी
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

पौधों की जड़ों का स्वास्थ्य और वृद्धि फसलों की समग्र उत्पादकता को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक हैं। जड़ें पानी और पोषक तत्वों के ग्रहण, स्थिरीकरण और समग्र पौधे की शक्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मिट्टी के क्षरण, जलवायु परिवर्तन और पानी की कमी जैसी आधुनिक कृषि समस्याओं का सामना करते हुए, जड़ स्वास्थ्य को बढ़ाने वाली नवीन तकनीकें टिकाऊ कृषि प्रथाओं को सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। स्मार्ट खेती की तकनीकें, सेंसर, सटीक सिंचाई और एआई जैसी तकनीकों का लाभ उठाते हुए, किसानों द्वारा जड़ विकास और वृद्धि की निगरानी और सुधार करने के तरीके में क्रांतिकारी बदलाव आ रहा है।

जड़ों का स्वास्थ्य और वृद्धि का महत्व

जड़ें पौधे के अस्तित्व का आधार हैं, जो मिट्टी से पानी, खनिज और पोषक तत्वों को अवशोषित करने के लिए जिम्मेदार हैं। स्वस्थ जड़ें पौधों की उचित वृद्धि के लिए आवश्यक हैं, जो सीधे फसल की उपज को प्रभावित करती हैं। जड़ प्रणालियाँ कई पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होती हैं, जिनमें मिट्टी का प्रकार, पानी की उपलब्धता और पोषक तत्व का स्तर शामिल हैं। खराब जड़ स्वास्थ्य के परिणामस्वरूप पोषक तत्वों की कमी, खराब सूखा प्रतिरोध और रोगों और कीटों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ सकती है, जिससे अंततः फसल उत्पादकता कम हो सकती है । इसके अलावा, अपर्याप्त जड़ वृद्धि पौधों को उच्च तापमान या लंबे सूखा काल जैसे पर्यावरणीय तनावों के प्रति अधिक संवेदनशील बना सकती है

जड़ों के स्वास्थ्य और वृद्धि में चुनौतियाँ

किसानों को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जो जड़ों के स्वास्थ्य और विकास पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती हैं। कुछ प्रमुख चुनौतियों में शामिल हैं:

1. मृदा संघनन और अपरदन

मिट्टी का संघनन जड़ों के प्रवेश को सीमित करता है, पानी और पोषक तत्वों के अवशोषण को सीमित करता है। इसके अतिरिक्त, मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ में गिरावट से मिट्टी की संरचना में कमी हो सकती है, जिससे जड़ों का विकास कम हो सकता है। नष्ट हुई मृदाएँ जड़ों के वायुरोधीकरण में भी बाधा डालती हैं, जिसके परिणामस्वरूप पौधों की वृद्धि रुक जाती है।

2. जल तनाव

पानी की अधिकता और सूखा दोनों ही जड़ों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। जलमग्न मृदाओं में जड़ें ऑक्सीजन की कमी के कारण दम घुट सकती हैं, जबकि सूखा तनाव जड़ों द्वारा पानी के अवशोषण को कम कर देता है। जड़ों को इन तनावों के अनुसार अनुकूलित करना पड़ता है, लेकिन लंबे समय तक इस तनाव का सामना करने से स्थायी क्षति हो सकती है ।

3. पोषक तत्वों की कमी

पोषक तत्वों की अपर्याप्त उपलब्धता जड़ विकास को बाधित कर सकती है, जो फसल के स्वास्थ्य और उपज को प्रभावित करती है। नाइट्रोजन, फास्फोरस, और पोटेशियम जैसे आवश्यक पोषक तत्वों की कमी कमजोर, अविकसित जड़ों का निर्माण कर सकती है।

जड़ों के स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए स्मार्ट खेती तकनीकें

स्मार्ट खेती तकनीकों का उपयोग किसानों को जड़ों के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों को बेहतर तरीके से प्रबंधित करने के उपकरण प्रदान करता है। वास्तविक समय के डेटा और सटीक तकनीकों का उपयोग करके, किसान जड़ विकास से संबंधित समस्याओं को हल कर सकते हैं और कुल फसल उत्पादकता में सुधार कर सकते हैं। यहां कुछ प्रमुख स्मार्ट खेती तकनीकें हैं ।

1. मृदा स्वास्थ्य निगरानी

मृदा सेंसर की मदद से किसान वास्तविक समय में मृदा स्वास्थ्य की निगरानी कर सकते हैं, जिसमें नमी स्तर, पीएच और तापमान जैसे पैरामीटर शामिल हैं। ये सेंसर मृदा पर्यावरण और इसके जड़ वृद्धि पर प्रभाव को बेहतर तरीके से समझने में मदद करते हैं। उदाहरण के लिए, Sencrop जैसे स्मार्ट मृदा सेंसर किसानों को मृदा की नमी और तापमान के बारे में डेटा प्रदान करते हैं, जिससे सटीक सिंचाई संभव होती है और पानी की अधिकता या सूखा तनाव से बचाव होता है ।

2. सटीक सिंचाई

स्वस्थ जड़ वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए सबसे प्रभावी तरीकों में से एक सटीक सिंचाई है, जो पानी की सही मात्रा को सीधे पौधों की जड़ क्षेत्र में पहुंचाता है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली, जो अक्सर स्मार्ट सेंसर के साथ एकीकृत होती है, बेहतर जल प्रबंधन की अनुमति देती है और अधिक सिंचाई से बचाव करती है, जो अन्यथा जलमग्न मृदाओं में जड़ों को दम घुटने का कारण बन सकती है। ये प्रणाली यह सुनिश्चित करती है कि जड़ों को निरंतर पानी की उपलब्धता मिले, यहां तक कि जल–स्तर की कमी वाले क्षेत्रों में भी।

3. स्मार्ट उर्वरकों के साथ पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरक जड़ों के विकास के लिए पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करने के लिए आवश्यक होते हैं। स्मार्ट उर्वरक, जो मृदा में पोषक तत्व स्तरों का ट्रैक करने वाले सेंसर के साथ होते हैं, सटीक आवेदन की अनुमति देते हैं। यह सुनिश्चित करता है कि जड़ों को वही पोषक तत्व मिलें जो उन्हें आवश्यक होते हैं, और अधिक उर्वरक आवेदन से बचाव होता है, जो जड़ों और पर्यावरण दोनों के लिए हानिकारक हो सकता है। नाइट्रोजन प्रबंधन के लिए स्मार्ट सेंसर जैसी तकनीकें (जैसे Yara का N–Sensor) किसानों को नाइट्रोजन की सही मात्रा लागू करने में मदद करती हैं, जिससे जड़ वृद्धि को बढ़ावा मिलता है और पोषक तत्वों की बर्बादी कम होती है।

4. ड्रोन और रिमोट सेंसिंग तकनीकें

उन्नत इमेजिंग सिस्टम से लैस ड्रोन का उपयोग पौधों के स्वास्थ्य की निगरानी के लिए किया जा सकता है। रिमोट सेंसिंग तकनीकें जड़ों की मजबूती पर जानकारी प्रदान करती हैं, पौधों के स्वास्थ्य की छवियां कैप्चर करके और पोषक तत्वों की कमी या बीमारियों जैसे तनाव के शुरुआती लक्षणों का पता लगाकर। ये तकनीकें किसानों को जल्दी से उन समस्याओं की पहचान करने में मदद करती हैं जो जड़ विकास को प्रभावित करती हैं।

5. कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग

AI और मशीन लर्निंग एल्गोरिदम का उपयोग जड़ विकास पर विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों के प्रभाव का पूर्वानुमान लगाने के लिए किया जा रहा है। मृदा सेंसर, जलवायु मॉडल और फसल निगरानी प्रणालियों से डेटा का विश्लेषण करके, AI किसानों को जड़ वृद्धि की परिस्थितियों को अनुकूलित करने के लिए कार्रवाई योग्य जानकारी प्रदान कर सकता है। उदाहरण के लिए, AI मॉडल वास्तविक समय के पर्यावरणीय डेटा के आधार पर सर्वोत्तम रोपण समय और सिंचाई कार्यक्रम की भविष्यवाणी कर सकते हैं।

उदाहरण

कई खेतों ने स्मार्ट खेती तकनीकों को अपनाया है ताकि जड़ों के स्वास्थ्य में सुधार हो सके। एक उल्लेखनीय उदाहरण है संयुक्त राज्य अमेरिका का सटीक कृषि परियोजना, जहां किसानों ने ड्रोन आधारित इमेजिंग और मृदा नमी सेंसर का उपयोग सिंचाई को अनुकूलित करने और पानी की कमी वाले क्षेत्रों में जड़ विकास को बढ़ावा देने के लिए किया। इन तकनीकों के परिणामस्वरूप स्वस्थ जड़ प्रणालियाँ और बढ़ी हुई फसल उपज और जल उपयोग दक्षता प्राप्त होती है।

जड़ों का स्वास्थ्य पौधों की वृद्धि और कृषि उत्पादकता के लिए मूलभूत है। जलवायु परिवर्तन, जल संकट, और मृदा अपरदन द्वारा उत्पन्न समस्याओं के साथ, स्मार्ट खेती तकनीकों को अपनाना स्थायी कृषि के लिए आवश्यक है। मृदा सेंसर, सटीक सिंचाई, और स्मार्ट उर्वरकों जैसी तकनीकें किसानों को जड़ स्वास्थ्य को अनुकूलित करने और पारंपरिक खेती पद्धतियों द्वारा उत्पन्न सीमाओं को पार करने में मदद करती हैं। इन नवाचारों को एकीकृत करके, किसान यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि पौधे मजबूत, अधिक कुशल जड़ प्रणालियों के साथ बढ़ें, जिससे अधिक उपज और अधिक लचीली फसलें प्राप्त हों। जैसे–जैसे स्मार्ट खेती विकसित होती जा रही है, कृषि का भविष्य बढ़ी हुई उत्पादकता, स्थिरता और खाद्य सुरक्षा का वादा करता है।

कृषि महाविद्यालय जोबनेर द्वारा विकसित की गई बीज मसालो की उन्नत किस्मे

शैलेश मार्कर[1], अमर चन्द शिवरान[1], दिनेश कुमार गोठवाल[1], गिरधारी लाल कुमावत[2], कैलाश चन्द्र[2] एवं आशीष शीरा[2]

[1]आचार्य, [2]सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

भारत के शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्र विशेष रूप से राजस्थान और गुजरात को 'बीज मसालों का कटोरा' कहा जाता है। ये राज्य देश में कुल बीज मसालों के उत्पादन में 80 प्रतिशत से अधिक योगदान देते हैं। विश्व में कुल 109 मसालों की सूची है, जिनमें से 63 भारत में उगाए जाते हैं। इनमें 20 को बीज मसाले की श्रेणी में रखा गया है। भारत इन मसालों का सबसे बड़ा उत्पादक, उपभोक्ता और निर्यातक देश है।

बीज मसालों का महत्त्व

बीज मसाले न केवल भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, बल्कि वे स्वास्थ्यवर्धक भी होते हैं। इनमें प्रमुख रूप से जीरा, धनिया, सौंफ, मेथी, अजवाइन, सोआ, काला जीरा, और सौंफ शामिल हैं। भारत अपने कुल बीज मसालों का लगभग 14 प्रतिशत निर्यात करता है, जो विश्व की 50–60 प्रतिशत मांग को पूरा करता है।

बीज मसालों की अनुसंधान स्थिति

भारत में बीज मसालों पर शोध 20वीं शताब्दी की शुरुआत में शुरू हुआ। 1971 में 'अखिल भारतीय समन्वित मसाला अनुसंधान परियोजना' के तहत प्रमुख अनुसंधान केंद्र स्थापित किए गए। इससे नई और उच्च उत्पादकता वाली किस्मों का विकास हुआ। मसालों पर अखिल भारतीय समन्वित मसाला अनुसंधान परियोजना, जोबनेर केंद्र धनिया, जीरा, सौंफ और मेथी पर काम करता है

उद्देश्यः

1 देशी एवं विदेशी प्रकार के धनिये, जीरा, मेथी और सौंफ का संग्रहण, रख–रखाव एवं मूल्यांकन।
2 श्रेष्ठ प्रकार क जीनोटाइप का चयन, गुणन और बहुस्थान परीक्षण।
3 रोग और कीट प्रतिरोध के लिए जर्मप्लाज्म का मूल्यांकन।
4 अधिक उपज प्राप्त करने के लिए कृषि–तकनीकों का मानकीकरण।
5 इन मसालों का गुणवत्ता मूल्यांकन।

1. बीज मसालों के प्रमुख केंद्र एवं उत्पत्ति

फसल	वैज्ञानिक नाम	कुल	उत्पत्ति केंद्र
अजवाइन	ट्रैचीसपरमम अम्मी	एपीएसीएई	मिस्र, भारत
सौंफ	फोएनिकुलम वल्गारे मिल.	एपीएसीएई	दक्षिण यूरोप, भूमध्यसागर
धनिया	कोरिएंड्रम सटाइवम एल.	एपीएसीएई	भूमध्यसागर
जीरा	क्यूमिनम सायमिनम एल.	एपीएसीएई	भूमध्यसागर
मेथी	ट्राइगोनैला फोएनम–ग्रेकेम एल.	फैबेसी	पश्चिम एशिया
सोआ	एनेथम ग्रेविओलेन्स एल.	एपीएसीएई	यूरोप, अफ्रीका, एशिया
काला जीरा	नाइगेला सटाइवा एल.	रैननकुलेसी	दक्षिण–पश्चिम एशिया

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (राजस्थान) में मसाला प्रयोगों का फील्ड दृश्य

2 उन्नत किस्मों का विकास

बीज मसालों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए वैज्ञानिकों ने उच्च उत्पादकता वाली और रोग–प्रतिरोधी किस्मों का विकास किया है। प्रमुख उन्नत किस्में निम्नलिखित हैं :

फसल	श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर की प्रमुख उन्नत किस्में
जीरा	आरजेड–19, आरजेड–209, आरजेड–223, आरजेड–341, आरजेड–345
धनिया	आरसीआर–20, आरसीआर–41, आरसीआर–435, आरसीआर–436, आरसीआर–446, आरसीआर–684, आरसीआर–480, आरसीआर–728, आरसीआर–475
सौंफ	आरएफ–101, आरएफ–125, आरएफ–143, आरएफ–178, आरएफ–205, आरएफ–145, आरएफ–281, आरएफ–157, आरएफ–289, आरएफ–290
मेथी	आरएमटी–1, आरएमटी–143, आरएमटी–303, आरएमटी–305, आरएमटी–351, आरएमटी–361, आरएमटी–365, आरएमटी–354

बीज मसालों की उत्पादन तकनीक

बीज मसालों की खेती के लिए आधुनिक उत्पादन तकनीक विकसित की गई है, जिसमें ड्रिप सिंचाई, मल्चिंग, तथा जैविक खेती को बढ़ावा दिया गया है। जैविक खेती में नाइट्रोजन–स्थिरीकरण करने वाले बैक्टीरिया एवं जैविक खादों का उपयोग किया जाता है।

जलवायु

1 धनिया की फसल के लिए शुष्क एवं ठंडा मौसम अधिक उपज एवं गुणवत्ता के लिए अनुकूल रहता है फसल को उष्ण एवं मध्य उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में जहां तापमान अधिक ना हो तथा वर्ष का वितरण ठीक हो सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, फसल में फूल आते वक्त जिन क्षेत्रों में पाला पड़ता है वह उपयुक्त नहीं है।

2 जीरा शरद ऋतु की फसल है इसके लिए सामान्य ठंड एवं शुष्क वातावरण अधिक उपयुक्त रहता है जिन क्षेत्रों में वायुमंडल की नमी अधिक हो ऐसे क्षेत्र जिले की खेती के अनुकूल नहीं है अधिक नमी के कारण चूर्णी फफूंदी एवं झुलसा रोग का प्रकोप अधिक होने की संभावना रहती है इससे फसल को भारी नुकसान हो सकता है

3 मैंथी ठंडे मौसम की फसल है तथा पाल व लवणीयता को भी कुछ स्तर तक सहन कर सकती है मैंथी की प्रारंभिक वृद्धि के लिए मध्यम आद्रता जलवायु तथा कम तापमान उपयुक्त है परंतु पकाने के समय ठंड व शुष्क मौसम उपज के लिए लाभप्रद है

4 सौंफ शरद ऋतु में बोई जाने वाली एक महत्वपूर्ण फसल है। इसकी खेती के लिए शुष्क और सामान्य ठंडा मौसम सर्वोत्तम होता है, खासकर जनवरी से मार्च तक। इस समय का मौसम फसल की गुणवत्ता को बेहतर बनाने में सहायक होता है। हालांकि, फूल आने के समय यदि लंबे समय तक बादल घिरे रहें या नमी अधिक हो, तो यह फसल में बीमारियों के प्रकोप को बढ़ा सकता है।

रोग एवं कीट नियंत्रण

बीज मसालों में लगने वाले प्रमुख रोगों एवं कीटों के नियंत्रण हेतु जैविक एवं रासायनिक उपाय अपनाए जाते हैं।

फसल	प्रमुख रोग एवं कीट
जीरा	मोयला (एफिड), उखटा, झुलसा, चूर्णी फफूंदी
धनिया	मोयला (एफिड), कट वर्म एवं वायर वर्म , बरुथी (माईट्स), तना सूजन (स्टेम गॉल) , चूर्णी फफूंदी, उखटा, झुलसा
सौंफ	मोयला (एफिड), थ्रिप्स, झुलसा, जड़ व तना गलन, गोंदिया
मेथी	मोयला (एफिड), बरुथी (माईट्स), चूर्णी फफूंदी, जड़ गलन, पूर्ण धब्बा

संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ

भारत में बीज मसालों की खेती को बढ़ावा देने की अपार संभावनाएँ हैं।

संभावनाएँ:

- निर्यात बढ़ाने की व्यापक संभावनाएँ।
- औषधीय गुणों के कारण इनका उपयोग बढ़ रहा है।
- जलवायु अनुकूलता के कारण नई फसल पद्धतियों में इनका समावेश संभव।

चुनौतियाँ:

- उन्नत तकनीक एवं गुणवत्तायुक्त बीजों की उपलब्धता।
- जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पादन में अस्थिरता।
- जीरे का झुलसा एवं उखटा, धनिया का तना सूजन (स्टेम गॉल), मेथी का चूर्णिल फफूंदी रोग ।
- बीजीय मसालों के प्रसंस्करण उद्योगों का अभाव।
- जैविक खेती के लिए प्रमाणन की जटिल प्रक्रिया।

भारत में बीज मसालों की खेती का बहुत उज्ज्वल भविष्य है। यदि आधुनिक तकनीकों को अपनाया जाए और किसानों को उचित प्रशिक्षण दिया जाए, तो उत्पादन एवं निर्यात में भारी वृद्धि संभव है। सरकार एवं शोध संस्थानों को किसानों के साथ मिलकर कार्य करने की आवश्यकता है, ताकि भारत विश्व के मसाला बाजार में अपनी श्रेष्ठता बनाए रखे।

आनुवांशिक रूपांतरित फसलें

निकिता कुमारी[1], एस. के. गोयल[2], मनीषा खीचड[1] एवं राजेश कुमार बोचल्या[1]

[1]विद्यावाचस्पति छात्र, [2]सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

फसलों के जीन कृत्रिम रूप से संशोधित किए जाते हैं जिससे कि इसमें दूसरी फसल की तुलना में अनुवांशिक गुणों जैसे कि रोग या सूखे से प्रतिरोधक क्षमता एवं उत्पादन में वृद्धि इत्यादि देखे जाते हैं इन फसलों के डीएनए को जेनेटिक इंजीनियरिंग टेक्नोलॉजी का उपयोग करके परिवर्तित किया जाता है। यह तकनीक परंपरागत कृषि पद्धतियों से भिन्न है, क्योंकि इसमें फसलों की आनुवंशिक संरचना को विशेष उद्देश्यों के लिए संशोधित किया जाता है।

जीएम फसलों की आवश्यकता

विश्व की बढ़ती जनसंख्या के साथ खाद्य सुरक्षा एक गंभीर चुनौती बन गई है। पारंपरिक कृषि पद्धतियां इस मांग को पूरा करने में सक्षम नहीं हैं। इसके अलावा, फसलों पर कीटों और रोगों का प्रभाव, जलवायु परिवर्तन, और सीमित प्राकृतिक संसाधन किसानों के लिए बड़ी समस्याएं हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए जीएम फसलें एक महत्वपूर्ण विकल्प बन सकती हैं।

जेनेटिक इंजीनियरिंग मूल्यांकन समिति पर्यावरण वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के अंतर्गत आता है इसका कार्य आनुवांशिक रूप से संशोधित फसलों को कृषि में उपयोग हेतु स्वीकृति प्रदान करना हैं।

जीएम फसलों के लाभ

1. **अधिक उत्पादन** – देखा गया है कि ळड फसलों के उपयोग से उत्पादन में वृद्धि होती है जिससे कि किसान अधिक फसल प्राप्त कर सकता है
2. **कीट और रोग प्रतिरोधकता** – इन फसलों में कीट और रोगों के प्रति प्रतिरोधक जीन डाले जाते हैं, जिससे रसायनिक कीटनाशकों का उपयोग कम होता है।
3. **जलवायु अनुकूलन** – जीएम फसलों को सूखा, अधिक तापमान, और खारे पानी जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में उगाया जा सकता है।
4. **पोषण में वृद्धि** – वैज्ञानिक तकनीकों से इन फसलों में आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ाई जाती है, जैसे कि गोल्डन राइस में विटामिन ए।
5. **पर्यावरणीय लाभ** – कीटनाशकों और उर्वरकों के कम उपयोग से मिट्टी और जल संसाधनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

जीएम फसलों से हानियां

1. **पर्यावरण हेतु नुकसान** – ये फैसले विविधता को कम कर सकती है उदाहरण के तौर पर कीट प्रतिरोधी पौधे उन कीटों को नुकसान पहुंचा सकते हैं जो उनका लक्ष्य नहीं है जिससे कि पर्यावरण की विविधता पर असर पड़ता है।
2. **बीजों का पुनः उपयोग संभव नहीं** – अनुवांशिक रूप से संशोधित बीजों का उपयोग दुबारा नई फसल बोने हेतु नहीं किया जा सकता है, इसका मतलब किसान को जब भी नहीं फसल बोनी होगी तब उसे बाजार से नए बीजों को खरीदना होगा जिससे किसान की लागत बढ़ेगी एवं इसके अलावा संशोधित बीज बनाने के लिये केवल कुछ कंपनियां ही है जिससे एकाधिकार की स्थिति में किसान को अधिक लागत आयेगी।

जीएम फसलों के उदाहरण

1. **बीटी कपास**

- बीटी कपास भारत में व्यावसायिक रूप से स्वीकृत पहली जीएम फसल है।
- इसे बैक्टीरियम थुरिंजिएन्सिस नामक बैक्टीरिया से प्राप्त जीन का उपयोग करके तैयार किया गया है। यह फसल कपास की फसल को बॉलवर्म जैसे प्रमुख कीटों से बचाती है।
- बीटी कपास ने भारतीय कपास उत्पादन में क्रांतिकारी बदलाव लाया है, जिससे किसानों को अधिक पैदावार और कम कीटनाशक खर्च का लाभ मिला है।

2. **जीएम सोयाबीन**

- जीएम सोयाबीन को विशेष रूप से हर्बिसाइड (जैसे ग्लाइफोसेट) के प्रति सहनशील बनाने के लिए संशोधित किया गया है।
- यह तकनीक किसानों को खरपतवार प्रबंधन में मदद करती है, जिससे उत्पादन लागत में कमी आती है।
- जीएम सोयाबीन मुख्य रूप से अमेरिका, ब्राजील और अर्जेंटीना में उगाई जाती है। इसका उपयोग खाद्य तेल और पशु चारे के उत्पादन में होता है।

3. **जीएम सरसों**

- जीएम सरसों को धारा मस्टर्ड हाइब्रिड–11 के रूप में विकसित किया गया है।
- इसे भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा तैयार किया गया है। यह फसल परागण को नियंत्रित करने वाली तकनीक के माध्यम से उच्च पैदावार प्रदान करती है।
- हालांकि, इसके व्यावसायिक उपयोग पर अभी भी सरकार और पर्यावरणविदों के बीच बहस चल रही है।
- पौधों की दो अलग अलग वैराइटी को मिलाकर हाइब्रिड सरसों का विकास किया गया परन्तु सरसों फसल के लिए ये प्रक्रिया आसान नहीं होती क्योंकि इसके फूलों में नर और मादा दोनों ऑर्गन होते हैं और इसमें स्वयं परागण की प्रक्रिया पाई जाती है इसलिए किसी दूसरे पौधे से पराग कणों की जरूरत इसे नहीं होती इस कारण से हाइब्रिड सरसों को तैयार करना मुश्किल होता है लेकिन दिल्ली में इसे जेनेटिक मेनिपुलेशन ऑफ क्रॉप प्लांट्स के साइंटिस्ट ने जीन संशोधन के जरिए हाइब्रिड सरसों को तैयार किया है एवं इस वैराइटी को DMH-11 नाम दिया है। धारा हाइब्रिड सरसो एक स्वदेशी रूप से विकसित किस्म है जो कि हरबीसाइट टोलरेंट है इस सरसों में दो एलियन जीन बोर्नज एवं बार स्टार को लिया गया है जिसे की जीवाणु बेसिल्स एमिलोलीफेसियन से प्राप्त किया गया है।

4. **गोल्डन राइस (Golden Rice)**
- यह एक जैव–संशोधित चावल है, जिसे विटामिन ए की कमी को दूर करने के लिए विकसित किया गया है।
- इसमें बीटा–कैरोटीन नामक तत्व मौजूद होता है, जो शरीर में विटामिन ए में परिवर्तित हो जाता है।
- यह विशेष रूप से विकासशील देशों में कुपोषण की समस्या को कम करने के लिए तैयार किया गया है।

जीएम फसलों की प्रमुख चुनौतियां

1. **जैव विविधता पर प्रभाव** – जीएम फसलों के उपयोग से जैव विविधता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।
2. **स्वास्थ्य संबंधी चिंताएं** – कुछ लोग मानते हैं कि जीएम खाद्य पदार्थों का लंबे समय तक सेवन स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। हालांकि, अब तक कोई ठोस प्रमाण नहीं मिले हैं।
3. **आर्थिक और सामाजिक मुद्दे** – जीएम बीजों की उच्च लागत और उनका पेटेंट प्रणाली में शामिल होना छोटे किसानों के लिए कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है।
4. **पर्यावरणीय चिंताएं** – अनजाने में जीएम फसलों के परागण से गैर–जीएम फसलों और जंगली पौधों पर असर हो सकता है।

भारत में जीएम फसलों की स्थिति

भारत में जीएम फसलों का उपयोग सीमित है। वर्तमान में, बीटी कपास ही एकमात्र व्यावसायिक रूप से स्वीकृत जीएम फसल है। बीटी कपास ने भारतीय किसानों को कीटों से बचाने और उत्पादन बढ़ाने में मदद की है। हालांकि, अन्य जीएम फसलों, जैसे बीटी बैंगन और जीएम सरसों, के व्यावसायिक उपयोग पर अभी भी बहस जारी है।

स्मार्ट खेती के लिए पौधों की जीन संपादन तकनीक

हिना सहीवाला एवं पारुल
सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र तेजी से विकसित हो रहा है और खेती में नए–नए तकनीकी बदलाव हो रहे हैं। पौधों की जीन संपादन तकनीक (Plant Gene Editing Technology) इनमें से एक अत्याधुनिक और क्रांतिकारी तकनीक है, जो न केवल कृषि में सुधार ला रही है, बल्कि किसानों के लिए बेहतर फसल उत्पादन, लागत में कमी, और पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने में भी मददगार साबित हो रही है। यह तकनीक खेती को अधिक स्मार्ट और सस्टेनेबल बनाने में सहायक हो सकती है।

जीन संपादन तकनीक क्या है?

जीन संपादन एक ऐसी विज्ञान–आधारित तकनीक है, जिसमें पौधों के डीएनए में विशेष बदलाव किए जाते हैं, ताकि उन पौधों में कुछ विशेष गुण विकसित किए जा सकें। इसमें CRISPR-Cas9 जैसी आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल होता है, जो पौधों के जीन में सटीक बदलाव कर सकती है। जीन संपादन के माध्यम से पौधों की आनुवंशिक संरचना को संशोधित किया जाता है, ताकि वे बेहतर तरीके से उग सकें, अधिक उत्पादक हो सकें, और विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना कर सकें। यह तकनीक पारंपरिक ब्रीडिंग तकनीकों से कहीं अधिक प्रभावी और तेज है।

जीन संपादन का महत्व

1. **उत्पादकता में वृद्धि**
   एक प्रमुख उद्देश्य जो जीन संपादन तकनीक को लेकर रखा गया है, वह है उत्पादकता में वृद्धि। जीन संपादन द्वारा पौधों में ऐसे गुण विकसित किए जा सकते हैं जो उन्हें बेहतर उत्पाद देने में सक्षम बनाएं। उदाहरण के लिए, गेहूं, धान या मक्का जैसी फसलों को अधिक बीज, फल और उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद देने के लिए जीन संपादन किया जा सकता है। यह तकनीक किसानों को अधिक उत्पादन देने में मदद करती है, जिससे उनकी आय में वृद्धि होती है और खाद्य सुरक्षा को भी बढ़ावा मिलता है।
2. **रोगों और कीटों से सुरक्षा**
   किसानों के लिए फसल की सुरक्षा एक बड़ा मुद्दा है, क्योंकि हर साल विभिन्न प्रकार के रोगों और कीटों के कारण भारी नुकसान होता है। जीन संपादन के माध्यम से पौधों में ऐसी विशेषताएँ डाली जा सकती हैं, जो उन्हें कीटों और रोगों से स्वाभाविक रूप से लड़ने में सक्षम बनाती हैं। इस तरह के पौधों को कीटनाशकों और रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है, जिससे पर्यावरण को भी फायदा होता है। उदाहरण के लिए, मच्छर जनित बीमारियों के फैलाव को रोकने के लिए बायोटेक्नोलॉजी का उपयोग किया जा सकता है।
3. **सूखा सहनशीलता और जलवायु परिवर्तन से निपटना**
   जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा, अत्यधिक गर्मी और बर्फबारी जैसी स्थितियाँ किसानों के लिए चुनौतीपूर्ण बन चुकी हैं। जीन संपादन के द्वारा पौधों को सूखा सहनशील और जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशील बनाया जा सकता है। ऐसे पौधे कम पानी में भी अच्छे से उग सकते हैं, जिससे पानी की कमी से निपटने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, कुछ पौधों को जीन संपादन के माध्यम से सूखा सहनशील बनाया गया है, जिससे वे कम जल में भी अच्छी फसल दे सकते हैं।

4. **बेहतर पोषण गुणवत्ता**
   फसलों में पोषण की कमी अक्सर मनुष्यों के स्वास्थ्य पर असर डालती है। जीन संपादन तकनीक का उपयोग करके पौधों में विटामिन, खनिज, और प्रोटीन की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। उदाहरण के लिए, "स्वर्ण चावल" (Golden Rice) का विकास किया गया है, जिसमें विटामिन A की उच्च मात्रा होती है, जो विशेष रूप से बच्चों में अंधेपन को रोकने में सहायक होता है। इसी तरह, जीन संपादन द्वारा कई अन्य पौधों में पोषण तत्वों को बढ़ाया जा सकता है, जो आमतौर पर मिट्टी की उर्वरता की कमी के कारण कम होते हैं।

स्मार्ट खेती में जीन संपादन का योगदान

स्मार्ट खेती का मतलब है उन तकनीकों का इस्तेमाल करना जो खेती को अधिक कुशल, पर्यावरण अनुकूल और लाभकारी बना सकें। जीन संपादन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

1. **स्मार्ट सिंचाई और जल प्रबंधन**
   जल संकट से जूझ रहे किसानों के लिए स्मार्ट सिंचाई एक बड़ा मुद्दा है। जीन संपादन के माध्यम से ऐसी फसलें विकसित की जा सकती हैं जो कम पानी में भी बढ़ सकें। इस प्रकार, स्मार्ट सिंचाई प्रणाली के साथ संयोजन में जीन संपादन से कृषि उत्पादन में सुधार हो सकता है, और किसानों को जल की कमी के बावजूद अच्छी पैदावार मिल सकती है।
2. **रोबोटिक्स और ड्रोन के साथ संयोजन**
   भविष्य में रोबोटिक्स और ड्रोन का इस्तेमाल कृषि में अधिक बढ़ने की संभावना है। ड्रोन का उपयोग खेतों की निगरानी करने, पौधों की स्थिति जानने, और फसलों की देखभाल करने के लिए किया जाएगा। जीन संपादन के माध्यम से पौधों के गुणों में सुधार करके, ड्रोन की मदद से इन पौधों की देखभाल की जा सकती है, जिससे कृषि को अधिक सटीकता से नियंत्रित किया जा सकता है।
3. **जैविक उर्वरक और कीटनाशकों का प्रयोग**
   पारंपरिक खेती में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग पर्यावरण के लिए हानिकारक साबित हो सकता है। जीन संपादन द्वारा ऐसे पौधे तैयार किए जा सकते हैं जो कीटों और रोगों से बचाव करने में सक्षम हों, जिससे रासायनिक उत्पादों की आवश्यकता कम हो जाती है। इस तरह की तकनीक पर्यावरण की रक्षा करने और किसानों की लागत को घटाने में मदद करती है।

चुनौतियाँ और समाधान

1. **सामाजिक और कानूनी चिंताएँ** : जीन संपादन को लेकर कुछ देशों में कानूनी और सामाजिक चिंताएँ हैं। कई लोग इसे प्राकृतिक रूप से पौधों के विकास के खिलाफ मानते हैं। इन चिंताओं का समाधान इसके वैज्ञानिक और तकनीकी पहलुओं को स्पष्ट करने और इसके फायदों को समझाने के माध्यम से किया जा सकता है।
2. **शिक्षा और प्रशिक्षण** : किसानों को इस नई तकनीक के बारे में जागरूक करने की आवश्यकता है। सरकार और कृषि संस्थानों को किसानों को जीन संपादन के लाभों और इसके सही उपयोग के बारे में शिक्षा देने की आवश्यकता है।

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन में ह्युमिक पदार्थों का महत्व

राजहंस वर्मा[1], पार्वती दीवान[1], एस. एस. यादव[2] एवं निरंजन बरोड़[1]
[1]सहायक आचार्य, [2]आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

मृदा पृथ्वी पर जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन है। मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन में ह्युमिक पदार्थो की भूमिका महत्वपूर्ण एवं बहुआयामी होती है। यह कृषि उत्पादन, पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता और पर्यावरणीय संतुलन के लिए अनिवार्य होती है। स्वस्थ मृदा न केवल पौधों की वृद्धि और विकास को सुनिश्चित करती है, बल्कि जल संरक्षण, पोषक तत्व चक्र और जैव विविधता को भी बनाए रखने में सहायक होती है। आधुनिक कृषि प्रणालियों के बढ़ते दबाव और अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों के उपयोग के कारण मृदा की गुणवत्ता में लगातार गिरावट आ रही है। इस स्थिति में, मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने और उसकी उर्वरता को बढ़ाने के लिए ह्युमिक पदार्थो का उपयोग अत्यंत प्रभावी साबित हो रहा है। ह्युमिक पदार्थ कार्बनिक यौगिक होते हैं जो प्राकृतिक रूप से मिट्टी, पीट, कोयला और पानी में पाए जाते हैं। ये पदार्थ मिट्टी में जैविक और भौतिक गुणों को सुधारते हैं और पौधों को आवश्यक पौषक तत्व उपलब्ध कराते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, ह्युमिक पदार्थों को तीन प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जाता है – ह्युमिन, ह्युमिक एसिड और फुल्विक एसिड। ये सभी घटक मिलकर मिट्टी की संरचना, जल धारण क्षमता और सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को बढ़ाते हैं। ये मिट्टी की संरचना को सुधारने में मदद करते हैं, जिससे मृदा की जल धारण क्षमता और वातायन में सुधार होता है। इसके अलावा, ये पौषक तत्वों को बांधने और उन्हें पौधों के लिए उपलब्ध कराने की क्षमता रखते हैं। ह्युमिक पदार्थ सूक्ष्मजीव गतिविधियों को बढ़ावा देते हैं, जिससे जैविक प्रक्रियाएं सक्रिय होती हैं और मृदा की उर्वरता में वृद्धि, पौधों की वृद्धि और मृदा प्रदूषण को कम करने में सहायक होते हैं और मृदा के पीएच संतुलन को बनाए रख्ने में मदद करते हैं।

आधुनिक कृषि पद्धतियों में ह्युमिक पदार्थों का समावेश महत्वपूर्ण होता जा रहा है। जैविक खेती, सतत कृषि और मृदा सुधार के लिए इनका उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। यह न केवल रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता को कम करता है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में भी मदद करता है। मृदा में ह्युमिक पदार्थों की उचित मात्रा से जल संरक्षण, कार्बन स्थिरीकरण और सूक्ष्मजीवों की सक्रियता में वृद्धि होती है, जिससे संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र को लाभ मिलता है। इस लेख में हम ह्युमिक पदार्थों के प्रकार, उनकी मृदा स्वास्थ्य में भूमिका और उनके प्रभावी उपयोग के तरीकों पर विस्तार से चर्चा करेंगे। यह जानकारी किसानों, शोधकर्ताओं और कृषि विशेषज्ञों के लिए उपयोगी होगी, जिससे वे मृदा की गुणवत्ता सुधारने और सतत् कृषि पद्धतियों को अपनाने की दिशा में प्रभावी कदम उठा सकें।

ह्युमिक पदार्थों के प्रकार एवं वर्गीकरण :

ह्युमिक पदार्थों को उनके भौतिक और रासायनिक गुणों के आधार पर विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है। ये मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किए जाते हैं :

1. **ह्युमिन**
   - यह ह्युमिक पदार्थों का सबसे स्थिर और अघुलनशील भाग होता है।
   - पानी और क्षारीय घोलों में अघुलनशील होने के कारण, यह मृदा की स्थिरता और जल धारण क्षमता को बढ़ाने में सहायक होता है।
   - यह मृदा संरचना को सुधारने, कटाव को कम करने और कार्बन स्थिरीकरण में योगदान देता है।
2. **ह्युमिक एसिड**
   - यह आंशिक रूप से घुलनशील होता है और क्षारीय परिस्थतियों में घुलकर मृदा की उर्वरता को बढ़ाने में मदद करता है।
   - ह्युमिक एसिड मिट्टी में उस्थित पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम ओर सूक्ष्म पोषक तत्वों को पौधों के लिए अधिक उपलब्ध कराता है।
   - यह पौधों की जड़ो के विकास को बढ़ाने, सूक्ष्मजीवों गतिविधियों को प्रोत्साहित करने और जैव उपलब्धता को सुधारने में सहायक होता है।
3. **फुल्विक एसिड**
   - यह ह्युमिक पदार्थों का सबसे कम आणविक भार वाला और सबसे अधिक घुलनशील घटक होता है।
   - फुल्विक एसिड पौधों को आवश्यक खनिज और पौषक तत्वों को तेजी से अवशोषित करने में मदद करता है।
   - यह जैविक गतिविधियों को बढ़ावा देने, सूक्ष्म पोषक तत्वों के अवशोषण को बढ़ाने और पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मृदा स्वास्थ्य में ह्युमिक पदार्थों की भूमिका

ह्युमिक पदार्थ मृदा के स्वास्थ्य को सुधारने में बहुआयामी भूमिका निभाते हैं। ये मृदा की संरचना, उर्वरता, जल धारण क्षमता, सूक्ष्मजीव गतिविधियों और पौधों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं।

1. **मृदा संरचना में सुधार** : ह्युमिक पदार्थ मिट्टी की संरचना को बेहतर बनाने में सहायक होते हैं। ये मृदा कणों को जोड़कर एक स्थिर संरचना का निर्माण करते हैं, जिससे मिट्टी में जल धारण और वातायन की क्षमता बढ़ती है। इससे मृदा अपरदन की समस्या कम होती है और पौधों की जड़ों के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनती हैं।
2. **पोषक तत्वों की उपलब्धता** : ह्युमिक पदार्थ मृदा में मौजूद पोषक तत्वों को बंधन में रखते हैं और उन्हें पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं। इससे नाईट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम जैसे आवश्यक पोषक तत्व पौधों को आसानी से मिलते हैं। ह्युमिक एसिड और फुल्विक एसिड पौधों की जड़ो में पोषक तत्वों के अवशोषण को बढ़ाते हैं और उर्वरकों की दक्षता में सुधार करते हैं।
3. **सूक्ष्मजीवों की गतिविधियों में वृद्धि** : मृदा में सूक्ष्मजीवों की सक्रियता बढ़ाने में ह्युमिक पदार्थ अहम भूमिका निभाते हैं। ये लाभकारी सूक्ष्मजीवों के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं जिससे जैवक प्रक्रियाएँ सक्रिय होती हैं। मृदा में सूक्ष्मजीवों की सक्रियता जैविक प्रक्रियाओं को बढ़ावा देती है। ह्युमिक पदार्थ सूक्ष्मजीवों को भोजन एवं ऊर्जा प्रदान करते हैं, जिससे उनकी संख्या और गतिविधियाँ बढ़ती हैं। इससे मृदा में जैविक अपघटन और पोषक तत्व चक्रण में सुधार होता है।
4. **पौधों की वृद्धि और विकास में सहायक** : ह्युमिक पदार्थ जैविक रूप से सक्रिय यौगिक प्रदान कर पौधों की जड़ प्रणाली के विकास को उत्तेजित करते हैं। जिससें पौधों की जड़ों के विकास, अंकुरण दर और पौधों के संपूर्ण स्वास्थ्य को बेहतर बनाते हैं। वे पौधों में एंजाइम की गतिविधि को बढ़ाते हैं और पौधों की प्रतिरोधक क्षमता को सुधारते हैं।
5. **भारी धातु प्रदूषण एवं मृदा प्रदूषण को कम करना** : ह्युमिक पदार्थ भारी धातुओं और विषैले तत्वों को जड़ प्रणाली में जाने से रोकते हैं, जिससे पौधों और पर्यावरण को हानि नहीं होती। औद्योगिक प्रदूषण और अत्यधिक उर्वरकों के उपयोग से मिट्टी में भारी धातुओं का जमाव हो सकता है, जो पौधों और मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारण होता है। ह्युमिक पदार्थ भारी धातुओं को अवशोषित करके उनकी विषाक्तता को कम करते हैं।
6. **जल धारण क्षमता में सुधार** : ह्युमिक पदार्थों की जल धारण करने की क्षमता अधिक होती है, जिससे वे सूखा प्रतिरोधक मिट्टी के निर्माण में सहायक होते हैं। ये मृदा में पानी को अधिक समय तक बनाए रखते हैं, जिससे पौधों को पर्याप्त नमी मिलती रहती है। इससे पानी की खपत कम होती है और सिंचाई की आवश्यकता भी घटती है।
7. **जैविक खाद के प्रभाव को बढ़ाना** : ह्युमिक पदार्थ जैविक खादों के प्रभाव को बढ़ाने में सहायक होते हैं। जब जैविक खादों के साथ ह्युमिक पदार्थ मिलाए जाते हैं, तो खाद में मौजूद पोषक तत्वों का अपघटन धीमा होता है और व अधिक समय तक मिट्टी में बने रहते हैं।
8. **मृदा के पीएच संतुलन में सहायक** : ह्युमिक पदार्थ मृदा के पीएच स्तर को संतुलित करने में मदद करते हैं, जिससे पौधों को आवश्यक पौषक तत्व सही मात्रा में प्राप्त होते हैं। ये क्षारीय और अम्लीय मिट्टी में सुधार लाने में भी सहायक होते हैं। जिससे पौधों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनती हैं।
9. **जैविक कार्बन भंडारण** : ह्युमिक पदार्थ जैविक कार्बन भंडारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये मृदा में कार्बनिक पदार्थों के रूप में कार्बन को संरक्षित रखते हैं, जिससे जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने में मदद मिलती है।

ह्युमिक पदार्थों के उपयोग के तरीके एवं मात्रा : ह्युमिक पदार्थों का उपयोग कृषि में विभिन्न रूपों में किया जाता है। इनका सही मात्रा में और उचित विधियों से उपयोग करने से मृदा स्वास्थ्य और फसल उत्पादन में सुधार किया जाता है।

1. **मिट्टी में सीधे मिलाकर उपयोग** : ह्युमिक पदार्थों को जैविक खाद, कम्पोस्ट या सीधे मिट्टी में मिलाकर उपयोग किया जा सकता है।
   - **मात्रा** : 5–10 किलोग्राम ह्युमिक पदार्थ प्रति एकड़।
   - **लाभ** : यह मृदा की संरचना को सुधारता है, जल धारण क्षमता बढ़ाता है और पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाता है।

2. **सिंचाई जल के साथ उपयोग** : ह्युमिक पदार्थों को पानी में घोलकर ड्रिप या स्प्रिंकलर सिंचाई के माध्यम से फसलों को दिया जा सकता है।
   - **मात्रा** : 500–1000 मिलीलीटर ह्युमिक एसिड प्रति एकड़ (10–15 दिन के अंतराल पर)।
   - **लाभ** : यह पौधों की जड़ों में तेजी से अवशोषित होकर पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाता है।
3. **पत्तियों पर छिड़काव (फोलिय स्प्रे)** : फुल्विक एसिड आधारित ह्युमिक पदार्थों को पौधों की पत्तियों पर छिड़का जाता है।
   - **मात्रा** : 0.1–0.5% ह्युमिक एसिड घोल (1 लीटर पानी में 1–5 ग्राम ह्युमिक एसिड)।
   - **लाभ** : यह पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देता है, पोषक तत्वों का अवशोषण बढ़ता है और सूखा प्रतिरोध को बढ़ाता है।
4. **बीज उपचार** : बीजों को अंकुरण दर और प्रारम्भिक वृद्धि में सुधार के लिए ह्युमिक एसिड घोल में भिगोया जाता है।
   - **मात्रा** : 0.5–1% ह्युमिक एसिड घोल में बीजों को 12–24 घंटे तक भिगोकर बुवाई करते है।
   - **लाभ** : यह अंकुरण दर बढ़ाया है, बीज की ऊर्जा को सक्रिय करता है और शुरूआती विकास में मदद करता है।
5. **जैव उर्वरकों के साथ मिश्रण** : ह्युमिक पदार्थों को जैव उर्वरकों के साथ मिलाकर उपयोग किया जा सकता है, जिससे माईक्रोबियल गतिविधि एवं उनकी प्रभावशीलता को बढ़ावा मिलता है।
   - **मात्राः** 2–5 किलोग्राम ह्युमिक पदार्थ प्रति टन जैव उर्वरक।
   - **लाभः** यह सूक्ष्मजीवों की संख्या को बढ़ाता है और पोषक तत्वों की उपलब्धता को सुधारता है।

ह्युमिक पदार्थ मृदा स्वास्थ्य सुधारने और कृषि उत्पादकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनकी विभिन्न श्रेणियां मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं में सुधार लाती हैं। इनके प्रभावी उपायेग से मृदा की उर्वरता और दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित की जाती है। इसलिए, जैविक और सतत् कृषि पद्धतियों में ह्युमिक पदार्थों का अधिकाधिक उपयोग किया जाना चाहिए।

कृषि में लाभकारी सूक्ष्म जीवों की क्षमता प्रणाली

किरण दुधवाल, गजानंद जाट, अशोक चौधरी एवं बसंत कुमार दादरवाल
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

कृषि उत्पादन में मृदा उर्वरता शक्ति का काफी महत्तव है। मृदा उर्वरा शक्ति उसमे उपस्थित पोषक तत्वों तथा उनकी मात्रा पर निर्भर करती है, जबकि मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की उपलब्ता सुक्ष्म जीवों की उपस्थिति एवं उनकी कार्य क्षमता पर निर्भर करती है। यही सूक्ष्म जीव, मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थो का अपघटन कर पोधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करते है व उनके चक्र को पूरा करने में मदद करते है। इसके अलावा मृदा की सरंचना में सुधार, मृदा में रन्ध्राकाश और जलधारण क्षमता बढ़ाने में सूक्ष्म जीव महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। सूक्ष्म जीवों में मुख्य रूप से जीवाणु (बैक्टीरिया), एक्टीनोमिसिटीज, कवक, प्रोटोजोवा, शैवाल, एवं सूत्रकर्मी शामिल है। इनकी संख्या एक ग्राम मृदा में लाखो से अरबो तक हो सकती है। मृदा में सबसे ज्यादा जीवाणु उपस्थित होते है उसके बाद क्रमशः ऐक्टिनोमाइसीज, कवक शैवाल और सबसे कम प्रोटोजोआ उपस्थित होते है।

जीवाणु

यह एक कोशिकीय जीव है। ये मृत पोधो एवं जैविक कचरे को खाकर अपघटित कर देते है। इसका मुख्य कार्य अप्राप्त पोषक तत्वों को प्राप्त पोषक तत्वों में बदलना है।

एक्टीनोमिसिटीज

यह एक सूक्ष्म जीव है, जो बैक्टीरिया एवं कवक दोनों की तरह व्यवहार करता है। इसके कारण मृदा में एक विशेष गंध उत्पन होती है। यह हाइड्रोलाइटिक एन्जयमो का उत्पादन कर पर्यावरण में कार्बनिक पदार्थो का पुनः चक्रण में महत्वपूर्ण भूमिका है।

शैवाल

यह ज्यादातर उस मृदा में मौजूद होते है जहा नमी और दूप दोनों उपलब्ध होती है। मृदा में इनकी संख्या 100 से 10000 प्रति ग्राम तक होती है। यह प्रकाश संलेषण में सक्षम होते है।

प्रोटोजोआ

यह जीवाणु से आकर में बड़े वह कुछ माइक्रोन से मि.मि. तक होते है। कृषि योग्य मृदा में इनकी संख्या 10000 से एक 100000 प्रति ग्राम तक हो सकती है। ये मृदा में जीवाणु के संतुलन को बनाये रखते है।

कवक

यह प्राकृतिक स्रोत से पोषक तत्वों को तोड़ने की क्षमता रखते है, जो अन्य जीव नहीं कर पाते है। कवक पोषक तत्वों को मृदा में छोड़ देते है, जिससे से अन्य जीव इनका उपयोग कर लेते है। इसके अलावा खुद को पौधो की जड़ो के साथ सलंगन कर लेते है जिसके कारण पौधो को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध होते है, और पौधे जल्दी बढ़ने लगते है। जिसे मायकोरिजल कहा जाता है। इसमें कवको को कार्बोहायड्रेट प्राप्त होता है।

सूक्ष्म जीवो के कार्य :

(1) भारी धातुओं का उपयोग करना :

सूक्ष्मजीव भारी धातुओं का उपयोग कर उनको हानिकारक अवस्था से अहानिकारक अवस्था में बदल देते है। इससे से मृदा में भारी धातुओं का विषाक्त प्रभाव कम या समाप्त हो जाता है। इसमें जीवाणु भारी धातुओं के उपयोग में सबसे से समर्थ है।

सारणी : 1 मृदा में भारी धातुओं का उपयोग करने वाले सूक्ष्म जीव

भारी धातु	उपयोग करने वाले सूक्ष्म जीव
कैडमियम	गोनोडर्मा एप्लेट, स्टेरियम हिर्सुटम
निकिल	स्यूडोमोनास ऐरुगीनोसा, क्लोराइड वुल्गैरिस
लेड	स्टेरियम हिर्सुटम, सिट्रोबैक्टेरिया प्रजाति

(2) जैव उर्वरक के रूप में :–

विभिन्न प्रकार की फसलों के उत्पादन के लिए विविध प्रकार के सूक्ष्म जीवो को जैविक उर्वरको के रूप में प्रयोग में लाया जाता है, जो निम्न है:

- दलहनी फसलों की जड़ो में गांठ बना कर रहने वाले नाइट्रोजन स्थरीकरण करने वाले सहजीवी जैसे :– राजोबियम
- बिना गाठ बनाने वाले , लेकिन पौधो के साथ रहने वाले जीवाणु जैसे :– एजोस्प्रिलियम
- स्वतंत्र रूप से जड़ क्षेत्र में जीवनयापन करने वाले जीवाणु जैसे :– एजेटोबैक्टर
- फॉस्फोरस को घुलनशील बनाने वेक जीवाणु एवं फफूंद जैसे :– बेसिलस पोलीमिक्सा, पेनिकम व् एस्परजिलस प्रजाति

(3) मृदा सरंचना में सुधार :–

मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीव जैसेः– जीवाणु एवं कवक द्वारा उत्पन्न बहुशर्करा एवं म्यूसिलेज से मृदा में गठन वह स्थिरता में सुधार होता है। इसके साथ ही ये मृदा के कणों को बांधे रखते है, जिससे मृदा क्षरण कम होता है।

(4) तत्वों की उपलब्ध्ता वह अवशोषण बढ़ाना :–

जीवाणु एवं कवको की अन्य किस्मे जैसेः– स्यूडोमोनास, बैसिलस, पेनिसिलियम ,राइजोपस इत्यादि मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थो, जो फसल अवशेष के रूप में उपस्थित होते है, को तत्वों में अपघटित कर पौधो को उपलब्ध करवाते है। इससे पोधो द्वारा अवशोषण आसानी से होता है। माइकोराइजा कई प्रकार के आवश्यक पोषक तत्वों जैसे :– फॉस्पोरस , जिंक , कॉपर एवं सल्फर की अघुलनशील अवस्था बढ़ती है।

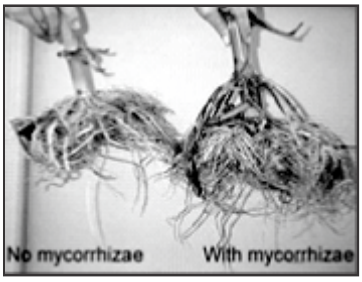

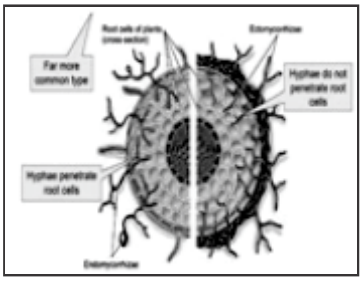

(5) फसल उत्पादन में सूक्ष्म जीव :–

सूक्ष्म जीव जैसे राइजोबियम की किस्मे विभिन्न फसलों के साथ सहजीवन बनाकर नाइट्रोजन का अवशोषण एवं स्थिरीकरण करके उत्पादन में 10 से 20% की वृद्धि कर देते है। इसके अलावा एजोटोबैक्टर वह फ्रैंकिया प्रजातिया भी मृदा में नाइट्रोजन के स्थिरीकरण में सहयोग करती है। माइकोराइजा फसलों में फॉस्फोरस एवं सल्फर के अवशोषण को बढ़ाकर के उपज में 10 से 30% तक वृद्धि कर देते है।

(6) फसल सुरक्षा में सूक्ष्म जीव :–

सूक्ष्म जीव, मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्ध्ता बढ़ाने के साथ ही रोगो को कम करने में एवं रोकने में सहायक होते है। बेसिलस प्रजाति 20 से ज्यादा तरह के जैविक पदार्थ उत्पन्न करती है, जो रोगो एवं कीटो से फसल की सुरक्षा करते है। बेसिलस प्रजाति द्वारा टमाटर, बैंगन व मिर्ची में रोगजनकों का नियंत्रण किया जाता है।

बायोचार : एक प्राकृतिक खाद

रोशन चौधरी[1], बी. एल. दुदवाल[2], सन्तोष देवी सामोता[2] एवं सुरेश दुदवाल[2]

[1]उप–निदेशक अनुसंधान, [2]सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

यह एक कार्बनिक पदार्थ है जो पायरोल्यिसस के दौरान उत्पादित होता है, बायोचार एक मिट्टी संशोधन के रूप में प्रयोग किया जाता है बायोचार एक स्थिर ठोस पदार्थ है जो पायरोल्यिसस प्रक्रिया से बनाया जाता है, बायोचार में कार्बन मात्र अधिक जिसमें होती है यह एक कम ऑक्सीजन वातावरण में कार्बनिक पदार्थ जल द्वारा बनाई गई है। पायरोल्यिसस एक प्रत्यक्ष थर्मल अपघटन प्रक्रिया है जो ऑक्सीजन के अभाव में बायोमास को बायोचार, तरल, जैव–तेल एवं सिन गैस में बदलती बायोचार मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाता है। कृषि अपशिष्ट परिवर्तित करके मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाकर एवं खाद्य सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए वनों की कटाई को हतोत्साहित करके और खेती विविधता को संरक्षित कर सकते हैं। बायोचार केवल एक मिट्टी सुधार के रूप में अपने आवेदन में मानक लकड़ी के कोयले से अलग है। बायोचार वास्तव में एक कार्बनसिंक कि तरह काम करता है जो छोटे पैमाने पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में मदद कर सकता हैं। बायोचार द्वारा ग्रीनहाउस गेसों के दुष्प्रभाव को रोकता है एवं मिट्टी की उर्वराशक्ति 30 से 40 प्रतिशत उत्पादकता बढ़ा देता है।

बायोचार उत्पादन एवं उपयोग

बायोमास को पायरोल्यिसस भट्टी में बहुत ही कम ऑक्सीजन या न के बराबर ऑक्सीजन में जलाया जाता है जिससे बायोचार उत्पादित होता है। बायोचार बनाने के लिए कृषि अवशेष, भूसा या विभिन्न कार्बनिक सामग्री काम में ली जाती है पायरोल्यिसस भट्टी का तापमान 450°C से कम रखा जाता है। जलवायु परिवर्तन में संतुलन लाने की सम्भावना से बायोचार लोकप्रिय होता जा रहा है। कृषि क्षेत्र के दो तरीके में बायोचार से लाभ कर सकते हैं : मृदा सुधार और जानवर और फसल अपशिष्ट निपटाने। बायोचार ग्रीन हाउस गैस को कम करने में भी सहायता करता है।

बायोचार मिट्टी के स्वास्थ्य तथा फसल उत्पादन पर लाभ

मिट्टी की उर्वराशक्ति, जीवाणुओं की मात्रा एवं क्रियाशीलता पर निर्भर रहती है क्योकिं बहुत सी रासायनिक क्रियाओं के लिए सूक्ष्म जीवों की आवश्यकता रहती है। जीवित व सक्रिय मृदा वही कहलाती है, जिसमें अधिक से अधिक जीवांश हो। जीवाणुओं का भोजन प्रायः कार्बनिक पदार्थ ही होते है। इनकी अधिकता से मृदा की उर्वरा शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। केवल कार्बनिक खादों जैसे गोबर खाद, हरी खाद, बायोचार द्वारा ही स्थायी रूप से मृदा की क्रियाओं को बढ़ाया जा सकता है जिसमें बायोचार प्रमुख है। बायोचार के फायदे निम्नलिखित है :

- मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ जाती है।
- बायोचार पौध के अंकुरण को बढ़ाता है।
- बायोचार से मिट्टी में पानी की गुणवत्ता बेहतर होती है, जिससे मिट्टी में पोषक तत्वों और किटनाशको को रोकने की क्षमता बढ जाती है।
- बायोचार कवक, नेमाटोड और कीड़ों के प्रकोप को रोकने के लिए लाभदायक है।
- मिट्टी के पीएच का अनुरक्षण किया जा सकता है और किसी भी प्रकार के अम्लीय व क्षारीय के लक्षण को बेअसर कर सकते है ।
- बायोचार द्वारा हम मिट्टी में वायुमंडलीय कार्बन को जब्त करके वायुमंडलीय कार्बन डाइ ऑक्साइड को कम कर सकते है।
- बायोचार मिट्टी के लिए कार्बन का एक समृद्ध स्रोत, है जिससे कार्बनिक पदार्थ का निर्माण होता है और फसलों की उत्पादकता में वृध्दि होती है।

समस्याग्रस्त भूमि का सुधार और प्रबंधन

किरण दुधवाल, गजानंद जाट एवं अशोक चौधरी

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

हमारे देश का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 329 मिलियन हेक्टेयर है जिसमें से लगभग 143 मिलियन हेक्टेयर पर खेती की जाती है जबकि लगभग 117 मिलियन हेक्टेयर परती एवं बंजर भूमि है। देश के विभिन्न भागों में 6.7 मिलियन हेक्टेयर से भी अधिक भूमि लवण प्रभावित है जिसमें से लगभग 56 प्रतिशत भाग क्षारीय है। अभी तक लगभग 1.74 मिलियन हेक्टेयर ऊसर भूमि का ही सुधार किया जा सका है। इन मृदाओं की ऊपरी सतह पर सफेद लवणों की परत फैली रहती है। जल निकास का उचित प्रबंध न होने से वर्षा ऋतु में इन भूमियों में पानी भर जाता है।

लवणीय भूमि

इन भूमियों की सतह पर कैल्शियम, मैग्नीशियम व पोटेशियम के क्लोराइड एवं सल्फेट आयन अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। इन भूमियों का जलस्तर ऊंचा होता है। लवणीय भूमि की विद्युत चालकता 4 मिलीम्होज प्रति सेमी से अधिक, विनिमय योग्य सोडियम 15 प्रतिशत से कम तथा पीएच मान 8.5 से कम होता है। भूमि पर सफेद लवण प्रचुर मात्रा में फैले रहते हैं इसलिए आम बोलचाल की भाषा में इन भूमियों को रेह भूमि भी कहते हैं।

सारणी – 1 : लवणीय व क्षारीय भूमियों का तुलनात्मक अध्ययन :

क्र.सं.	विशेषताएं	लवणीय भूमि	क्षारीय भूमि
1.	सोडियम लवणों की मात्रा	विनिमयशील सोडियम 15 प्रतिशत से कम	विनिमयशील सोडियम 15 प्रतिशत से अधिक
2.	विद्युत चालकता	4.0 मिलीम्होज से अधिक	4.0 मिलीम्होज से कम
3.	पीएच मान	8.5 से कम	8.5 से अधिक

क्षारीय भूमि

इन भूमियों में सोडियम कार्बोनेट व बाइकार्बोनेट लवणों की अधिक मात्रा पाई जाती है। भूमि की विद्युत चालकता 4 मिलीम्होज से कम, विनिमय योग्य सोडियम 15 प्रतिशत से अधिक व पीएच मान 8.5 से अधिक होता है। इन भूमियों की ऊपरी सतह पर राख व काले रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं। इन भूमियों में 4050 सेमी की गहराई पर सोडियम युक्त कठोर परतें पाई जाती हैं। इन भूमियों को ऊसर भूमि भी कहा जाता है। क्षारीय भूमियों की भौतिक दशा बहुत ही खराब होती है। इस लवणीय एवं क्षारीय भूमि निर्माण के प्रमुख कारण

1. शुष्क जलवायु।
2. सिंचाई स्रोतों जैसे ट्यूबवैल व नहरों के पानी की प्रकृति लवणीय व क्षारीय होना।
3. दोषपूर्ण सिंचाई पद्धतियों को अपनाना।
4. क्षारीय प्रकृति के रासायनिक उर्वरकों का बार–बार प्रयोग करना।

लवणीय भूमियों का सुधार :

- निक्षालन (लीचिंग)
- जल निकास द्वारा
- खुरचना
- खाईखोदकर
- घुलनशील लवणों को ऊपरी सतह से बहाना
- अद्योभूमि की कठोर परतों को तोड़ना

क्षारीय भूमियों का सुधार :

जिप्सम का प्रयोग

क्षारीय भूमियों के सुधार हेतु जिप्सम का प्रयोग अत्यधिक लाभदायक पाया गया है। इन भूमियों में विनिमयशील सोडियम की अधिकता होती है। सर्वप्रथम भूमि की जिप्सम मांग की जांच के बाद अच्छी गुणवत्तायुक्त बारीक जिप्सम को मृदा में छिटककर सतह से 10 सेमी गहराई तक जुताई करके मिट्टी में मिला देना चाहिए। जिप्सम का प्रयोग मिट्टी परीक्षण के आधार पर ही करें।

पायराइट का प्रयोग

क्षारीय भूमि सुधारने के लिए पायराइट का भी प्रयोग किया जाता है। इसकी मात्रा मृदा के पीएच एवं उसकी सघनता पर निर्भर करती है। सामान्यतः 10 से 15 टन पायराइट प्रति हेक्टेयर प्रयोग करना चाहिए। जिन भूमियों में कैल्शियम क्लोराइड लवणों की अधिक मात्रा पाई जाती है, उन मृदाओं के सुधार हेतु पायराइट का प्रयोग उपयोगी सिद्ध हुआ है।

लवणीय व क्षारीय भूमियों में फसल प्रबंधन :

लवणीय व क्षारीय भूमियों की उत्पादकता व उर्वराशक्ति को बनाए रखने हेतु कुछ सस्य कृषि–क्रियाओं को अपनाना अति आवश्यक है। तभी हम इन समस्याग्रस्त भूमियों को फसलोत्पादन हेतु उपयोगी बना सकते हैं।

- भूमि सुधार के लिए सर्वप्रथम खेत को अच्छी तरह समतल करके मेड़बंदी करनी चाहिए।
- उपयुक्त फसल–चक्र अपनाना चाहिए। अधिक गहरी जड़ों वाली फसलों के बाद कम गहरी जड़ों वाली फसलों को उगाना चाहिए।
- ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाए रखने हेतु गोबर की खाद, कम्पोस्ट, मुर्गी खाद, हरी खाद, फसल अवशेषों इत्यादि का समय–समय पर प्रयोग करते रहना चाहिए।
- जिन क्षेत्रों का पानी लवणीय व क्षारीय स्वभाव का हो, वहां पर सिंचाई की ड्रिप अथवा फव्वारा विधि का प्रयोग करना चाहिए।
- लवणीयता व क्षारीयता सहन करने वाली फसलों को उगाना चाहिए जिनका विवरण सारणी–2 में दिया गया है। इसके साथ–साथ फसलों की लवणीय व क्षारीयरोधक किस्मों का चयन करना चाहिए।

सारणी–2 : लवणीय व क्षारीय भूमियों के लिए सहनशील फसलें

कम सहनशीलता	मध्यम सहनशीलता
सेम, क्लोवर, नाशपाती, सेब, संतरा, ग्रेपफ्रूट, बेर, मूली, सेलेरी, नींबू	गेहूं, धान, मक्का, ज्वार, सूरजमुखी, स्वीट गेहूं, धान, मक्का, ज्वार, सूरजमुखी, स्वीट क्लोवर(सफेद), रिजका, अनार, अंगूर, खरबूजा, टमाटर, बंद गोभी, फूल गोभी, सलाद, गाजर, प्याज, मटर, खीरा

आखिर मृदा पीएच मान पौधों के लिए इतना महत्वपूर्ण क्यों है ?

एस. एस. शर्मा, प्रेरणा डोगरा, के. के. शर्मा, बबीता मीना एवं अजय कुमार यादव
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

मिट्टी का पी.एच. मान

यह ऐसा मानक है जिसके द्वारा मृदा की अभिक्रिया का पता चलता है, कि मिट्टी सामान्य, अम्लीय या क्षारीय प्रकृति की है. मृदा पी.एच. मिट्टी में होने वाली कई रासायनिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है । इसके घटने या बढ़ने से पादपों की वृद्धि पर असर पड़ता है । मिट्टी का पीएच मिट्टी की अम्लता या क्षारीयता का एक पैमाना है। समस्याग्रस्त क्षेत्रों में फसल की उपयुक्त किस्मों की संस्तुति की जाती है, जो कि अम्लीयता और क्षारीयता को सहन करने की क्षमता रखती हो। मृदा पी.एच. मान 6.5 से 7.5 की बीच पौधों द्वारा पोषक तत्वों का सबसे अधिक ग्रहण किया जाता है । पी.एच. मान 6.5 से कम होने पर भूमि अम्लीय और 7.5 से अधिक होने पर भूमि क्षारीय कहलाती है।

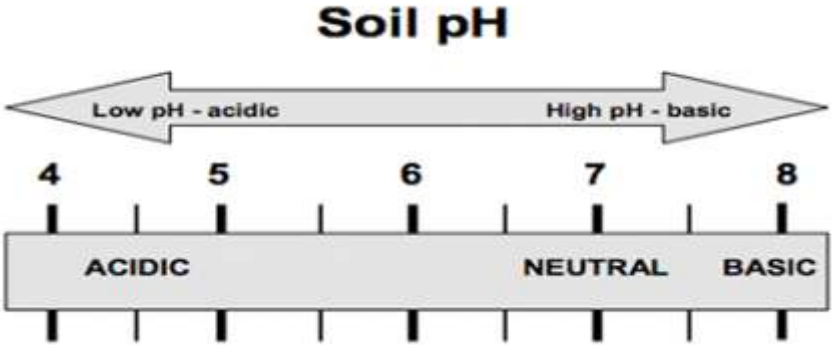

पौधों के लिए मिट्टी का पीएच मान क्यों महत्वपूर्ण है

मिट्टी का आदर्श पीएच मान 6 से 7 के बीच (थोड़ा अम्लीय) माना जाता है। इस पीएच रेंज में ज्यादातर पोषक तत्व पौधों के लिए आसानी से उपलब्ध हो पाते हैं। साथ ही मिट्टी में मौजूद छोटे–छोटे सूक्ष्मजीव जो मिट्टी को उपजाऊ बनाने का काम करते हैं, वे भी इस पीएच रेंज में सबसे अच्छे से सक्रीय होते हैं। इस तरह मिट्टी का पीएच, सही होने पर पौधों की बढ़वार अच्छे से होती रहती है। मिट्टी के पीएच मान में परिवर्तन होने पर पोषक तत्वों की उपलब्धता में कमी आती है।

जैसे उदाहरण के लिए नाइट्रोजन एक बहुत महत्त्वपूर्ण पोषक तत्व है, जो 5.5 से 7 पीएच रेंज वाली मिट्टी में आसानी से उपलब्ध होता है। मिट्टी का मान पीएच 7.2 से अधिक होने पर उसमें मौजूद नाइट्रोजन, गैस बनकर उड़ जाती है। जरूरी पोषक तत्वों की कमी हो जाने से पौधों में कई रोग भी होने लगते हैं। मिट्टी के पीएच मान में बदलाव से उसमें पाए जाने वाले सूक्ष्म जीवाणु निष्क्रिय होने लगते हैं। इसलिए मिट्टी का पीएच मान एक निश्चित सीमा में होना महत्वपूर्ण होता है।

मिट्टी के पीएच मान का पौधे की बढ़वार पर क्या असर पड़ता है

पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए मिट्टी के पीएच मान का ठीक होना बहुत जरूरी है। कम या अधिक पीएच कई पौधों की ग्रोथ पर बुरा असर डाल सकता है।

1. अम्लीय मिट्टी (मृदा) का पौधों पर प्रभाव

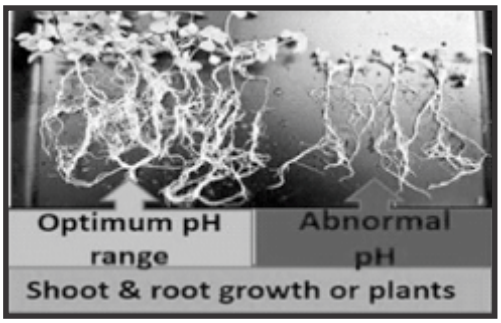

7 से कम पीएच मान वाली मिट्टी को अम्लीय मिट्टी कहा जाता है। जैसे–जैसे पीएच रेंज कम होती जाती है, मिट्टी की अम्लीयता बढ़ती जाती है। जब मिट्टी ज्यादा अम्लीय हो जाती है, तब पौधों पर उसके निम्न प्रभाव दिखाई देते हैं, जैसे पौधे की मिट्टी में नाइट्रोजन, फास्फोरस, कैल्शियम, मैग्नीशियम जैसे मुख्य पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। इससे पौधों की जड़ें ठीक से बढ़ नहीं पाती हैं, पौधे कमजोर होने लगते हैं तथा उनमें फल व फूल नहीं लगते हैं। मिट्टी की संरचना में सुधार करने वाले लाभकारी सूक्ष्मजीव निष्क्रिय हो जाते हैं, जिससे मिट्टी की गुणवत्ता खराब होने लगती है। ज्यादा अम्लीय मिट्टी में एल्युमीनियम और आयरन की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे पौधों की बढ़वार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। पौधों की पत्तियों का पीला पड़ना, पौधे की बढ़वार रुकना और पैदावार में कमी आना आदि मिट्टी की अम्लीयता अधिक होने के लक्षण होते हैं ।

2. मिट्टी की क्षारीयता का पौधों पर प्रभाव

7 से अधिक पीएच मान वाली मिट्टी को क्षारीय मिट्टी कहा जाता है। जैसे–जैसे पीएच मान बढ़ता जाता है, मिट्टी की क्षारीयता बढ़ती जाती है। जब मिट्टी अधिक क्षारीय (9 से अधिक पीएच) हो जाती है, तब पौधों पर उसके निम्न प्रभाव दिखाई देते हैं, जैसेः

- क्षारीय मिट्टी में अत्यधिक मात्रा में सोडियम और मैग्नीशियम होता है। इन पोषक तत्वों की अधिकता से पौधों की जड़ों को पोषक तत्वों को अवशोषित करने में कठिनाई होती है, जिससे पौधे की बढ़वार रुक जाती है।
- मिट्टी में नाइट्रोजन, फास्फोरस, जिंक, मैंगनीज, आयरन पोषक तत्वों की कमी हो जाती है।
- सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता में कमी आती है।
- मिट्टी अधिक चिकनी और कठोर हो जाती है।

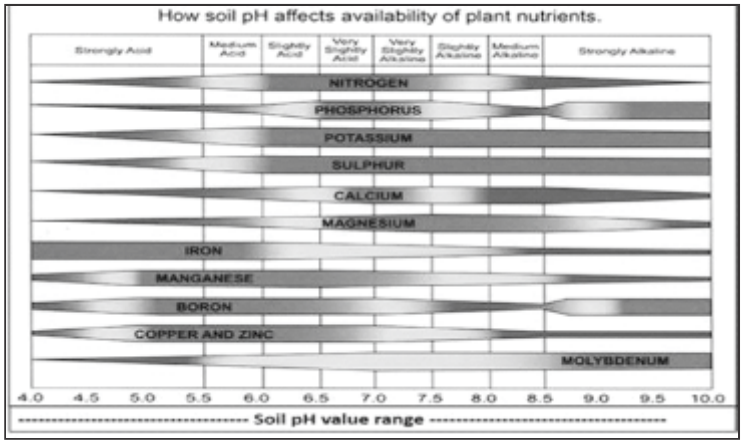

उपरोक्त चित्र में गहरा रंग मिट्टी में पौधों की जड़ों को संबंधित पोषक तत्वों की इष्टतम उपलब्धता को दर्शाता है

मिट्टी का पीएच कैसे चेक करें

आजकल ऑनलाइन स्टोर पर मिट्टी का पीएच मान चेक करने की किट उपलब्ध हैं, जिनकी मदद से घर पर आसानी से मिट्टी का पीएच मान पता कर सकते हैं। इसके अलावा आप मिट्टी को मृदा प्रयोगशाला में भिजवा कर भी उसका पीएच पता करवा सकते हैं।

क्रमांक संख्या	फसल	इष्टतम पीएच रेंज	क्रमांक संख्या	फसल	इष्टतम पीएच रेंज
1	बीन्स	6.0-7.5	21	आलू	4.8-6.5
2	चुकंदर	6.0-7.5	22	कद्दू	5.5-7.5
3	ब्रोक्कोली	6.0-7.0	23	मूली	6.0-7.0
4	ब्रसल स्प्राउट	6.0-7.5	24	पालक	6.0-7.5
5	पत्तागोभी	6.0-7.0	25	स्क्वाश	5.5-7.5
6	गाजर	5.5-7.0	26	टमाटर	5.5-7.5
7	फूलगोभी	5.5-7.5	27	मिर्च	5.5-7.0
8	अजमोद/धनिया	5.8-7.0	28	सोयाबीन	6.5-7.5
9	हरा प्याज/प्याज	6.0-7.0	29	गेहूं	6.3-7.0
10	खीरा	5.5-7.0	30	धान	5.5-7.5
11	लहसुन	5.5-8.0	31	खीरा	6.0- 7.0
12	लेट्यूस/सलाद पत्ता	6.0-7.0	32	खरबूजा	6.0- 7.5
13	मटर	6.0-7.5	33	गेंदा	6.0 -7.5
14	शिमला मिर्च	5.5-7.0	34	तरबूज	6.0-7.5
15	मक्का	5.8-7.5	35	सूरजमुखी	6.0 -7.5
16	चारा फसल	5.8-7.5	36	मूंगफली	6.5-7.0
17	गन्ना	5.0-8.5	37	अनार	5.5-8.5
18	अमरुद	5.0-7.5	38	सहजन	6.5-8.0
19	आम	5.5-7.5	39	अंगूर	6.0-8.0
20	पपीता	5.5 -7.5	40	चना	6.0-7.8

ऊपर, फसलों के लिए संकेतित इष्टतम पीएच रेंज हैं। फसल नियोजन के दौरान मृदा परीक्षण विश्लेषण से फसल को विशेष मिट्टी में लगाने का निर्णय लेने में मदद मिलेगी। इसके अलावा अत्यधिक पीएच वाली मिट्टी को उपयुक्त रासायनिक और जैविक संशोधन एजेंटों के साथ कुछ हद तक ठीक किया जा सकता है। हालाँकि बहुत सारे कार्बनिक पदार्थ, जैविक एजेंट जैसे जैवउर्वरक जीवाणु और फफूंद मिट्टी के पीएच को बनाए रखने में बहुत मदद कर सकते हैं।

अतिरिक्त आमदनी के लिए ढींगरी मशरूम की खेती

जे. के. बाना, एम. एल. मीना एवं आर. के. मीना
सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

भारत में मशरूम को खुम्भ, खुम्भी, भभोड़ी और गुच्छी भी कहा जाता है। इसमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेड, खनिज लवण और विटामिन जैसे पोषक तत्वों की भरमार हैं, इस वजह से भारत में इसकी मांग ज्यादा है। घरों में सब्जी के रूप में इस्तेमाल होने के साथ–साथ कम्पनिया भी मशरूम के कई उत्पादन बनाकर, भारतीय बाजार में बेचती है। मशरूम के पापड़, जिम का सप्लीमेन्ट्री पाउडर, अचार, बिस्किट, टोस्ट, कूकीज, नूडल्स, जैम (अंजीर मशरूम) सॉस, सूप, खीर, ब्रेड, चिप्स, सेव, चकली भारत में मुख्य खाद्य उत्पादों के रूप में प्रचलित हैं।

तीन तरह के मशरूम ज्यादा प्रचलित हैं, जिनमें ढींगरी, ओयस्टर मशरूम (Oyster mushroom), बटन मशरूम (Button Mushroom) और दूधिया मशरूम / मिल्की (Milky Mushroom) शामिल है। भारत में ढींगरी / ओयस्टर मशरूम सबसे ज्यादा प्रचलित है। इसकी खेती को वर्षभर की जाती है। भारत के कई राज्यों में इसकी खेती की जाती है। जिनमें तमिलनाडु और उड़ीसा अग्रिम है। वहीं राजस्थान, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल, केरल, हरियाणा और गुजरात जैसे राज्यों में भी ढींगरी मशरूम की खेती की जाती है।

अनुकूल खेती का समय

ढींगरी / ओएस्टर मशरूम को नमी और ठंडक की आवश्यकता होती है। सितम्बर से नवम्बर तक का मौसम इसके लिए उपयुक्त माना गया है, लेकिन भारत में पूरे साल ओएस्टर मशरूम की खेती होती है। आज दुनिया में इसकी लगभग 8,00,00 टन प्रति वर्ष उपज होती है। यह बटन तथा शिराके मशरूम के बाद दुनिया की तीसरी सबसे ज्यादा उगायी जाने वाली मशरूम है। आज हमारे देश में इसकी व्यावसायिक खेती पश्चिमी, दक्षिणी तथा उत्तर पूर्व राज्यों में हो रही है। लेकिन हमारे देश की जलवायु इसकी खेती के लिए बहुत ही अनुकूल है तथा आने वाले समय में हमारे देश में भी इसके उत्पादन में वृद्धि की बहुत संभावनायें है।

ओएस्टर (ढींगरी) मशरूम उत्पादन की विधि : ढींगरी मशरूम उत्पादन करने के लिए सबसे पहले हमें उत्पादन कक्ष की आवश्यकता पड़ती है। आप इन कक्षों का निर्माण बांस, कच्ची ईंटों, पालीथीन तथा धान या अन्य फसल के पुआल से कर सकते है। इन उत्पादन कक्षों में खिड़की तथा दरवाजों पर जाली लगी होनी चाहिए। ये किसी भी साईज के बनाये जा सकते है। जैसे 18 फीट (लम्बा) x 15 फीट (चौडा) x 10 फीट (उंचा) के कमरे में 300 बैग रखे जा सकते है। इस बात का ध्यान रखा जाए कि हवा के उचित प्रबंधन के लिए दो बड़ी खिडकियों तथा दरवाजे के सामने भी एक खिड़की होनी चाहिए। खिड़कियों तथा दरवाजों पर बारीक लोहे की जाली लगी होनी चाहिए जिससे छोटे कीडे व मक्खियां इत्यादि उत्पादन कक्षों में घुस नहीं पाये। उत्पादन कक्ष में नमी बनाये रखने के लिए एयर कूलर लगाया जाना बेहतर होगा।

1. **भूसा तैयार करना** : ढींगरी का उत्पादन साधारण किसी भी प्रकार के कृषि फसलों के व्यर्थ अवशेष जैसे पुआल, भूसा, जो कि गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का, गन्ना, सरसों, मूंगफली, सोयाबीन, सूरजमूखी फसलों से प्राप्त किये जाते हैं। इनका प्रयोग कर किया जा सकता है। भूसा या पुआल पुराना सड़ा गला नहीं होना चाहिए। जिन पौधों के अवशिष्ट सख्त तथा लम्बे होते हैं उन्हें मशीन द्वारा लगभग 2 से 3 सेमी. साईज का काट लिया जाता है। कृषि अवशेषों में कई तरह के हानिकारक सूक्ष्मजीवी फंफूद, बेक्टीरिया तथा अन्य जीवाणु पाये जाते हैं। अतः सर्वप्रथम कृषि अवशेषों को जीवाणु रहित किया जाता है। जिसके लिए निम्नलिखित कोई भी विधि द्वारा कृषि अवशेषों को उपचारित किया जा सकता है।

   (अ) गर्म पानी उपचार विधि : इस विधि में कृषि अवशेषों को छिद्रदार जूट के थैले या बोरे में भर कर रात भर गीला किया तथा अगले दिन इस पानी को गर्म कर (60–65° सेल्सियस) लगभग 20–30 मिनट उपचारित किया जाता है।

   (ब) रासायनिक विधि : इस विधि में कृषि अवशेषों को विशेष प्रकार के कृषि रसायन या दवाईयों से जीवाणु रहित किया जाता है। इस विधि में एक 200 लीटर ड्रम या टब में 90 लीटर पानी में लगभग 12–14 किलो सूखे भूसे को गीला कर दिया जाता है। तत्पश्चात एक प्लास्टिक की बाल्टी में 10 लीटर पानी तथा 8 ग्राम बाविस्टिन तथा फार्मेलीन (125 मि.ली.) का धोल बना कर भूसे वाले ड्रम के ऊपर उड़ेल दिया जाता हैं तथा ड्रम को पॉलीथीन शीट या ढक्कन से अच्छी तरह से बंद कर दिया जाता है।

   लगभग 12–14 घंटे बाद उपचारित भूसे को ड्रम से बाहर किसी प्लास्टिक की शीट या लोहे की जाली पर डाल कर 2–4 घंटों के लिए छोड दिया जाता है। इससे अतिरिक्त पानी बाहर निकल जायेगा तथा फार्मेलीन की गंध भी खत्म हो जायेगी।

   (स) पास्तुरीकरण : यह विधि उन मशरूम उत्पादों के लिए उपयुक्त है जो बटन मशरूम की खाद पास्चूराईजेशन टनल में बनाते है। इस विधि में भूसे को गीला कर लगभग 4 फीट चोड़ी आयताकार ढेर बना दी जाती है। ढेरी को दो दिन के बाद तोड़ कर फिर से नई ढेरी बना दी जाती है। इस प्रकार से लगभग चार दिन बाद भूसे का तापक्रम 55 से 65° सेल्सियस हो जायेगा तथा अब भूसे पास्तुरीकण टनल में भर दिया जाता है। टनल का तापमान ब्लोअर द्वारा एक समान करने के बाद उसमें बॉयलर से भाप देकर भूसे का तापमान 60–65 डिग्री से. के बीच लगभग चार घंटे रखने के बाद जब भूसा ठंडा हो जाए तब बीज मिला दिया जाता है।

2. **बीजाई करना** : ढींगरी का बीज हमेशा ताजा प्रयोग करना चाहिए जो 30 दिन मे ज्यादा पुराना नही होना चाहिए। भूसा तैयार करने से पहले ही बीज खरीद लेना चाहिए तथा 1 क्विंटल सूखे भूसे के लिए 10 किलो बीज की जरूरत होती है। कई बार किसान भाई कम बीज डालते है। जिससे माइसीलियम के फैलने में ज्यादा समय लग जाता है। गर्मियों के मौसम में प्लूरोट्स साजोर काजू, फ्लू. फ्लेवीलेट्स, फ्लू. सेपीडस, प्लू. जामोर को उगाना चाहिए। सर्दियों में जब वातावरण का तापमान 20 डिग्री सेल्सियस से नीचे हो तो प्लूरोटस फ्लोरिडा, प्लू. कोर्नुकोपीया का चुनाव करना चाहिए। बीजाई करने के दो दिन पहले कमरे को 2 प्रतिशत फार्मेलीन से उपचारित कर लेना चाहिए। 4 किलो गीले भूसे में लगभग 100 ग्राम बीज अच्छी तरह से मिलाकर पालीथीन की थैलियों (40–45 से.ल. x 30–35 से.चो.) में भर देना चाहिए। पॉलीथीन को मोड़कर बंद कर देना चाहिए जिससे भूसे की नमी बनी रहे। पॉलीथीन में लगभग 10–12 छेद चारों तरफ तथा पैंदें में कर देना चाहिए जिससे बैग का तापमान 30 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा नहीं जाए।

3. **फसल प्रबंधन** : बीजाई करने के पश्चात थैलियों को एक उत्पादन कक्ष में बीज फैलने के लिए रख दिया जाता है। थैलियों को सप्ताह में एक बार अवश्य देख लेना चाहिए कि बीज फैल रहा है या नहीं। अगर किसी बैंग में हरा, काला या नीले रंग की फंफूद या मोल्ड दिखाई दे तो ऐसे बैग को उत्पादन कक्ष से बाहर निकाल कर दूर फेंक नष्ट कर देना चाहिए। बीज फैलते समय पानी, हवा या प्रकाश की जरूरत नहीं होती हैं अगर बैंग तथा कमरे का तापमान 30 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा बढ़ने लगे तो कमरे की दीवारों तथा छत पर पानी का छिड़काव दो से तीन बार करें या एयर कूलर चला दें इसका ध्यान रखना चाहिए कि बैगो पर पानी जमा न हो। लगभग 15 से 25 दिनों में मशरूम का कवक जाल सारे भूसे पर फैल जायेगा तथा बैग सफेद नजर आने लगेंगें। इस स्थिति में पॉलीथीन को हटा लेना चाहिए। गर्मियों के दिनों में पॉलीथीन को पूरा नहीं हटाना चाहिए। क्योंकि बैगो में नमी की कमी हो सकती है। पॉलीथीन हटाने के बाद फलन के लिए कमरे में तथा बैगो पर दिन में दो से तीन बार पानी का छिड़काव करना चाहिए। कमरे में लगभग 6 से 8 घंटे तक प्रकाश देना चाहिए जिसके लिए खिडकियों पर शीशा लगा होना चाहिए या कमरों में ट्यूब लाईट का प्रबंधन होना चाहिए। उत्पादन कमरों में प्रतिदिन दो से तीन बार खिड़कियां खुली रखनी चाहिए जिससे कार्बन डाइआक्साईड की मात्रा 800 पीपीएम से अधिक न हो ज्यादा कार्बनडाइऑक्साईड होने से ढींगरी का डंटल बडा हो जायेगा तथा छतरी छोटी रह जाती है। बैगों को खोलने के बाद लगभग एक सप्ताह में मशरूम की छोटी–छोटी कलिकाएं बनने लग जायेगी जो चार से पॉच दिनों में पूर्ण आकार ले लेती है।

4. **मशरूम की तुड़ाई करना** : जब ढींगरी पूरी तरह से परिपक्व हो जाए, तब इनकी तुडाई की जानी चाहिए। ढींगरी की छतरी के बाहरी किनारे ऊपर की तरफ मुड़ने लगे तो ढींगरी तोड़ने लायक हो गयी है। तुडाई हमेशा पानी के छिडकाव से पहले करनी चाहिए। मशरूम तोड़ने के बाद डंटल के साथ लगे हुए भूसे को चाकू से काटकर हटा देना चाहिए। पहली फसल के 8–10 दिन बाद दूसरी फसल आयेगी, जो पहले फसल की कुल उत्पादन का लगभग आधी या उससे ज्यादा होती है। इस तरह तीन फसलों तक उत्पादन ज्यादा होता है। उसके बाद बैगों को किसी गहरे गड्डे में डाल देना चाहिए जिससे उसकी खाद बन जायेगी तथा उसे खेतों में प्रयोग किया जा सकता है। जितनी भी व्यवसायिक प्रजातियां है उनमें एक किलो सूखे भूसे से लगभग 700 से 800 ग्राम तक पैदावार मिलती है।

5. **सावधानियां** : ढींगरी के फलन में अत्यधिक मात्रा में छोटे बीजाणु या स्पोर्स बनते हैं जिन्हें सुबह उत्पादन कक्ष में धूऐं की तरह देखा जा सकता है। इन बीजाणुओं से अक्सर काम करने वाले लोगों को एनर्जी हो सकती है। अतः जब भी ढींगरी तोड़ने उत्पादन कक्ष में प्रातः जाए तो खिड़की दरवाजे इत्यादि दो घंटे पहले खोल देने चाहिए तथा नाक पर मास्क या कपड़ा लगाकर कमरों में जाना चाहिए।

6. **भंडारण उपयोग** : ढींगरी तोड़ने के बाद उसे तुरंत पॉलीथीन में बंद नही करना चाहिए, अपितु लगभग दो घंटे कपडे पर फैलाकर छोड़ देना चाहिए जिससे की उसमें मौजूद नमी उड़ जाए। ताजा ढींगरी को एक छिद्रदार पॉलीथीन में भरकर रेफ्रिजरेटर में दो से चार दिन तक रखा जा सकता है। ढींगरी को ओवन में या धूप में सुखा जा सकता है। ढींगरी के विभिन्न प्रकार के व्यंजन जैसे ढींगरी मटर, ढींगरी आमलेट, पकोड़ा या बिरयानी इत्यादि बनाया जा सकता है। सूखी हुई ढींगरी का प्रयोग भी सब्जी के लिए किया जा सकता है। इसलिए इसे थोडी देर गर्म पानी में डालकर प्रयोग किया जा सकता है। ताजा ढींगरी का अचार तथा सूप भी बहुत स्वादिष्ट बनाया जा सकता है।

रेडी स्टूडेंट्स के द्वारा मशरूम उत्पादन के कुछ तस्वीर

रात भर के लिए प्लास्टिक के ड्रम में भूसा रखनाफॉर्मेलिन का घोल

फॉर्मेलिन का घोल

प्लास्टिक ड्रम को रात भर के लिए पॉलिथीन शीट से ढक देना

भूसे को सुखाने की तैयारी

प्लास्टिक बेग भरना

मशरूम का स्पॉन

स्पॉन को भूसे में मिलाना

अंतिम उत्पाद–ऑयस्टर मशरूम

कार्बन क्रेडिट : किसानों के लिए आय का नया अवसर

शीला खर्कवाल[1], बसंत कुमार भींचर[1] एवं प्रियंका कँवर[2]

[1]सहायक आचार्य, [2]शोध छात्र, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

आज की दुनिया में जलवायु परिवर्तन एक बड़ी समस्या बन चुका है। इसे नियंत्रित करने के लिए कई उपाय किए जा रहे हैं, जिनमें से एक महत्वपूर्ण उपाय "कार्बन क्रेडिट" है। यह एक ऐसा साधन है जिससे न केवल पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सकता है, बल्कि किसान भी इससे आर्थिक लाभ कमा सकते हैं।

कार्बन क्रेडिट क्या है ?

कार्बन क्रेडिट एक प्रकार की व्यापारिक प्रणाली है जिसमें कंपनियों, उद्योगों और व्यक्तियों को उनके कार्बन उत्सर्जन को कम करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। अगर कोई संगठन या व्यक्ति वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करता है या अवशोषित करता है, तो उसे एक कार्बन क्रेडिट दिया जाता है। यह क्रेडिट बाजार में बेचा जा सकता है, जिससे आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

किसानों के लिए कार्बन क्रेडिट के फायदे

1. **अतिरिक्त आय का स्रोत** : किसान जैविक खेती, वृक्षारोपण, फसल अवशेष प्रबंधन और अन्य टिकाऊ कृषि तकनीकों को अपनाकर कार्बन क्रेडिट कमा सकते हैं और इसे कंपनियों को बेचकर अतिरिक्त आय अर्जित कर सकते हैं।
2. **मृदा की उर्वरता में सुधार** : जैविक खाद, हरी खाद और फसल चक्र अपनाने से न केवल मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है, बल्कि कार्बन अवशोषण की क्षमता भी बढ़ती है, जिससे कार्बन क्रेडिट प्राप्त करने का अवसर बढ़ जाता है।
3. **पर्यावरण संरक्षण में योगदान** : टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाने से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी आती है, जिससे जलवायु परिवर्तन की समस्या को कम किया जा सकता है।
4. **कृषि उत्पादों की मांग में वृद्धि** : जैविक और टिकाऊ कृषि उत्पादों की मांग तेजी से बढ़ रही है। कार्बन क्रेडिट के माध्यम से जैविक खेती को बढ़ावा देने से किसानों के उत्पादों की बाजार में मांग और कीमत दोनों बढ़ सकती हैं।
5. **सरकारी अनुदान और सहयोग** : कई सरकारी और गैर–सरकारी संगठन किसानों को कार्बन क्रेडिट के लिए तकनीकी सहायता और वित्तीय सहायता प्रदान कर रहे हैं।

किसान कैसे कार्बन क्रेडिट कमा सकते हैं ?

1 **संवहनीय कृषि तकनीकों को अपनाएं** : किसान न्यूनतम जुताई, कवर क्रॉपिंग, जैविक खेती और वृक्षारोपण जैसी तकनीकों को अपनाकर कार्बन क्रेडिट कमा सकते हैं।

2 **मान्यता प्राप्त एजेंसियों से पंजीकरण कराएं** : किसानों को कार्बन क्रेडिट के लिए मान्यता प्राप्त एजेंसियों से संपर्क कर अपना पंजीकरण कराना होगा।

3 **डेटा एकत्रित करें** : किसानों को अपने खेतों में किए गए सतत प्रयासों का डेटा एकत्रित करना होगा, ताकि वे कार्बन क्रेडिट के लिए आवेदन कर सकें।

4 **बाजार में बेचें** : प्राप्त कार्बन क्रेडिट को सरकार या निजी कंपनियों को बेचकर आर्थिक लाभ कमाया जा सकता है।

भारतीय सरकार की योजनाएँ

भारत सरकार ने किसानों को कार्बन क्रेडिट और पर्यावरण अनुकूल कृषि अपनाने के लिए कई योजनाएँ शुरू की हैं:

1 **नेशनल मिशन फॉर सस्टेनेबल एग्रीकल्चर** (NMSA) : इस योजना के तहत किसानों को टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाने के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है।

2 **प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि** (PM-KISAN) : जैविक और टिकाऊ कृषि अपनाने वाले किसानों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

3 **हरित कृषि योजना** : यह योजना कार्बन उत्सर्जन को कम करने और पर्यावरण अनुकूल कृषि को बढ़ावा देने के लिए चलाई गई है।

4 **मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना** : किसानों को उनकी मिट्टी की गुणवत्ता की जानकारी देने और टिकाऊ कृषि अपनाने में मदद करने के लिए यह योजना लागू की गई है।

5 **नेशनल इनोवेशन फॉर क्लाइमेट रेजिलिएंट एग्रीकल्चर** (NICRA) : यह योजना जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए वैज्ञानिक शोध और किसानों को सहायता प्रदान करती है।

कार्बन क्रेडिट किसानों के लिए आय का एक नया और सुनहरा अवसर प्रदान करता है। इससे न केवल आर्थिक लाभ हो सकता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी योगदान दिया जा सकता है। अगर सही जानकारी और तकनीकों का उपयोग किया जाए, तो किसान अपने कृषि कार्यों से अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं और एक स्थायी भविष्य की ओर कदम बढ़ा सकते हैं। भारतीय सरकार की योजनाओं का लाभ उठाकर किसान इस अवसर का अधिकतम उपयोग कर सकते हैं।

ब्लॉकचेन और कृषि : स्मार्ट खेती की नई दिशा

शिवराज कुमावत एवं शोभना बिश्नोई
विद्यावाचस्पति छात्र, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

खाद्य हानि और बर्बादी से निपटना एक तिहरी जीत का अवसर है जो किसानों को लाभान्वित करता है, खाद्य सुरक्षा को बढ़ाता है और कृषि –खाद्य प्रणालियों में स्थिरता सुनिश्चित करता है। वैश्विक स्तर पर 13.2 प्रतिशत फसल कटाई से लेकर खुदरा तक खाद्य हानि होती है और 17 प्रतिशत खुदरा और उपभोक्ता स्तर पर खाद्य बर्बादी होती है। इस प्रकार, उत्पादित खाद्य का लगभग 30 प्रतिशत नुकसान होता है (एफएओ, 2021)। कृषि आपूर्ति श्रृंखला प्रणाली में ब्लॉकचेन आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन (SCM) अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में एक आवश्यक व्यावसायिक प्रक्रिया है। एक श्रृंखला के माध्यम से उत्पादक से उपभोक्ता की आवश्यकता से जुड़ने के लिए विशिष्ट प्रक्रियाओं का उपयोग करता है। भोजन की बढ़ती मांग अपने साथ नई समस्याएं लेकर आती है, जैसे नकली उत्पाद जो विभिन्न चरणों में खाद्य आपूर्ति श्रृंखलाओं को खतरा पहुंचाते हैं। पारदर्शिता की कमी और कम दक्षता किसानों और उपभोक्ताओं को नुकसान में डालती है। भारत वैश्विक कृषि उत्पादन में दूसरे स्थान पर है, लेकिन वैश्विक कृषि निर्यात में इसकी हिस्सेदारी केवल 2.4 प्रतिशत है, जो इसे वैश्विक स्तर पर आठवें स्थान पर रखती है। आईसीएआर के अनुसार भारत में हर साल लगभग 74 मिलियन टन खाद्यान्न की हानि होती है, जो वर्ष 2022-23 के लिए खाद्यान्न उत्पादन का 22 प्रतिशत या कुल खाद्यान्न और बागवानी उत्पादन का 10 प्रतिशत है। सबसे बड़ा नुकसान जल्दी खराब होने वाली वस्तुओं से होता है, जिसमें पशुधन उत्पाद जैसे अंडे, मछली और मांस (22 प्रतिशत), फल (19 प्रतिशत) और सब्जियाँ (18 प्रतिशत) शामिल हैं। भारत में कृषि क्षेत्र में अतीत में कई समस्याएँ देखी गई हैं, जैसे किसानों के प्रति पारदर्शिता और जवाबदेही की कमी आदि। इन समस्याओं को दूर करने के लिए, कृषि व्यवसायों और किसानों की आय को मजबूत करने के लिए ब्लॉकचेन के क्षेत्र में प्रक्रिया, संचालन और समकालीन प्रथाओं की समझ की आवश्यकता है।
ब्लॉकचेन एक विकेन्द्रीकृत, वितरित लेज़र तकनीक है कृषि बाजार में ब्लॉकचेन तकनीक जैसे वितरित लेजर और स्मार्ट कॉन्ट्रैक्ट्स में कृषि–खाद्य उत्पादन और आपूर्ति श्रृंखलाओं में नकली उत्पादों को खत्म करने, उपभोक्ताओं को स्वस्थ उत्पाद सौंपने, व्यापारियों के बीच विश्वास पैदा करने और वैश्विक स्तर पर बेहतर जीवन को सक्षम बनाने की क्षमता है। ब्लॉकचेन तकनीक कृषि आपूर्ति श्रृंखलाओं में दक्षता में भी सुधार कर सकती है। आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में एक आवश्यक व्यावसायिक प्रक्रिया है।

कृषि आपूर्ति श्रृंखला में व्याप्त समस्याएँ

संसाधनों की कमी : दुनिया भर में, मिट्टी के स्वास्थ्य के साथ भूमि, पानी और मुद्दे दुर्लभ हैं। इनसे कृषि उत्पादकता और दक्षता में कमी आई है, जलवायु और स्थिरता के मुद्दों की एक नई नस्ल पैदा हुई है।

संवादहीनता : आपूर्ति श्रृंखला में किसानों और व्यवसायों की स्थिति बेहतर और अधिक संचार हो सकती है। यह अप्रभावी प्रबंधन, अत्यधिक अपशिष्ट और अक्षमताओं को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है।

अपर्याप्त समर्थन : पूरी तरह से आपूर्ति श्रृंखला में सुधार करने के लिए, सरकार को एक नियामक संस्था की स्थापना करके और वित्तीय सहायता के साथ–साथ पूर्व निर्धारित मानक, प्रोत्साहन और तकनीकी जानकारी प्रदान करके कार्रवाई करनी चाहिए। खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में विभिन्न हितधारकों के बीच अधिक सहयोग की आवश्यकता है।

कृषि में पता लगाने की क्षमता : किसी उत्पाद के विकास के हर पहलू को हर स्तर पर ट्रैक करने की क्षमता को ट्रैसेबिलिटी के रूप में जाना जाता है। उपभोक्ता और निर्माता आज अपने उत्पादों में उच्चतम गुणवत्ता चाहते हैं। उपभोक्ताओं को यह जानने का अधिकार है कि उनके उत्पाद कहां से आते हैं, जैविक कच्चा माल कहां से प्राप्त किया गया, उत्पादन के तरीके कितने टिकाऊ हैं और उत्पादकों को उचित हिस्सा। उत्पाद की गुणवत्ता और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए पारदर्शिता और पता लगाने की क्षमता की आवश्यकता है।

कृषि में ब्लॉकचेन तकनीक के लाभ

आपूर्ति श्रृंखला पारदर्शिता : ब्लॉकचेन कृषि उत्पादों के खेत से टेबल तक स्थानांतरण का पता लगा सकता है। यह पारदर्शिता सुनिश्चित करती है कि किसान, वितरक और उपभोक्ता सहित सभी हितधारक, उत्पाद की उत्पत्ति और आवाजाही को ट्रैक कर सकते हैं जो धोखाधड़ी को कम करता है और विश्वास को बेहतर बनाता है।

ट्रेसेबिलिटी में सुधार : ब्लॉकचेन पर आपूर्ति श्रृंखला के प्रत्येक चरण को रिकॉर्ड करके, दूषित या दोषपूर्ण उत्पादों को उनके स्रोत पर वापस ट्रैक करना आसान हो जाता है। यह खाद्य सुरक्षा को बढ़ा सकता है और यदि आवश्यक हो तो त्वरित रिकॉल में मदद कर सकता है।

उचित मूल्य निर्धारण और भुगतान : ब्लॉकचेन किसानों और खरीदारों के बीच सीधे लेन–देन की सुविधा प्रदान कर सकता है, जिससे बिचौलियों को खत्म किया जा सकता है। यह सुनिश्चित करता है कि किसानों को उनके उत्पाद और समय पर भुगतान के लिए उचित मूल्य मिले, जिससे शोषण कम हो।

स्मार्ट अनुबंध : स्मार्ट अनुबंध स्व–निष्पादित अनुबंध होते हैं जिनकी शर्तें सीधे कोड में लिखी होती हैं। कृषि में, वे पारदर्शिता और दक्षता सुनिश्चित करते हुए, माल की डिलीवरी जैसी पूर्वनिर्धारित शर्तों के आधार पर भुगतान और अन्य लेनदेन को स्वचालित कर सकते हैं।

भूमि स्वामित्व और रिकॉर्ड : ब्लॉकचेन भूमि स्वामित्व रिकॉर्ड को सुरक्षित रूप से संग्रहीत कर सकता है, जिससे विवाद और धोखाधड़ी कम होती है। पारदर्शी और अपरिवर्तनीय भूमि रिकॉर्ड स्पष्ट और सत्यापन योग्य स्वामित्व सुनिश्चित करते हैं, जो ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से लाभकारी हो सकता है।

कृषि वित्तपोषण और बीमा : ब्लॉकचेन किसानों के लिए ऋण और बीमा प्राप्त करने की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित कर सकता है। किसान के इतिहास और परिसंपत्तियों का पारदर्शी रिकॉर्ड प्रदान करके, ब्लॉकचेन वित्तीय सेवाओं तक तेज़ और अधिक विश्वसनीय पहुँच की सुविधा प्रदान कर सकता है।

किसानों की सौदेबाजी की शक्ति को बढ़ाएँ : ब्लॉकचेन द्वारा प्रदान की गई पारदर्शिता और पता लगाने की क्षमता किसानों को बाज़ार की माँग और मूल्य निर्धारण के रुझानों के बारे में जानकारी और अंतर्दृष्टि प्रदान करती है, जिससे मूल्य वार्ता के दौरान उनकी सौदेबाजी की शक्ति बढ़ती है।

कम लागत : ब्लॉकचेन बिचौलियों पर निर्भरता को कम करता है और आपूर्ति श्रृंखला प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करता है, जिससे किसानों के लिए परिचालन लागत कम होती है और लाभ मार्जिन बढ़ता है।

कम लागत : ब्लॉकचेन बिचौलियों पर निर्भरता को कम करता है और आपूर्ति श्रृंखला प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करता है, जिससे किसानों के लिए परिचालन लागत कम होती है और लाभ मार्जिन बढ़ता है।

पर्यावरणीय स्थिरता : कृषि में ब्लॉकचेन तकनीक के माध्यम से पर्यावरणीय स्थिरता प्राप्त करने के कुछ तरीके यानी ब्लॉकचेन आपूर्ति श्रृंखला पारदर्शिता को बढ़ाता है, वास्तविक समय ट्रैकिंग के माध्यम से खाद्य अपशिष्ट को कम करता है। यह स्थायी प्रबंधन के लिए पानी, उर्वरक और ऊर्जा की निगरानी करके संसाधन उपयोग को अनुकूलित करता है। इसके अतिरिक्त, ब्लॉकचेन सटीक कार्बन फुटप्रिंट को सक्षम बनाता है, तथा जवाबदेही और टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देता है।

कृषि में ब्लॉकचेन के नुकसान

दुरुपयोग : चिंताएं व्यक्त की गई हैं कि ब्लॉकचेन तकनीक का गलत इस्तेमाल या दुरुपयोग किया जा सकता है, जिससे खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। उदाहरण के लिए, निजी तौर पर रखे गए ब्लॉकचेन को हैक करना आसान है और कम सुरक्षित हैं।

शोध का अभाव : ब्लॉकचेन तकनीक को पूरी तरह से कृषि में शामिल करने से पहले कई मुद्दों का समाधान किया जाना चाहिए। कार्यान्वयन को टिकाऊ और न्यायसंगत खाद्य प्रणालियों को सक्षम करना चाहिए, जिससे उपभोक्ताओं को बेहतर निर्णय लेने की अनुमति मिल सके।

छोटे पैमाने : के किसान जिनके पास ब्लॉकचेन तकनीक का लाभ उठाने के लिए आवश्यक आकार, तकनीकी जानकारी और मापनीयता का अभाव है, वे पीछे छूट सकते हैं। जो किसान ब्लॉकचेन का खर्च वहन नहीं कर सकते, उन्हें इसे अपनाने में बड़ी बाधा का सामना करना पड़ता है जबकि खाता–बही स्थापित करना बहुत किफायती है, डेटा एकत्र करने की प्रक्रिया समय लेने वाली और महंगी हो सकती है।

डेटा गोपनीयता और सुरक्षा : कृषि डेटा की संवेदनशील प्रकृति के लिए मजबूत सुरक्षा उपायों की आवश्यकता होती है, और डेटा गोपनीयता और स्वामित्व के बारे में चिंताएँ हो सकती हैं।

प्रारंभिक लागत : और निवेश ब्लॉकचेन तकनीक के लिए आवश्यक प्रारंभिक निवेश छोटे से मध्यम पैमाने के किसानों को रोक सकता है।

कृषि आपूर्ति श्रृंखला में ब्लॉकचेन बाज़ार मध्यस्थों को लाभ

निर्माता / किसान

- ब्लॉकचेन आपूर्ति श्रृंखला के साथ प्रोसेसर और उपभोक्ताओं की दृश्यता प्रदान करता है, जिसमें पारंपरिक प्रणाली की कमी थी।
- कच्चे माल के सोर्सिंग डेटा को वास्तविक समय में उत्पादन और रसद के साथ दर्ज किया जाता है।
- कम लेनदेन लागत, बीमा और वित्त तक पहुंच, बेहतर कीमत और तेज भुगतान।
- सुरक्षित, टिकाऊ और नैतिक कृषि उत्पादन का प्रमाणीकरण प्रदान करने के लिए उत्पादों की उत्पत्ति निर्धारित की जा सकती है ।

प्रोसेसर

- इस चरण के दौरान किए गए प्रत्येक मूल्यवर्धन के माध्यम से उत्पाद अपने स्रोत से जुड़े होते हैं।
- संबंधित लॉट / उत्पादों का निरीक्षण और प्रमाणपत्र प्रदान किया जाता है।
- यह इस स्तर पर है कि एक उत्पाद पैक किया जाता है, संग्रहीत किया जाता है और वितरकों के पहनने के घरों में भेजा जाता है। ऐसे सभी डेटा को रीयल–टाइम में साझा किया जाता है।

वितरक

- अंतिम कृषि–खाद्य उत्पाद की विशेषताओं और भंडारण की स्थिति के संबंध में डेटा को ट्रैक करना और साझा करना।
- यह खुदरा विक्रेता के लिए पहले से योजना बनाने और निर्णय लेने के लिए रीयल–टाइम में होता है।
- खिलाड़ियों के बीच विश्वास और साझेदारी में सुधार करता है।

खुदरा विक्रेता और उपभोक्ता

- खुदरा विक्रेताओं को उत्पादों की बेहतर योजना और अनुरेखण में मदद करता है।
- नैतिक और स्थायी रूप से प्राप्त उत्पादों की मांग प्रीमियम पर बेची जा सकती है।
- यदि आवश्यक हो तो गुणवत्ता और सुरक्षा साबित की जा सकती है।

भविष्य के सुझाव

छोटे किसानों और ग्रामीण निवासियों को समायोजित करने के लिए ब्लॉकचेन कार्यान्वयन को विकेंद्रीकृत किया जाना चाहिए। सबसे पहले, भारत में विशेष रूप से किसान कम शिक्षित हैं। इसलिए, विभिन्न कृषि कार्यों की आवश्यकताओं के अनुरूप उपयोगकर्ता के अनुकूल, स्केलेबल और किफ़ायती ब्लॉकचेन समाधान विकसित करें। ब्लॉकचेन के ठोस लाभों को प्रदर्शित करने में मदद करने के लिए केंद्रित शैक्षिक आउटरीच और प्रदर्शनकारी परियोजनाएँ जिन लोगों में ब्लॉकचेन तकनीक में शामिल होने के लिए आवश्यक डिजिटल साक्षरता की कमी है, उन्हें शिक्षित किया जाना चाहिए। दूसरा, छोटे किसानों और ग्रामीण निवासियों को समायोजित करने के लिए ब्लॉकचेन कार्यान्वयन को विकेंद्रीकृत किया जाना चाहिए। अन्यथा, खाद्य सुरक्षा एक समस्या बनी रहेगी। कार्यान्वयन को टिकाऊ और न्यायसंगत खाद्य प्रणालियों को सक्षम करना चाहिए, जिससे उपभोक्ता बेहतर निर्णय ले सकें। तीसरा, अनुदान, सब्सिडी या साझेदारी के माध्यम से वित्तीय सहायता प्रारंभिक लागतों के बोझ को कम कर सकती है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) : डेयरी उद्योग में क्रांतिकारी नवाचार

उर्मिला चौधरी
सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

डेयरी संचालन में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) और मशीन लर्निंग के एकीकरण से दक्षता और उत्पादकता में तीव्र वृद्धि होगी। कृषि प्रबंधन से लेकर उत्पाद विकास तक, संपूर्ण डेयरी मूल्य श्रृंखला में एआई–संचालित सिस्टम तैनात किए जा रहे हैं। संयंत्र प्रबंधन में, एआई एल्गोरिदम उत्पादन कार्यक्रम को अनुकूलित कर सकते हैं, उपकरण रखरखाव की जरूरतों की भविष्यवाणी कर सकते हैं और लगातार उत्पाद की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए वास्तविक समय में प्रसंस्करण मापदंडों को समायोजित कर सकते हैं। स्वचालन का यह स्तर न केवल मानवीय त्रुटि को कम करता है बल्कि उत्पादन प्रक्रिया पर अधिक सटीक नियंत्रण की अनुमति भी देता है। आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन डिजिटलीकरण से लाभान्वित होने वाला एक अन्य क्षेत्र है। एआई–संचालित भविष्य कहनेवाला विश्लेषण अधिक सटीक रूप से मांग का पूर्वानुमान लगा सकता है, इन्वेंट्री स्तर को अनुकूलित कर सकता है और लॉजिस्टिक्स को सुव्यवस्थित कर सकता है। इसके परिणामस्वरूप अपशिष्ट कम होता है, लागत कम होती है और उपभोक्ताओं के लिए उत्पाद की ताजगी में सुधार होता है। शायद सबसे रोमांचक डेयरी उत्पाद नवाचार में एआई की संभावना है। मशीन लर्निंग एल्गोरिदम नए उत्पादों के विकास का मार्गदर्शन करने के लिए उपभोक्ता की प्राथमिकताओं, पोषण संबंधी रुझान और स्वाद प्रोफाइल पर बड़ी मात्रा में डेटा का विश्लेषण कर सकता है। नवाचार के लिए यह डेटा–संचालित दृष्टिकोण नए डेयरी उत्पादों को बाजार में लाने के लिए आवश्यक समय और संसाधनों को काफी कम कर सकता है।

डेयरी में एआई का अनुप्रयोग

डेयरी उद्योग में कई एआई अनुप्रयोग उपयोगी हैं जिनमें रोबोट, ड्रोन, सेंसर, 3डी प्रिंटिंग, आभासी वास्तविकता, ब्लॉकचेन और कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क (एएनएन) का उपयोग शामिल है।

रोबोट : डेयरी उद्योग ने दक्षता में सुधार और कार्य स्थान को कम करने और उत्पादन की लागत को कम करने के लिए विभिन्न अनुप्रयोगों के लिए रोबोट के उपयोग का लक्ष्य रखा है। शोधकर्ताओं ने बताया है कि मानव श्रृंखला की तुलना में रोबोट का उपयोग करके खाद्य उद्योग में उत्पादकता 25 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है। हालाँकि, डेयरी प्रसंस्करण में रोबोट के उपयोग की सीमाएँ हैं क्योंकि डेयरी उत्पाद नाजुक, आकार और संरचना में अत्यधिक परिवर्तनशील होते हैं। परिणामस्वरूप, रोबोट मुख्य रूप से डेयरी प्रसंस्करण की अंतिम पंक्ति तक ही सीमित हैं, जिसमें पिकिंग, पैकेजिंग और पैलेटाइजिंग जैसे कार्य शामिल हैं। जहां तक उत्पाद श्रृंखला का सवाल है, रोबोट का उपयोग मुख्य रूप से पनीर पैकेजिंग, पनीर स्लाइसिंग, दही स्लाइसिंग इत्यादि में किया जाता है । डेयरी उद्योग में रोबोट के एक और सबसे सफल अनुप्रयोग में दूध देने वाले रोबोट या स्वचालित दूध देने की प्रणाली शामिल है। गायों में इलेक्ट्रॉनिक टैग लगे होते हैं जो रोबोटों को दुधारू पशुओं की पहचान करने और दूध देने की प्रक्रिया शुरू करने में मदद करते हैं। जैसे ही दूध देने की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है, कप स्वचालित रूप से डिस्कनेक्ट हो जाते हैं और गाय रोबोटिक दूध देने वाले पार्लर से बाहर निकल जाती है। इस प्रक्रिया में कम मानवीय भागीदारी शामिल है जिससे श्रम व्यय में कमी, बेहतर प्रबंधन प्रथाएं और बेहतर दूध की गुणवत्ता शामिल है।

ड्रोन : ड्रोन के उपयोग से बड़े डेयरी फार्मों में झुंड की बेहतर निगरानी हुई। यह डेयरी गायों के स्वास्थ्य की निगरानी में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, यानी लंगड़ापन, बीमारी और बच्चे के जन्म से संबंधित किसी भी असामान्य व्यवहार का पता लगाने में मदद करता है। आज बड़े डेयरी फार्मों के पास अपने स्वयं के चारागाह हैं, जिन पर डेयरी गायें चरती हैं और इन चारागाह भूमि पर ड्रोन की मदद से निगरानी रखी जा सकती है।

सेंसर : उपयोग की जाने वाली सभी एआई प्रौद्योगिकियों में, सेंसर सबसे उन्नत तकनीकों में से एक है जिसने डेयरी उद्योग को बदल दिया है। डेयरी फार्मों में उपयोग किए जाने वाले सेंसर ज्यादातर कान, गर्दन, पैर या पूंछ पर लगाए जाते हैं। इन सेंसरों का उपयोग डेयरी गायों के स्वास्थ्य की निगरानी (तापमान की जांच, गर्मी का पता लगाना, ब्याने और चलने में कठिनाई) में किया जाता है। इसके अलावा, कुछ उन्नत सेंसरों को रोमिनेशन की निगरानी करने और रूमेन एसिडोसिस से संबंधित मुद्दों का पता लगाने के लिए रूमेन के अंदर उपचर्म रूप से प्रत्यारोपित या बोलस के रूप में प्रशासित किया गया है।

बायोसेंसर : खाद्य सुरक्षा मुद्दों के सख्त अनुपालन को पूरा करने के लिए आपूर्ति श्रृंखला से जुड़े खाद्य प्रदूषकों की निगरानी करने की आवश्यकता है ताकि उपभोक्ताओं को गुणवत्तापूर्ण सुरक्षित खाद्य पदार्थ सुनिश्चित किया जा सके। हाल ही में खाद्य पदार्थों में कीटनाशकों, एफ्लाटॉक्सिन, दवा के अवशेष, भारी धातुओं और माइक्रोबियल रोगजनकों जैसे विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों की निगरानी के लिए बायोसेंसर एक आशाजनक तकनीक के रूप में उभरे हैं। बायोसेंसर रासायनिक पदार्थ को मापकर काम करते हैं जो एनालिटिक्स के साथ प्रतिक्रिया करता है और सिग्नल उत्पन्न करता है जिसे ट्रांसड्यूसर पहचानता है और मापने योग्य पैरामीटर में परिवर्तित करता है।

3डी प्रिंटिंग : 3डी प्रिंटिंग एक नवाचार है जो डेयरी फॉर्मूलेशन और विनिर्माण प्रक्रियाओं में क्रांति लाने का वादा करता है। अधिकांश मुद्रण तकनीकों के लिए डिजाइन की डिजिटल फाइल बनाने के लिए मॉडलिंग सॉफ्टवेयर जैसे कंप्यूटर–एडेड डिजाइन (सी.ए.ड) उपकरण की आवश्यकता होती है। 3डी प्रिंटिंग तकनीक उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए डेयरी उत्पादों को अनुकूलित करने की पर्याप्त गुंजाइश प्रदान करती है। यह निर्माताओं को डेयरी उत्पादों को अनुकूलित आकार, रंग, स्वाद और अनुरूप पोषण संबंधी आवश्यकताओं के साथ डिजाइन और निर्माण करने की भी अनुमति देता है।

आभासी वास्तविकता (वीआर) : वीआर एक डिजिटल वातावरण है जो इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का उपयोग करके वास्तविक तरीके से बातचीत कर सकता है। डेयरी उद्योग में वीआर के अनुप्रयोग में फार्म संचालन में हस्तक्षेप किए बिना सुरक्षित दूरी से फार्म, विनिर्माण सुविधा या वितरण सुविधा का नेविगेशन शामिल है। ऐसी रिपोर्टें हैं कि गायों में वीआर चश्मे के उपयोग से दूध उत्पादन में सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और इसका कारण एक अनुकूल वातावरण तैयार करना है, जहां जानवर हरे–भरे चरागाह की कल्पना कर सकते हैं, जिससे उनकी चिंता कम हो जाती है और गायों की समग्र भावना बढ़ जाती है।

ब्लॉकचेन : असंगठित प्रणाली में डेयरी आपूर्ति श्रृंखला मानव स्वास्थ्य, पर्यावरणीय स्थिरता और कल्याण के मुद्दों पर गंभीर चिंता का विषय है। एक प्रभावी डेयरी आपूर्ति श्रृंखला प्रणाली न केवल उपभोक्ताओं द्वारा आवश्यक जानकारी को पूरा करती है बल्कि उपभोग किए जाने वाले डेयरी उत्पादों पर उपभोक्ताओं का विश्वास भी बढ़ाती है। ब्लॉकचेन तकनीक की शुरुआत के साथ, उपभोक्ता अब खेत से लेकर कांटे तक आपूर्ति श्रृंखला के सभी पहलुओं को जोड़ सकते हैं। यह उत्पादों की पता लगाने की क्षमता, खाद्य सुरक्षा के मुद्दों और पारदर्शिता में मदद करता है और इस प्रकार डेयरी उद्योग के प्रति उपभोक्ताओं का विश्वास बढ़ाता है।

कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क (एएनएन) : कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क को मानव मस्तिष्क द्वारा डेटा का विश्लेषण करने और उसे संसाधित करने के तरीके का अनुकरण करने के लिए डिजाइन किया गया है। मानव मस्तिष्क के समान जिसमें न्यूरॉन्स एक–दूसरे से जुड़े होते हैं, कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क में भी न्यूरॉन्स होते हैं जो कंप्यूटिंग प्रणाली की विभिन्न परतों में एक–दूसरे से जुड़े होते हैं। प्रयोगशाला में डेयरी उत्पादों की शेल्फ लाइफ की भविष्यवाणी एक बहुत ही बोझिल, महंगी और समय लेने वाली प्रक्रिया है और एएनएन डेयरी उत्पादों के मामले में त्वरित, विश्वसनीय और तेज दर पर विश्लेषण और शेल्फ लाइफ भविष्यवाणी सहित वांछित आउटपुट प्राप्त करने के लिए एक उपयोगी उपकरण साबित हुआ है। डेयरी उद्योग में एएनएन के व्यापक अनुप्रयोग में डेयरी उत्पादों (दही, प्रसंस्कृत पनीर, कलाकंद, बर्फी आदि) के शेल्फ जीवन की भविष्यवाणी, दही की समाप्ति तिथि को नियंत्रित करना, कम वसा वाले दही की प्रामाणिकता और दही में प्रोटीन सामग्री का निर्धारण, चॉकलेट में पोषण मानकों का निर्धारण, मक्खन की फैटी एसिड संरचना में मौसमी भिन्नता की जांच और स्विस चीज (पनीर) की रियोलॉजिकल विशेषताओं की जांच शामिल है।

रोबोट, ड्रोन, सेंसर, 3डी प्रिंटिंग, वर्चुअल रियलिटी, ब्लॉकचेन और कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क जैसी नई डिजिटल प्रौद्योगिकियों की शुरूआत से दक्षता बढ़ाने में काफी मदद मिलेगी और डेयरी उद्योग को बढ़ने और वैश्विक आबादी की मांगों को पूरा करने में मदद मिलेगी। डेयरी उद्योग में एआई तकनीक के अनुप्रयोग से आने वाले दिनों में पूरे डेयरी क्षेत्र में क्रांति आ जाएगी।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता : दूध उद्योग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग

भानुप्रिया चौधरी
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग विभिन्न उद्योगों में तेजी से बढ़ रहा है, और दूध उत्पादन व प्रसंस्करण के क्षेत्र में भी यह तकनीक महत्वपूर्ण बदलाव ला रही है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से दूध उद्योग में कई तरह की सुधार हो रहे हैं, जिनसे उत्पादन क्षमता, गुणवत्ता, और आर्थिक लाभ में वृद्धि हो रही है।

उत्पादन की निगरानी और सुधार :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग दूध उत्पादन में पशुओं की सेहत और उत्पादन क्षमता की निगरानी में किया जा रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक की मदद से पशुओं की गतिविधियों, आहार, और स्वास्थ्य का डेटा एकत्रित किया जाता है। यह डेटा पशुओं की बीमारी का पूर्वानुमान करने, उनकी पोषण आवश्यकताओं को समझने, और दूध उत्पादन को बढ़ाने में मदद करता है।

स्वचालन में वृद्धि :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता दूध के प्रसंस्करण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैसे–जैसे दूध का प्रसंस्करण बढ़ता है, स्वचालन की आवश्यकता बढ़ जाती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित स्वचालित मशीनें दूध को बेहतर तरीके से प्रोसेस करने में मदद करती हैं, जिससे गुणवत्ता की स्थिरता बनी रहती है। ये मशीनें दूध को सही तापमान पर स्टोर करती हैं और किसी भी प्रकार की गड़बड़ी को पहचानने के बाद तुरंत सुधारात्मक कदम उठाती हैं।

गुणवत्ता नियंत्रण :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से दूध की गुणवत्ता को नियंत्रित करने के लिए भी नई तकनीकों का विकास हुआ है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित सेंसर दूध की गुणवत्ता की निगरानी करते हैं, जैसे कि इसमें उपस्थित बैक्टीरिया की मात्रा, वसा का स्तर, और अन्य महत्वपूर्ण तत्वों की जाँच। यह तकनीक न केवल दूध की ताजगी सुनिश्चित करती है, बल्कि दूध की गुणवत्ता में सुधार करने में भी सहायक होती है।

वितरण और आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन :

दूध उद्योग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग वितरण और आपूर्ति श्रृंखला को कुशल बनाने के लिए भी किया जा रहा है। सिस्टम का उपयोग स्टॉक की स्थिति और मांग–आपूर्ति के पैटर्न का पूर्वानुमान करने में किया जा रहा है। यह निर्माता को यह समझने में मदद करता है कि कब और कहाँ पर दूध भेजा जाए, जिससे वितरण समय को कम किया जा सकता है और ग्राहक की संतुष्टि बढ़ाई जा सकती है।

पशुधन प्रबंधन और लागत में कमी :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से पशुधन प्रबंधन में भी सुधार हुआ है। पशुओं के स्वास्थ्य और दूध उत्पादन की निगरानी से जुड़ी जानकारी एकत्र करने से पशुपालकों को अपने काम को और अधिक कुशलता से करने का मौका मिलता है। इसके साथ ही, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक से लागत में भी कमी आती है, क्योंकि यह संसाधनों का बेहतर उपयोग करता है और बेवजह की लागतों को कम करता है।

पशुओं की स्वास्थ्य निगरानी :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का सबसे महत्वपूर्ण उपयोग दूध उत्पादन में कार्यरत पशुओं की स्वास्थ्य निगरानी में किया जाता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता सेंसर और उपकरणों की मदद से हर पशु के स्वास्थ्य की लगातार निगरानी की जाती है। पशुओं के व्यवहार, खाने की आदतें, और दूध उत्पादन के आंकड़े संकलित किए जाते हैं। इन डेटा का विश्लेषण करके कृत्रिम बुद्धिमत्ता यह अनुमान लगा सकता है कि कोई पशु बीमारी से ग्रसित है या फिर उसकी उत्पादकता में गिरावट आ रही है।

दूध की गुणवत्ता में सुधार :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग दूध की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए भी किया जा रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित सेंसर दूध के विभिन्न गुणों की निगरानी करते हैं जैसे कि दूध में बैक्टीरिया की उपस्थिति, वसा, प्रोटीन, लैक्टोज और खनिजों का स्तर। इससे दूध की ताजगी और स्वास्थ्यवर्धक तत्वों को बनाए रखा जाता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक से यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि दूध में किसी प्रकार का मिलावट न हो, जिससे उपभोक्ताओं को शुद्ध और गुणवत्तापूर्ण दूध मिल सके।

स्मार्ट डेयरी फार्मिंग :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग अब "स्मार्ट फार्मिंग" के रूप में हो रहा है, जिसमें हर कदम को स्वचालित किया गया है। यहां कृत्रिम बुद्धिमत्ता सेंसर, ड्रोन, और अन्य उपकरणों के माध्यम से खेतों की निगरानी की जाती है। ये उपकरण पशुओं की गतिविधियों, खेत की स्थिति, और अन्य कारकों पर निगरानी रखते हैं। स्मार्ट डेयरी फार्मिंग से न केवल उत्पादन बढ़ता है, बल्कि पर्यावरणीय प्रभाव भी कम होता है। स्मार्ट उपकरणों का उपयोग करके पानी और खाद का सही तरीके से उपयोग किया जाता है, जिससे पर्यावरण पर दबाव कम होता है और उत्पादन लागत में कमी आती है।

पशु चिकित्सा :

पशुओं का स्वास्थ्य दूध उत्पादन के लिए सबसे महत्वपूर्ण पहलू होता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरणों और तकनीकों से गायों और अन्य दूध देने वाले पशुओं के स्वास्थ्य की निगरानी की जा रही है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता सेंसर और ट्रैकिंग डिवाइस पशुओं के व्यवहार, गतिविधियों, और उनके शारीरिक संकेतों जैसे तापमान, हृदय गति, और गति को मापते हैं। इसके माध्यम से किसी भी संभावित बीमारी का पहले ही पता चल सकता है और समय रहते इलाज किया जा सकता है।

पशु प्रजनन और जीनोमिक्स :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग पशुओं के प्रजनन में भी किया जा रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित प्रणाली के जरिए यह विश्लेषण किया जाता है कि किस पशु का प्रजनन करना सबसे अधिक लाभकारी रहेगा। इसके लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता जीनोमिक डेटा का विश्लेषण करता है, जिससे यह निर्धारित किया जा सकता है कि कौन से गुण दूध उत्पादन, स्वास्थ्य, और अन्य आवश्यकताओं के लिए सबसे उपयुक्त हैं। यह प्रणाली पशुओं की प्रजनन दर बढ़ाने में मदद करती है और गुणवत्तापूर्ण प्रजनन को बढ़ावा देती है, जिससे दूध उत्पादन में वृद्धि होती है।

दूध उद्योग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का समावेश इस क्षेत्र में सकारात्मक बदलाव ला रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता की मदद से पशुओं के स्वास्थ्य की निगरानी, दूध के गुणवत्ता नियंत्रण, दूध का संग्रह और वितरण, स्मार्ट फार्मिंग, और प्रजनन से संबंधित कई कार्य अधिक प्रभावी और कुशल तरीके से किए जा रहे हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता न केवल दूध उत्पादन में वृद्धि करता है, बल्कि लागत में भी कमी लाता है और उपभोक्ताओं के लिए सुरक्षित और शुद्ध दूध की आपूर्ति सुनिश्चित करता है। भविष्य में, जैसे–जैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक में और सुधार होगा, यह दूध उद्योग को और अधिक उत्पादक और टिकाऊ बनाएगा।

भारतीय कृषि में ड्रोन और एआई तकनीकी का भविष्य

उपेन्द्र सिंह एवं नवीन कुमार
सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

आज की तेजी से बदलती दुनिया में, कृषि क्षेत्र में नई तकनीकों का समावेश हो रहा है। ड्रोन और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) तकनीकें किसानों के लिए बहुत लाभदायक साबित हो रही है। ड्रोन एक प्रकार की उड़ान मशीन है जिसे दूरस्थ नियंत्रक या स्वचालित सॉफ्टवेयर द्वारा संचालित किया जा सकता है। वहीं, एआई वह तकनीक है जिसमें मशीनें मानव मस्तिष्क की तरह सोचने और समस्याओं को हल करनें की क्षमता रखती है।

ड्रोन के प्रकार

ड्रोन कई प्रकार के होते है, जैसेः–

1. **मल्टीरोटर ड्रोनः** इनमें कई रोटर्स होते हैं, जो इन्हें अधिक स्थिरता और मूवमेंट नियंत्रण प्रदान करते है।
2. **फिक्स्ड–विंग ड्रोनः** ये ड्रोन प्लेन की तरह दिखते हैं और लम्बे समय तक उडान भर सकते है।
3. **हाइब्रिड ड्रोनः** यह मल्टीरोटर और फिक्स्ड–विंग ड्रोन का मिश्रण है, जो दोनों तकनीकों का लाभ उठाते है।

ड्रोन और एआई तकनीकी का कार्य सिद्धांत

ड्रोन अपने सैंसर और कैमरों का उपयोग करके खेतों की निगरानी करते है और उच्च गुणवत्ता वाली तस्वीरें और वीडियोज लेते है। इन तस्वीरों को एआई सॉफ्टेवेयर द्वारा विश्लेषित किया जाता है, जो फसलों की स्थिति, मिट्टी की गुणवत्ता और पानी की आवश्यकता का मूल्यांकन करते है। ड्रोन से आवश्यकतानुसार रसायनों का छिड़काव भी किया जा सकता है जिससे समय व लागत की बचत होती है। एआई तकनीकें डेटा को समझकर निर्णय लेने में मदद करती है, जिससे किसान सही समय पर सही निर्णय ले सकते है।

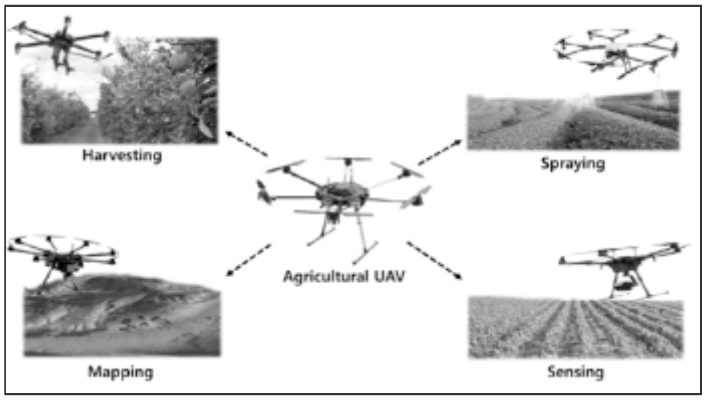

किसान अनुकूल एआई तकनीकें

कई एआई तकनीकें विशेष रूप से किसानों के लिए विकसित की गई हैं, जैसेः

1. फसल रोग निष्कर्ष
2. स्वचालित खरपतवार नियंत्रण प्रणाली
3. पशुधन स्वास्थ्य निगरानी फसल उपज भविष्यवाणी
4. स्वचालित सिंचाई प्रणाली
5. ड्रोन–सहायक हवाई निगरानी
6. आपूति श्रृंखला और मांग भविष्यवाणी

सरकारी नीतियाँ और उनके लाभ

भारत सरकार भी कृषि में नई तकनीकों के अपनाने के लिए कई नीतियाँ बना रही है। प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना, नमो ड्रोन दीदी योजना कृषि यंत्रीकरण योजना, और कृषि विज्ञान केन्द्र जैसी योजनाएं किसानों को तकनीकी सहायता और वित्तीय सहायता प्रदान करती है। ये नीतियाँ किसानों को आधुनिक तकनीकों का उपयोग करने के लिए प्रेरित करती है, जिससे उनकी पैदावर और आय में वृद्धि होती है।

ड्रोन और एआई तकनीकें भारतीय कृषि के भविष्य को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। ये तकनीकें न केवल किसानों के कार्य को आसान बनाती हैं, बल्कि उनकी पैदावार और आय में भी वृद्धि करती है। सरकार की सहायता से यह तकनीकी क्रांति भारतीय कृषि को एक नई दिशा में ले जा सकती है।

स्वचालित पारिस्थितिकीय खेती की विभिन्न पद्धतियां

पारुल, हिना सहीवाला एवं नरेन्द्र
सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

आज के युग में जहां तकनीकी उन्नति ने सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है, वहीं कृषि क्षेत्र में भी स्वचालन (Automation) का प्रयोग बढ़ रहा है। स्वचालित पारिस्थितिकीय खेती (Automated Ecological Farming) एक नई दिशा में अग्रसर हो रही है, जो पारंपरिक खेती की पद्धतियों को आधुनिक तकनीकों से जोड़कर अधिक टिकाऊ और पर्यावरण के अनुकूल बना रही है। इसमें प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखते हुए उत्पादन को बढ़ाने के लिए स्वचालित उपकरणों और प्रणालियों का उपयोग किया जाता हैं।

स्वचालन के माध्यम से पारिस्थितिकीय खेती

स्वचालित पारिस्थितिकीय खेती में कई आधुनिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है जो पारिस्थितिकीय सिद्धांतों के तहत काम करते हैं, और ये प्राकृतिक संसाधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग करती हैं। इन पद्धतियों में रोबोटिक्स, सेंसर आधारित प्रौद्योगिकी, ड्रोन, और डेटा एनालिटिक्स का उपयोग किया जाता है, जो खेती की प्रक्रिया को अधिक सटीक, लागत–प्रभावी और पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित बनाता है।

स्वचालित पारिस्थितिकीय खेती की प्रमुख पद्धतियां

स्वचालित पारिस्थितिकीय खेती में नई तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है, जो पारिस्थितिकीय सिद्धांतों के अनुसार काम करती हैं। इनमें रोबोटिक्स, सेंसर आधारित प्रणाली, ड्रोन और बिग डेटा एनालिटिक्स जैसी तकनीकें शामिल हैं। ये सब मिलकर पारिस्थितिकीय खेती को ज्यादा प्रभावी और पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित बनाते हैं।

1. स्मार्ट सिंचाई प्रणाली (Smart Irrigation Systems)

पानी की एक प्रभावी और नियंत्रित आपूर्ति स्वचालित पारिस्थितिकीय खेती का एक अहम हिस्सा है। स्वचालित सिंचाई प्रणाली में विभिन्न प्रकार के सेंसर लगाए जाते हैं, जो मिट्टी की नमी का माप लेते हैं और इसके आधार पर सिंचाई के लिए पानी की मात्रा निर्धारित करते हैं। इसके अलावा, मौसम की स्थितियों और फसल की वृद्धि को ध्यान में रखते हुए, यह प्रणाली अधिक सटीक रूप से पानी का वितरण करती है।

सेंसर आधारित प्रणाली : स्मार्ट सेंसर मिट्टी की नमी और तापमान को मापते हैं। जब मिट्टी में नमी का स्तर कम होता है, तो यह सिस्टम पानी का वितरण शुरू कर देता है, जिससे न केवल पानी की बचत होती है, बल्कि यह सुनिश्चित भी होता है कि फसल को सही समय पर सही मात्रा में पानी मिले।

वायुमंडलीय डेटा का उपयोग : मौसम की पूर्वानुमान प्रणाली के साथ समन्वय करके, यह सिस्टम सूखा या अत्यधिक वर्षा की स्थिति को पूर्वानुमानित कर सकता है, और उसी के आधार पर सिंचाई की मात्रा को नियंत्रित करता है।

2. ड्रोन और एरोनॉटिकल प्रौद्योगिकी (Drones and Aeronautical Technology)

ड्रोन का उपयोग खेतों में कीटनाशकों, उर्वरकों, और पानी का छिड़काव करने के लिए किया जा रहा है। यह तकनीक पारिस्थितिकीय खेती के लिए फायदेमंद है, क्योंकि यह कीटनाशकों के उपयोग को कम करता है और इसे अधिक सटीक रूप से लागू करता है।

फसल की निगरानी : ड्रोन खेतों का विस्तृत निरीक्षण करते हैं और पौधों के स्वास्थ्य की स्थिति का विश्लेषण करते हैं। इसके आधार पर, किसानों को सटीक जानकारी मिलती है, जैसे कि कौन से क्षेत्र में कीटों का प्रकोप हो रहा है, या मिट्टी में कोई खास पोषक तत्व की कमी है।

कीट प्रबंधन : ड्रोन के द्वारा कीटनाशकों का लक्षित छिड़काव किया जाता है, जिससे पर्यावरण पर न्यूनतम प्रभाव पड़ता है। यह कीटनाशकों का प्रभावी और नियंत्रित उपयोग सुनिश्चित करता है।

उर्वरक वितरण : ड्रोन का उपयोग उर्वरकों के सटीक छिड़काव के लिए भी किया जाता है। इससे उर्वरकों का अधिकतम उपयोग होता है, और मृदा की गुणवत्ता भी बनाए रहती है।

3. रोबोटिक्स और कृषि यंत्र (Robotics and Agricultural Machinery)

स्वचालित कृषि यंत्रों में रोबोट्स का उपयोग फसल की खेती से संबंधित कई कार्यों के लिए किया जाता है। ये रोबोटिक्स सिस्टम खेतों में समय और श्रम की बचत करते हुए काम को अधिक कुशलता से करते हैं।

स्वचालित निराई–गुड़ाई मशीनें : इन मशीनों का उपयोग पौधों के आसपास उगने वाले खरपतवार को हटाने के लिए किया जाता है। यह प्रक्रिया बिना किसी रासायनिक कीटनाशक के होती है, जिससे पर्यावरण को नुकसान नहीं होता और जैव विविधता बनी रहती है।

स्वचालित बुवाई यंत्र : बुवाई प्रक्रिया में रोबोट्स का इस्तेमाल किया जाता है, जो बीजों को निर्धारित दूरी और गहराई पर बुवाई करते हैं, जिससे फसल का समुचित और समान वितरण सुनिश्चित होता है।

कृषि यंत्रों का स्वचालन : ट्रैक्टर, हार्वेस्टर और अन्य कृषि यंत्रों को स्वचालित किया जा सकता है, जिससे इनका संचालन अधिक प्रभावी और दक्ष होता है। यह कृषि कार्यों को तेज और बेहतर बनाता है।

4. डेटा और सेंसर आधारित कृषि (Data and Sensor & Based Agriculture)

सेंसर और डेटा एनालिटिक्स का इस्तेमाल स्वचालित पारिस्थितिकीय खेती में किया जाता है ताकि मिट्टी की स्थिति, पौधों की वृद्धि, जलवायु, और पोषक तत्वों के बारे में सही जानकारी मिल सके।

मिट्टी सेंसर : मिट्टी की नमी, तापमान और पोषक तत्वों का स्तर मापने के लिए विभिन्न प्रकार के सेंसर का उपयोग किया जाता है। यह डेटा सीधे खेती के यंत्रों को भेजा जाता है, जो इसे आवश्यकतानुसार नियंत्रित करते हैं।

कृषि सॉफ्टवेयर : कृषि डेटा को एकत्रित करने के बाद, इसे कृषि सॉफ्टवेयर द्वारा प्रोसेस किया जाता है, जो निर्णय लेने में मदद करता है। यह सॉफ्टवेयर मौसम की भविष्यवाणी, कीट प्रबंधन, उर्वरक की आवश्यकता, और सिंचाई की आवश्यकता के बारे में सुझाव देता है।

5. एकीकृत कीट प्रबंधन (Integrated Pest Management & IPM)

स्वचालित पारिस्थितिकीय खेती में कीट प्रबंधन में रासायनिक कीटनाशकों का न्यूनतम उपयोग किया जाता है। इसके बजाय, प्राकृतिक शत्रुओं जैसे पक्षियों, कीटों और अन्य जीवों का उपयोग किया जाता है।

- **स्वचालित कीट निगरानी:** ड्रोन और सेंसर के माध्यम से कीटों की उपस्थिति का पता चलता है, और स्वचालित रूप से उन क्षेत्रों में कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है, जहां कीटों का अधिक प्रभाव होता है।
- **प्राकृतिक कीट नियंत्रण:** स्वचालित प्रणाली प्राकृतिक कीटों जैसे कि मिट्टी के कीड़े, पक्षियों या बग्स का उपयोग कर सकती है, जो फसलों को कीटों से बचाने का काम करते हैं।

6. कृषि में ऊर्जा दक्षता (Energy Efficiency in Farming)

स्वचालित खेती प्रणालियां ऊर्जा की अधिकतम बचत के लिए डिजाइन की जाती हैं।

- **सौर ऊर्जा का उपयोग** सौर ऊर्जा पैनलों का उपयोग खेतों में स्वचालित यंत्रों और सिंचाई प्रणालियों को ऊर्जा देने के लिए किया जाता है। इससे ऊर्जा की लागत कम होती है और कृषि कार्यों में पर्यावरणीय प्रभाव कम होता है।
- **पवन ऊर्जा** पवन ऊर्जा का उपयोग भी स्वचालित कृषि प्रणालियों में किया जा सकता है। यह नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों से खेती के लिए आवश्यक शक्ति प्रदान करता है, जो स्थिरता और लागत में कमी करता है।

स्वचालित पारिस्थितिकीय खेती के लाभ

- **संसाधन संरक्षण:** जल, उर्वरक, और ऊर्जा का कुशल उपयोग करने से संसाधनों की बचत होती है, और इससे पर्यावरणीय प्रभाव कम होता है।
- **उत्पादन में वृद्धि:** स्मार्ट सिंचाई, ड्रोन आधारित निगरानी, और रोबोटिक्स जैसे उपाय फसल उत्पादन को अधिक प्रभावी बनाते हैं।
- **कम पर्यावरणीय प्रभाव:** पारंपरिक खेती के मुकाबले रासायनिक उत्पादों का कम इस्तेमाल होता है, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र पर कम दबाव पड़ता है।
- **स्मार्ट निर्णय:** डेटा एनालिटिक्स के माध्यम से किसानों को सटीक और जानकारीपूर्ण निर्णय लेने का अवसर मिलता है, जिससे उत्पादन और लाभ में सुधार होता है।

स्वचालित पारिस्थितिकीय खेती न केवल कृषि क्षेत्र में एक क्रांतिकारी बदलाव ला रही है, बल्कि यह पारिस्थितिकीय तंत्र को संरक्षित करने में भी मदद करती है। यह पारंपरिक कृषि के मुकाबले अधिक टिकाऊ, उत्पादक और पर्यावरण के अनुकूल है। आने वाले वर्षों में, यदि यह तकनीक व्यापक रूप से अपनाई जाती है, तो हम एक अधिक स्थिर और पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित कृषि प्रणाली की दिशा में बढ़ सकते हैं।

टिकाऊ खेती में रिमोट सेंसिंग : संभावनाएँ और भविष्य

निधि कुंडू
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

कृषि अब केवल पारंपरिक ज्ञान पर निर्भर नहीं रही, बल्कि उन्नत तकनीकों के साथ नई ऊँचाइयों को छू रही है। बढ़ती जनसंख्या और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को देखते हुए, रिमोट सेंसिंग (दूरसंवेदी तकनीक) स्मार्ट कृषि का एक महत्वपूर्ण उपकरण बन गया है। यह तकनीक उपग्रह, ड्रोन और सेंसर के माध्यम से फसल की सेहत, मिट्टी की स्थिति, जल संसाधन और पर्यावरणीय कारकों की निगरानी करती है। जब इसे आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) और इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) के साथ जोड़ा जाता है, तो यह किसानों को डेटा–आधारित निर्णय लेने में सक्षम बनाता है। इस लेख में, हम रिमोट सेंसिंग के योगदान, लाभ, चुनौतियाँ और भविष्य की संभावनाओं पर चर्चा करेंगे।

स्मार्ट कृषि में रिमोट सेंसिंग की भूमिका

1. **वास्तविक समय फसल निगरानी** रिमोट सेंसिंग तकनीक से किसानों को उनकी फसलों की वास्तविक स्थिति की निगरानी करने में सहायता मिलती है। उपग्रह इमेजरी, जैसे नासा और इसरो की हाइपरस्पेक्ट्रल इमेजिंग तकनीक, फसल की सेहत और भूमि की उर्वरता को मापने में मदद करती है। ड्रोन तकनीक भी कृषि में क्रांतिकारी बदलाव ला रही है। भारत में राजस्थान और महाराष्ट्र के कई किसान ड्रोन का उपयोग कर कीट संक्रमण और पोषक तत्वों की कमी को जल्दी पहचानने में सक्षम हो रहे हैं। इससे समय पर सही कदम उठाकर फसलों को नुकसान से बचाया जा सकता है।
2. **सटीक संसाधन प्रबंधन** रिमोट सेंसिंग के माध्यम से सटीक सिंचाई और उर्वरक प्रबंधन संभव हो पा रहा है। सेंसर आधारित मिट्टी की नमी मैपिंग से किसानों को यह पता चलता है कि कब और कितनी मात्रा में सिंचाई करनी है, जिससे पानी की 30–50% तक बचत संभव होती है। इसके अलावा, उर्वरक और कीटनाशकों के सटीक उपयोग के लिए सेंसर डेटा का प्रयोग किया जाता है। इससे किसानों को यह जानकारी मिलती है कि किस क्षेत्र में उर्वरकों की आवश्यकता है, जिससे लागत 20–40% तक घटाई जा सकती है और पर्यावरणीय प्रभाव भी कम होता है।
3. **पर्यावरणीय निगरानी और जलवायु सहनशीलता** रिमोट सेंसिंग के माध्यम से मौसम पूर्वानुमान और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है। एआई–आधारित मॉडल ऐतिहासिक डेटा का उपयोग कर वर्षा, तापमान और चरम मौसम की घटनाओं की भविष्यवाणी करने में सक्षम हैं। राजस्थान के कुम्मट गांव में किए गए एक अध्ययन में रिमोट सेंसिंग का उपयोग कर तापमान परिवर्तन को मापा गया और किसानों को गर्मी–सहनशील बीज अपनाने की सलाह दी गई। इस प्रकार, यह तकनीक किसानों को जलवायु अनुकूलन रणनीतियाँ अपनाने में मदद कर रही है।

किसानों की प्रमुख चुनौतियाँ और समाधान

1. **जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन** अप्रत्याशित मौसम परिवर्तन से खेती प्रभावित होती है। इसका समाधान डिजिटल क्लाइमेट प्लेटफॉर्म जैसे कि FAO का Agricultural Stress Index System (ASIS) है, जो किसानों को समय पर मौसम से संबंधित सलाह प्रदान करता है।
2. **संसाधन अनुकूलन और लागत में कमी** रिमोट सेंसिंग तकनीक छोटे किसानों के लिए महंगी हो सकती है। इस समस्या के समाधान के लिए सरकार और निजी कंपनियाँ सब्सिडी ड्रोन सेवाएँ प्रदान कर रही हैं। भारत सरकार की ड्रोन सहायता योजना के तहत छोटे किसानों को ड्रोन का उपयोग करने में सहायता मिल रही है।
3. **उत्पादकता में वृद्धि** किसानों को नवीनतम तकनीकों का ज्ञान नहीं होता, जिससे वे आधुनिक खेती की तकनीकों को अपनाने में हिचकिचाते हैं। इस समस्या के समाधान के लिए कृषि विज्ञान केंद्र (KVKs) किसानों को स्मार्ट खेती तकनीकों पर प्रशिक्षण दे रहे हैं।
4. **छोटे किसानों को सशक्त बनाना** तकनीक तक पहुँच की कमी छोटे किसानों के लिए एक बड़ी चुनौती है। इसे दूर करने के लिए मोबाइल एप्लिकेशन जैसे फसल मित्र किसानों को रिमोट सेंसिंग डेटा और बाजार पूर्वानुमान उपलब्ध करवा रहे हैं। इससे वे सही समय पर सही निर्णय लेने में सक्षम हो रहे हैं।

स्मार्ट कृषि में डिजिटल तकनीकों का एकीकरण

एआई और IoT के साथ इंटीग्रेशन : एआई मॉडल किसानों को फसल स्वास्थ्य आकलन और उपज पूर्वानुमान में सहायता कर रहे हैं। IoT सेंसर डेटा संग्रह कर सटीक निर्णय लेने में मदद कर रहे हैं, जिससे खेती अधिक वैज्ञानिक और कुशल हो रही है।

बिग डेटा और क्लाउड कंप्यूटिंग : क्लाउड–आधारित स्मार्ट फार्मिंग प्लेटफॉर्म किसानों को रियल–टाइम डेटा प्रदान करते हैं, जिससे वे अपने खेतों की स्थिति का विश्लेषण कर सकते हैं। बिग डेटा विश्लेषण से कृषि आपूर्ति श्रृंखला को अनुकूलित किया जा सकता है, जिससे खाद्य अपव्यय कम होता है और बाजार में स्थिरता बनी रहती है।

रिमोट सेंसिंग का भविष्य और संभावनाएँ

भविष्य में, रिमोट सेंसिंग तकनीक उन्नत सेंसर और प्लेटफॉर्म के माध्यम से खेती में क्रांतिकारी बदलाव लाएगी। नैनो–सैटेलाइट्स और एआई–संचालित ड्रोन किसानों को अधिक सटीक डेटा प्रदान करेंगे, जिससे वे बेहतर निर्णय ले सकेंगे। एआई–संचालित पूर्वानुमान एनालिटिक्स मिट्टी की उर्वरता, जलवायु प्रभावों और संभावित कीट संक्रमण का सटीक पूर्वानुमान देकर खेती को अधिक वैज्ञानिक और लाभदायक बनाएंगे। वैश्विक स्तर पर, संयुक्त राष्ट्र और FAO जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ कृषि निगरानी के लिए ग्लोबल डेटा शेयरिंग को बढ़ावा दे रही हैं, जिससे कृषि तकनीकों का व्यापक प्रसार होगा और किसानों को नवीनतम जानकारी प्राप्त होगी। साथ ही, टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने के लिए सटीक खेती और स्मार्ट सिंचाई अपनाई जा रही है, जिससे CO_2 उत्सर्जन में कमी आएगी और जल एवं उर्वरकों का प्रभावी उपयोग सुनिश्चित होगा।

रिमोट सेंसिंग तकनीक किसानों को स्मार्ट और टिकाऊ कृषि अपनाने में सहायता कर रही है। यह जलवायु अनुकूलन, संसाधन अनुकूलन, उत्पादकता वृद्धि और छोटे किसानों के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। डिजिटल तकनीकों, एआई और IoT के साथ इसका एकीकरण कृषि को और भी उन्नत बनाएगा। जैसे–जैसे यह तकनीक अधिक सुलभ होगी, भारत और विश्वभर में कृषि उत्पादन, पर्यावरणीय स्थिरता और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित होगी।

कृषि अर्थव्यवस्था में स्मार्ट कृषि की भूमिका

प्रेम सिंह शेखावत, धर्मेंद्र लाखराण एवं दीपिका वर्मा
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

कृषि अर्थव्यवस्था एक ऐसा क्षेत्र है जो कृषि उत्पादन, विपणन, नीति और विकास से संबंधित आर्थिक पहलुओं का अध्ययन करता है। इसमें कृषि की गतिविधियों के प्रभावों और उनके आर्थिक परिणामों का विश्लेषण किया जाता है। आजकल कृषि क्षेत्र में प्रौद्योगिकी के उपयोग से उत्पादन में वृद्धि और कृषि की प्रभावशीलता में सुधार हो रहा है। इस संदर्भ में स्मार्ट कृषि का महत्व बढ़ा है। स्मार्ट कृषि, आधुनिक तकनीकों का उपयोग करके कृषि को और अधिक उत्पादक, पर्यावरण के अनुकूल और टिकाऊ बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यह लेख कृषि अर्थव्यवस्था में स्मार्ट कृषि की भूमिका पर आधारित है, जिसमें स्मार्ट कृषि के लाभ, उपयोग की तकनीकों और इसके अर्थशास्त्र पर चर्चा की जाएगी।

स्मार्ट कृषि की परिभाषा

स्मार्ट कृषि वह कृषि पद्धति है जिसमें सूचना और संचार प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, ड्रोन, रिमोट सेंसिंग और अन्य उन्नत प्रौद्योगिकियों का उपयोग किया जाता है। इन तकनीकों के माध्यम से किसानों को कृषि उत्पादन की सटीक जानकारी मिलती है, जिससे वे अपनी फसलों के स्वास्थ्य, मृदा की स्थिति, जलवायु, और मौसम की स्थिति का विश्लेषण कर सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि, संसाधनों का बेहतर उपयोग और पर्यावरणीय प्रभावों को कम किया जा सकता है।

स्मार्ट कृषि की तकनीकी पहलू

1 **इंटरनेट ऑफ थिंग्स** : इंटरनेट ऑफ थिंग्स का उपयोग कृषि में विभिन्न उपकरणों और सेंसरों को जोड़ने के लिए किया जाता है। इन सेंसरों के माध्यम से मृदा की नमी, तापमान, पत्तियों की स्थिति और अन्य पर्यावरणीय कारकों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इससे किसानों को वास्तविक समय में फसलों की स्थिति का पता चलता है, और वे सही समय पर कृषि क्रियाएँ कर सकते हैं।

2 **ड्रोन तकनीकी** : ड्रोन का उपयोग कृषि में विभिन्न कार्यों के लिए किया जाता है। ये फसल की स्थिति, सिंचाई की आवश्यकता और कीटों का नियंत्रण करने के लिए चित्र और वीडियो लेते हैं। ड्रोन किसानों को कठिन और बड़े खेतों की निगरानी करने में मदद करते हैं, जिससे वे समय और संसाधनों का अधिकतम उपयोग कर सकते हैं।

3 **डेटा एनालिटिक्स और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस** : स्मार्ट कृषि में बड़ी मात्रा में डेटा एकत्रित किया जाता है, जैसे कि मौसम, मृदा स्थिति और फसल की वृद्धि की जानकारी। इस डेटा का विश्लेषण करके आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, किसानों को बेहतर निर्णय लेने में मदद करता है, जैसे कि सही उर्वरकों का चुनाव, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों की भविष्यवाणी और फसल के उत्पादन के लिए बेहतर रणनीतियाँ विकसित करना।

4 **स्मार्ट इरिगेशन सिस्टम्स** : स्मार्ट इरिगेशन सिस्टम्स में सेंसर का उपयोग होता है, जो मृदा की नमी का विश्लेषण करके केवल उतना ही पानी देते हैं जितना फसल के लिए आवश्यक होता है। इससे पानी की बर्बादी को रोका जा सकता है और जल संसाधनों का संरक्षण होता है। इससे किसानों को लागत कम करने में मदद मिलती है और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का सामना करना आसान होता है।

स्मार्ट कृषि के लाभ

- **उत्पादन में वृद्धि** : स्मार्ट कृषि तकनीकों के माध्यम से किसानों को अधिक सटीक जानकारी प्राप्त होती है, जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। सही समय पर सिंचाई, उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग करके फसल की गुणवत्ता और मात्रा में सुधार किया जा सकता है।
- **संसाधनों का बेहतर उपयोग** : स्मार्ट कृषि तकनीकों के द्वारा कृषि संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है। पानी, उर्वरक और अन्य संसाधनों की बर्बादी को कम किया जा सकता है, जिससे लागत घटती है और पर्यावरण पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- **पर्यावरणीय लाभ** : स्मार्ट कृषि से कृषि के पर्यावरणीय प्रभाव को कम किया जा सकता है। सही मात्रा में पानी और उर्वरकों का उपयोग करने से जलवायु परिवर्तन और भूमि की घटती गुणवत्ता जैसी समस्याओं का समाधान हो सकता है। यह पर्यावरण के लिए भी लाभकारी है।
- **कम लागत और अधिक लाभ** : स्मार्ट कृषि से किसानों को अपनी फसलों की स्थिति और बाजार की मांग के बारे में सही जानकारी मिलती है। इस प्रकार, वे बेहतर निर्णय लेकर अपनी लागत कम कर सकते हैं और लाभ को अधिकतम कर सकते हैं।

स्मार्ट कृषि का कृषि अर्थव्यवस्था में प्रभाव

- **कृषि उत्पादन की लागत में कमी** : स्मार्ट कृषि में प्रौद्योगिकी के उपयोग से किसानों की लागत में कमी आती है। उदाहरण के लिए, स्मार्ट इरिगेशन, ड्रोन और सेंसर के उपयोग से पानी, उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग कम होता है, जो उत्पादन लागत को घटाने में मदद करता है। इसके परिणामस्वरूप, किसानों को अधिक लाभ मिलता है।
- **कृषि उत्पादों की बाजार में कीमत** : स्मार्ट कृषि के माध्यम से किसानों को अधिक सटीक उत्पादन मिलता है, जिससे बाजार में उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार होता है। इससे किसानों को बेहतर मूल्य मिल सकता है, क्योंकि उपभोक्ता उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों को प्राथमिकता देते हैं। इससे बाजार में प्रतिस्पर्धा भी बढ़ती है।
- **कृषि विकास और नीति** : स्मार्ट कृषि को बढ़ावा देने के लिए सरकार को कृषि नीतियों को स्मार्ट तकनीकों के अनुकूल बनाना होगा। यह नीति निर्माताओं को कृषि क्षेत्र में तकनीकी बदलावों के साथ तालमेल बैठाने की आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित करता है। स्मार्ट कृषि से जुड़े विकास कार्यक्रमों और नीतियों को लागू करने से दीर्घकालिक कृषि विकास को बढ़ावा मिल सकता है।

भारत में स्मार्ट कृषि की चुनौतियाँ

भारत में कृषि अर्थव्यवस्था स्मार्ट कृषि अपनाने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रही है। सरकार और निजी कंपनियाँ डिजिटल तकनीकों को किसानों तक पहुँचाने के लिए प्रयासरत हैं।

स्मार्ट कृषि को अपनाने में मुख्य चुनौतियाँ

- तकनीकी जागरूकता की कमी होने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों को आधुनिक तकनीकों का सीमित ज्ञान है।
- स्मार्ट कृषि उपकरणों और सेंसर में प्रारंभिक लागत अधिक होने के कारण छोटे किसान इसे अपनाने में असमर्थ होते हैं।
- दूरदराज के क्षेत्रों में इंटरनेट और डिजिटल सेवाओं की उपलब्धता सीमित होने के कारण इंटरनेट और कनेक्टिविटी समस्याएँ रहती है।
- नीतिगत समर्थन की आवश्यकता है जिसमें सरकार किसानों को सब्सिडी, प्रशिक्षण और स्मार्ट कृषि तकनीकों सेवा ज्ञान समय परप्रदान कर सके।

भविष्य में स्मार्ट कृषि का महत्व

आने वाले वर्षों में स्मार्ट कृषि, कृषि अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न हिस्सा बन जाएगी। इसमें डिजिटल कृषि, रोबोटिक्स, और ब्लॉकचेन टेक्नोलॉजी की महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

भविष्य की संभावनाएँ

- स्मार्ट फार्मिंग हब : भारत में कई स्मार्ट फार्मिंग हब विकसित किए जा सकते हैं।
- रोबोटिक्स का बढ़ता उपयोग : खेतों में रोबोटिक तकनीकों से स्वचालित कटाई और रोपण किया जाएगा।
- बाजार और किसान के बीच सीधा संपर्क : डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से बिचौलियों की भूमिका कम होगी और किसान को सीधा लाभ मिलेगा।
- स्मार्ट कृषि से सतत विकास के लक्ष्य पूरे होंगे
- जल और उर्वरकों की बचत से पर्यावरण संरक्षण होगा।
- जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में मदद मिलेगी।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलेगी, जिससे गाँवों का विकास होगा

पशु आहार में बाईपास वसा का महत्व

भूपेंद्र कस्वां, अरुण प्रताप सिंह एवं उर्मिला चौधरी
सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

सामान्यतया ब्याने के शुरुआती समय में उच्च दुग्ध उत्पादन वाले डेयरी पशुओं के राशन में ऊर्जा की कमी हो जाती है। दूध की मात्रा ज्यादा होने के कारण ऊर्जा में कमी का अंतर और बढ़ जाता है। विभिन्न क्षेत्रों की परिस्थितियों के अनुसार ब्याने के बाद ऊर्जा की कमी के कारण पशु का शारिरिक वजन सामान्य वजन से कम रह जाता है। इससे पशुओं में गर्भाधान में भी देरी होती है जिसके फलस्वरूप दो ब्यान्त के बीच का अंतराल बढ़ जाता है।
दुग्धकाल के शुरुआती चरण में किसान आमतौर पर तेल या घी को पूरक के रूप में इस्तेमाल करते हैं जो कम किफायती एवं रुमन में रेशो के पाचन को भी बाधित करता है। अंतिम गर्भावस्था एवं प्रारंभिक दुग्ध काल के दौरान वसा के पूरक के रूप में बाईपास वसा को खिलाने से ऊर्जा की कमी को पूरा करने में मदद मिलती है। यह दुग्ध उत्पादन एवं प्रजनन सुधार में मदद करता है

बाईपास वसा का कार्य करने का तरीका एवं तैयार करने की विधि

रोमन सरक्षित वसा का गलनांक अधिक होता है तथा रुमन पीएच और तापमान पर एक अघुलनशील होती है रुमन सरक्षित वसा अम्लीय पीएच पर संवेदनशील होती है। इस प्रकार यह रूमन की किण्वन क्रिया को बाधित किए बिना एबोमेजम के अम्लीय पीएच पर पच जाता है। इस रूप में वसा के पूरक को बाईपास वसा कहा जाता है।
इसे कई तरीकों से तैयार किया जाता है जिसमें से मुख्य विधियां निम्न है।

1. प्राकृतिक रूप से रोमन सरक्षित वसा उदाहरण – तेलीय बीज (बिनौला, साबुत सोयाबीन)
2. वसा का हाइड्रोजनीकरण करके।
3. तेलीय बीजों का फॉर्मएल्डिहाइडकृत करके।
4. लंबी श्रंखला के वसीय अम्लों के कैल्शियम लवण बनाकर।
5. संलयन विधि द्वारा।

विभिन्न व्यावसायिक उत्पाद– डेयरीलेक, मैग्नालेक, मेगलेक

खिलाने की दर

- बाईपास वसा को राशन में पूरक के रूप में दिया जा सकता है।
- 15 से 20 ग्राम प्रति किलोग्राम दुग्ध उत्पादन या
- 100–150 ग्राम प्रति पशु
- बाईपास वसा का उपयोग डेयरी पशुओं में प्रसव के 10 दिन पहले से लेकर 90 दिन बाद तक करना चाहिए। इसे धीरे–धीरे बढ़ाकर 0.4 से 0.8 किलोग्राम दिन कर सकते हैं।

बाईपास वसा के लाभ

- उच्च दुग्ध उत्पादन वाले पशु हेतु आदर्श ऊर्जा पूरक है।
- शुद्ध पदार्थ 2 से 5 % तक कम करके भी ऊर्जा पूरी करने में सहायक।
- अंतिम गर्भावस्था एवं प्रारंभिक दुग्ध काल में नकारात्मक ऊर्जा संतुलन को दूर करता है।
- प्रतिदिन 1.8 से 3.5 लीटर तक दूध उत्पादन बढ़ा देता है।
- दूध की वसा में 2–15 % तक सुधार लाता है।
- प्रोटीन उत्पादन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता हैं। इष्टतम दक्षता लेक्टेशन के पहले 120 दिनों में बढ़ जाती है।
- गर्भाधान अर्थात प्रजनन क्षमता बढ़ जाती है।
- एसिडोसिस व लेमीनाईटिस रोग को रोकने में सहायक।
- शरीर में गर्मी के उत्पादन को रोकती है।
- खाद्य पदार्थों में धूल के प्रभाव को कम करती हैं।

बाईपास वसा की सीमाएं

- फैट कच्चे रेशो की पाचकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।
- अतिरिक्त मात्रा दूध की वसा हेतु आवश्यक पदार्थों की उपलब्धता कम कर सकती है।
- यह सामान्यतः सेल्यूलाइटिक जीवाणु के लिए विषाक्त होती है।

सौ बातों की एक बात यह है कि वसीय आहार आवश्यक है परंतु महंगा पड़ता है अतः एवं उच्च उत्पादनकारी जुगाली करने वाले पशुओं की उच्च ऊर्जा की मांग को पूरा करने के लिए तथा बाईपास वसा फाइबर के पाचन में बाधा उत्पन्न नहीं करती, इसलिए यह घी तेल की अपेक्षा हमेशा फायदेमंद रहती है।

छोटे जुगाली करने वाले पशुओं का आर्थिक महत्व

प्रियंका कंवर[1] एवं शीला खर्कवाल[2]

[1]विद्यावाचस्पति छात्र, [2]सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

पशुधन पालन ग्रामीण आजीविका की रीढ़ है और भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है। दुनिया में सबसे बड़ी पशुधन आबादी वाले देश के रूप में, भारत कृषि विविधीकरण, आर्थिक स्थिरता और रोजगार के लिए इस क्षेत्र पर बहुत अधिक निर्भर करता है, खासकर भूमिहीन परिवारों और छोटे पैमाने के किसानों के लिए। यह क्षेत्र भारत के कुल कार्यबल के लगभग 8 प्रतिशत का समर्थन करता है और देश के सकल घरेलू उत्पाद में 5.7 प्रतिशत का योगदान देता है, जो कृषि सकल घरेलू उत्पाद का 30.19 प्रतिशत है (मत्स्य पालन मंत्रालय पशुपालन और डेयरी पशुपालन और डेयरी विभाग 2023)। शुष्क और अर्ध–शुष्क परिस्थितियों वाले क्षेत्रों में पशुधन पालन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यह सूखे और फसल विफलताओं के खिलाफ सुरक्षा जाल प्रदान करता है, जिससे चुनौतीपूर्ण समय के दौरान आजीविका सुनिश्चित होती है। 536.76 मिलियन की कुल पशुधन आबादी के साथ, भारत वैश्विक पशुधन आबादी का 10.23 प्रतिशत हिस्सा है, जो वैश्विक अर्थव्यवस्था में इसके महत्वपूर्ण योगदान पर जोर देता है (मत्स्य पालन पशुपालन और डेयरी मंत्रालय, डीएचएडी, 2023)।

छोटी जुगाली करने वाले पशुओं की स्थिति

पशुधन में, मवेशी 36.04 प्रतिशत के साथ सबसे बड़ा हिस्सा दर्शाते हैं, इसके बाद बकरियाँ (27.74%), भैंस (20.47%), भेड़ (13.83%) और सूअर (1.69%) हैं। भारत में भेड़ पालन क्षेत्र आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टि से महत्वपूर्ण है। 74.26 मिलियन की आबादी के साथ, भारत दुनिया भर में भेड़ पालन करने वाले देशों में तीसरे स्थान पर है, जो दुनिया की भेड़ आबादी में 5.88 प्रतिशत का योगदान देता है (मत्स्यपालन, पशुपालन और डेयरी मंत्रालय, डीएचएडी, 2023) 2012 में 19वीं पशुधन जनगणना के बाद से, 2019 तक देश की भेड़ आबादी में 14.13 प्रतिशत की प्रभावशाली वृद्धि हुई है। भेड़ पालन में तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और राजस्थान जैसे राज्य अग्रणी हैं।

2019 में भारत में जुगाली करने वाले छोटे जानवरों की संख्या 223.2 मिलियन थी, जिसमें 148.9 मिलियन बकरियाँ और 74.3 मिलियन भेड़ें शामिल थीं। और, उनकी आबादी बढ़ती जा रही है। 2012 से 2019 के बीच बकरियों की आबादी में 10.13 प्रतिशत की वृद्धि हुई। छोटे जुगाली करने वाले जानवरों को दूध, मांस और ऊन और बालों के लिए महत्व दिया जाता है। 2019 में भारत ने 5.4 मिलियन टन बकरी का दूध, 226.1 हज़ार टन भेड़ का दूध, 553.3 हज़ार टन शेवन और 276.3 हज़ार टन मटन का उत्पादन किया। भारत में छोटे जुगाली पशुओं की उत्पादन प्रणाली निर्वाह–उन्मुख है और पशुपालन से प्राप्त सकल मूल्य में लगभग 12 प्रतिशत का योगदान देती है। छोटे जुगाली पशुओं का पालन पिछड़ी जातियों और सीमांत कृषक परिवारों के सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूहों के बीच केंद्रित है।

भारत में छोटे जुगाली करने वाले पशुओं के बारे में मुख्य बातें

आर्थिक महत्व– छोटे जुगाली करने वाले पशु ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं तथा अनेक सीमांत किसानों को आय और जीविका प्रदान करते हैं। भेड़ पालन तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, राजस्थान और उत्तराखंड राज्य के किसानों के बीच आय और आजीविका के महत्वपूर्ण स्रोतों में से एक है। छोटे जुगाली करने वाले पशु ग्रामीण आबादी को जीविका प्रदान करते हैं, गरीबी में कमी लाते हैं और भारतीय अर्थव्यवस्था में योगदान देते हैं। अब तक यह क्षेत्र उपेक्षित और असंगठित रहा है। इस क्षेत्र को सुव्यवस्थित करना और छोटे जुगाली करने वाले पशु क्षेत्र के विकास से संबंधित मुद्दों का समाधान करना समय की मांग है। भेड़ पालन इकाई कृषि मजदूरों के लिए एक बहुत ही उचित आजीविका विकल्प का प्रतिनिधित्व करती है क्योंकि इसमें कम संसाधनों की आवश्यकता होती है और बहुत विशेष कौशल की आवश्यकता नहीं होती है। प्रजनन इकाई, जिसके लिए किसान या उसके परिवार के सदस्य की अंशकालिक भागीदारी की आवश्यकता होती है, छोटे और सीमांत किसानों के लिए उनके मुख्य व्यवसाय को प्रभावित किए बिना एक बहुत ही स्थिर और आकर्षक अतिरिक्त आय स्रोत प्रदान करती है।

कठोर वातावरण के प्रति अनुकूलन– शुष्क और अर्ध–शुष्क परिस्थितियों में पनपने की अपनी क्षमता के कारण, छोटे जुगाली करने वाले जानवर भारत में सीमांत भूमि के लिए उपयुक्त हैं। छोटे जुगाली करने वाले पशुओं से प्राप्त प्राथमिक उत्पादों में मांस (बकरी से शेवोन, भेड़ से मटन), दूध, ऊन और खाल शामिल हैं

छोटे जुगाली करने वाले पशुओं के बारे में अनूठी विशेषताएं

छोटे जुगाली करने वाले जानवर, जैसे कि बकरी और भेड़, कई तरह की जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल होते हैं, लेकिन उनका पालन–पोषण गरीब लोगों द्वारा बसाए गए कठोर वातावरण में अधिक प्रमुख है। वे कई तरह से ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं और आजीविका को प्रभावित कर सकते हैं। अक्सर, छोटे जुगाली करने वाले जानवरों को चरागाहों और बंजर भूमि पर पाला जाता है, जो मानव उपभोग के लिए पोषक तत्वों से भरपूर दूध और मांस, फसल उत्पादन के लिए खाद और औद्योगिक उपयोग के लिए ऊन, बाल और त्वचा का उत्पादन करने के लिए फसलों की खेती के लिए अनुपयुक्त होते हैं। सूखे और बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के दौरान, छोटे जुगाली करने वाले जानवर बीमा के रूप में कार्य करते हैं और मनुष्यों को बहुत जरूरी जीवन समर्थन प्रदान करते हैं। छोटे जुगाली करने वाले जानवरों के पालन–पोषण के लिए एक छोटे से शुरुआती निवेश की आवश्यकता होती है, और जानवर प्राकृतिक प्रजनन योग्य संपत्ति का एक रूप होते हैं, जिन्हें आय प्रवाह और धन उत्पन्न करने के लिए आसानी से गुणा किया जा सकता है। छोटे जुगाली करने वाले जानवरों में कुछ अनूठी विशेषताएं होती हैं जैसे कि बेहतर थर्मोरेग्यूलेशन, बीमारियों के प्रति प्रतिरोध, लंबी दूरी की चराई के मामले में धीरज और उच्च फ़ीड रूपांतरण दक्षता। इसके अलावा, उनके पर्यावरणीय पदचिह्न किसी भी अन्य पशु प्रजाति की तुलना में कम हैं, और इस प्रकार, ये पशु जलवायु संबंधी तनावों के प्रति अधिक लचीले हैं, जिससे उत्पादन की एक स्थायी धारा उत्पन्न होती है।

नस्लें और प्रजनन

भारत छोटे जुगाली करने वाले पशुओं की जैव विविधता में समृद्ध है। आईसीएआर–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल ने राज्य सरकार के सहयोग से बकरी की 34 और भेड़ की 44 नस्लों की पहचान की है और उन्हें भारत के राजपत्र में पंजीकृत और अधिसूचित किया है। एनबीएजीआर गैर–वर्णित पशुओं के विस्तृत राष्ट्रव्यापी लक्षण वर्णन के माध्यम से नई नस्लों की पहचान करने के लिए राज्यों के साथ लगातार सहयोग कर रहा है। भविष्य की प्रजनन रणनीतियों में उपयोग के लिए उनके संरक्षण और सुधार के लिए गहन शोध प्रयासों की आवश्यकता है।विभिन्न कृषि–जलवायु क्षेत्रों में बकरियों की दूध की पैदावार बढ़ाने के लिए, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा बकरी सुधार पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (एआईसीआरपी) के तहत 1970 से व्यवस्थित प्रयास किए गए हैं। क्रॉसब्रीडिंग में अल्पाइन, एंग्लो–न्यूबियन और टोगेनबर्ग जैसी विदेशी नस्लों का इस्तेमाल किया गया। हालांकि, क्रॉसब्रीडिंग से दूध की पैदावार में वास्तविक वृद्धि अपेक्षा से कम थी। इसके बाद, यह भी देखा गया कि शुद्ध नस्लों का चयन क्रॉसब्रीडिंग की तुलना में अधिक प्रभावी और लाभदायक था। यह दृष्टिकोण कुछ नस्लों तक ही सीमित रहा है और लाभ की सीमा पर्याप्त नहीं रही है।भेड़ों के मामले में, ईस्ट इंडिया कंपनी ने 19वीं शताब्दी में मुख्य रूप से ऊन सुधार के लिए क्रॉसब्रीडिंग शुरू की थी। केप मेरिनो, एक विदेशी अच्छी ऊन वाली नस्ल, स्थानीय नस्लों के साथ क्रॉस की गई थी। 1971 में आईसीएआर द्वारा शुरू किए गए भेड़ प्रजनन पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान कार्यक्रम (एआईसीआरपी) ने भेड़ की नस्लों को सुधारने के लिए व्यवस्थित प्रयास किए। हालांकि अविवास्त्र, नाली–सिंथेटिक और चोकला–सिंथेटिक जैसी भेड़ों की नई नस्लें विकसित की गई हैं, लेकिन उच्च विदेशी विरासत वाले क्रॉस से मृत्यु दर भी अधिक होती है। केंद्रीय भेड़ और ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर में तीन देशी नस्लों को शामिल करते हुए क्रॉसब्रीडिंग के एक हालिया प्रयास से अविशान ब्रे गैरोले का विकास हुआ है, जो एक विपुल भेड़ नस्ल है।

छोटे जुगाली करने वालों के लिए योजना

राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम (एनएडीसीपी)

राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम (एनएडीसीपी) सितंबर, 2019 में माननीय प्रधान मंत्री द्वारा खुरपका और मुंहपका रोग तथा ब्रूसेलोसिस पर नियंत्रण के लिए शुरू की गई एक प्रमुख योजना है, जिसके तहत 100 प्रतिशत गाय, भैंस, भेड़, बकरी और सुअर की आबादी को एफएमडी के लिए और 4–8 महीने की आयु के 100 प्रतिशत गोजातीय मादा बछड़ों को ब्रूसेलोसिस के लिए टीका लगाया जाता है। इसका कुल परिव्यय पांच वर्षों (2019–20 से 2023–24) के लिए 13,34300 करोड़ रुपये दिये गये थे।

महत्व

छोटे और भूमिहीन उद्योगों के लिए अर्थव्यवस्था की रीढ़ है,पूरे वर्ष आय का वैकल्पिक स्रोत उपलब्ध कराना,आय सृजन, पूंजी भंडारण, रोजगार और पोषण स्थिति में भूमिका निभाना। छोटा आकार, आसान प्रबंधन, कम जगह और बच्चों और महिलाओं द्वारा संभाल। गांव की अर्थव्यवस्था को बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण उपकरण, है।

चुनौतियाँ

छोटे जुगाली पशु पालन सामाजिक रूप से अच्छी तरह से स्वीकार नहीं किया गया है, और यह ज्यादातर पिछड़े वर्गों और छोटे किसानों तक ही सीमित है राज्यों में जर्मप्लाज्म को बेहतर बनाने के लिए कोई निश्चित प्रजनन नीति और सुविधा नहीं है,चरागाह संसाधनों की मात्रात्मक और गुणात्मक गिरावट, और अपर्याप्त चारा।

पशुओं में मुख्य खाद्यजन्य विषाक्तता तथा बचाव के उपाय

भूपेंद्र कस्वां
सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

पशुपालन में पशु आहार पर लगभग 70% से अधिक व्यय होने के कारण सस्ते तथा संतुलित आहार का अत्यधिक महत्व है। पशु आहार को सस्ता व पौष्टिक बनाने में हरे चारे का योगदान महत्वपूर्ण है, क्योंकि हरे चारे में सभी आवश्यक पोषक तत्व पाए जाते हैं तथा हरा चारा आसानी से हजम होता है एवं आर्थिक रूप से सस्ता भी पड़ता है। वर्तमान काल में देश के कई हिस्सों में भीषण सूखे की स्थिति के कारण चारे की फसलों की उपलब्धता बहुत कम हो गई है। चारे की फसलों मे बिजाई के बाद पानी की कमी के कारण इन फसलों की बढ़वार रुक जाती है तथा चारे की यह फसल मुरझा कर सूखने लगती हैं। इस तरह के मुरझाहट तथा अविकसित चारे के पौधों में लगभग 30 से 35 दिन तक की अवस्था में विषाक्त तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है जिनके सेवन से पशुओं में खाद्यजन्य विषाक्तता उत्पन्न हो जाती है पशुओं में खाद्यजन्य विषाक्तता कई कारणों से हो सकती है जो इस प्रकार से है

सायनाइड विषाक्तता –

प्रकृति में कई प्रकार के पेड़ पौधे होते हैं जिसमें रसायन जनित ग्लूकोसाइड होते हैं। ऐसे पेड़ पौधों को खाने पर इनमें मौजूद ग्लूकोसाइड पशु के रूमन में एंजाइम की क्रियाओं से हाइड्रोसाइएनिक अम्ल निकलता है जो विषाक्त होता है।

प्रकृति में ऐसे कई पौधे व चारे हैं जिनके सेवन से सायनाइड विषाक्तता हो सकती हैं, लेकिन सायनाइड की मात्रा विभिन्न मौसमी परिस्थिति एवं पौधों के विभिन्न भागों में अलग–अलग होती है इस तरह के चारे में विशेषत ज्वार, बाजरा, सूडान घास व चरी आदि के सेवन से कभी–कभी विशेषत सूखे की स्थिति में सायनाइड जनित ग्लूकोसाइड की अधिक मात्रा होने के कारण पशुओं की मृत्यु हो जाती है सायनाइड विषाक्तता में ऑक्सीजन के वाहक एंजाइम प्रभावित हो जाते हैं जिसके कारण शरीर के ऊतकों में ऑक्सीजन नहीं पहुंच पाने के कारण दम घुटने से पशु की मृत्यु हो जाती है साइनाइड युक्त चारे की अधिक मात्रा में सेवन करने से 15 से 20 मिनट बाद ही पशु में विषाक्तता के लक्षण आ जाते हैं जैसे पशु मुंह खोलकर सांस लेना प्रारंभ कर देता है पशु के मुंह से लार गिरनी शुरू हो जाती है पशु बेचैन हो जाता है तथा अपने सिर को पेट की ओर घुमा कर रखता है पशु का खून चमकीला लाल हो जाता है। मौत के समय दम घुटने जैसी पीड़ा होती है

बचाव–

- अच्छी सिंचित की गई ज्वार, बाजरा, चरी तथा सूडान घास को पशुओं को हरे चारे के रूप में खिलाए।
- दो तीन बार अच्छी वर्षा होने के उपरांत ज्वार या चरी की फसल को पशुओं को खिलाएं।
- चरागाहों में चराने के लिए ले गए पशुओं को कम बढ़ी हुई तथा मुरझाए हुए पीले पत्तों वाली ज्वार व बाजरे की चारे की फसल को न खाने दे।
- सायनाइड ग्रस्त चारा खाए हुए पशुओं को पानी नहीं पिलाना चाहिए।

उपचार–

- सायनाइड विषाक्तता के लक्षण प्रकट होते ही पशु को सोडियम नाइट्राइट 3 ग्राम तथा सोडियम बाईसल्फेट 15 ग्राम, 200ml डिस्टिल्ड पानी में घोलकर जुगलर शिरा में पशु चिकित्सक की देखरेख में देना चाहिए।
- सोडियम बायोसल्फेट 40–50 ग्राम मुंह से देना चाहिए।

नाइट्रेट व नाइट्राइट विषाक्तता–

नाइट्रेट तत्व कई प्रकार की दलहनी फसलों तथा गहरे कुएं के पानी में विशेष तौर से पाए जाते हैं। नाइट्रेट विषाक्तता अधिक नाइट्रेट वाले सारे व पानी के सेवन करने से होती है जब यूरिया खाद हरे चारे की मक्का, जई आदि फसलों में नाइट्रेट की मात्रा बढ़ जाती है तथा कारखानों से निकलने वाले विशेष रसायनों से दूषित भूमीगत पानी में भी नाइट्रेट की मात्रा अधिक होती है जो नाइट्रेट विषाक्तता का कारण बनती है नाइट्रेट्स स्वयं में विषैला नहीं होता परंतु उच्च नाइट्रेट युक्त चारे, पानी के ज्यादा मात्रा में सेवन करने से पशु के पेट में वह चारा नाइट्रेट में परिवर्तित हो जाता है जो बहुत अधिक विषैला होता है तथा पशु की मौत का कारण बनता है शुष्क आधार पर चारे में 0.45 % से अधिक तथा पानी में 300 पी.पी.एम से अधिक नाइट्रेट की मात्रा विकसित होती है नाइट्रेट विषाक्तता होने पर पशु की नाड़ी की गति व श्वसन दर बढ़ जाती है पशुओं में ऑक्सीजन की कमी के कारण सांस लेने में कठिनाई होती है तथा मुंह खोल के सांस लेते ह। ऑक्सीजन की कमी के कारण पशुओं पशुओं की आंख, नाक व मुंह है कि झिल्ली गहरे रंग की हो जाती है पशु का शरीर धनुष के आकार का हो जाता है पशुओं में गर्भपात हो जाता है पशु को उल्टी व दस्त हो जाते हैं। पशु के शरीर की म्यूकस झिल्ली नीली हो जाती ह। पशु में नाइट्रेट विषाक्तता के लक्षण प्रकट होने के एक या दो घंटे में मृत्यु हो जाती है।

बचाव–

- यूरिया खाद के थैले पशुओं की पहुंच से दूर रखे।
- नाइट्रेट युक्त चारे की मात्रा थोड़ा–थोड़ा बढ़ाकर खिलानी चाहिए।

उपचार–

- मैथिलीन ब्लू के 1% घोल की आवश्यकता अनुसार 50 से 100 एम एल जुगलर शिरा में पशु चिकित्सक की देखरेख में देना चाहिए।

एफलटॉक्सिकोसिस–

हमारे देश में पशुओं को बचा हुआ सड़ा–गला खाना देना तथा फफूंद लगी वस्तु खिलाना एक आम बात है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह फफूंद माइकोटोक्सीन नामक विषैला पदार्थ पैदा करता है जो मनुष्य व पशुओं के लिए बहुत हानिकारक होता है एस्पेरजीलस नामक फफूंद से विषैला पदार्थ एफलाटॉक्सिन उत्पन्न होता ह। सोयाबीन, मूंगफली, बिनौला खली आदि के दानों में फफूंद द्वारा एफलाटॉक्सिन जल्दी बनता है इसकी मात्रा कई बार मौसम में आई नमी व बरसात के कारण परिवर्तित होती है सभी प्रकार के पशु एफलाटॉक्सिन से प्रभावित हो सकते हैं यह शरीर में प्रवेश कर पशु के लीवर को सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाता ह। जिससे पशु की मृत्यु भी हो जाती ह। इसके लक्षण भूख कम लगना, दुग्ध उत्पादन में कमी, पशु का स्वस्थ रहना, खूनी दस्त लगना, कमजोर होना, पीलिया होना तथा अंधापन होना व गोलदायरे में चक्कर काटना आदि है।

बचाव–

- एफलाटॉक्सिन को पूरी तरह से खत्म करना असंभव है। परंतु दाने में इसका स्तर 300 पी.पी.एम से ऊपर पहुंचने पर यह पशुओं के लिए नुकसानदायक होता है।
- पशु को आहार, लैब में परीक्षण करवाने के बाद दें।
- पशु दाने का भंडारण वैज्ञानिक ढंग से करें।
- बरसात के मौसम व बदलते मौसम में आहार पर विशेष ध्यान रख।
- समय–समय पर पशु दाने की गुणवत्ता की जांच करवाएं
- पशु आहार में एंटीफंगल एजेंट व ग्रोवर टॉनिक मिलाएं।
- दाने के घटकों को दो–तीन दिन तेज धूप में सुखाए।
- दाना या पशु आहार अधिक समय के लिए इकट्ठा ना करे।

लम्पी स्किन डिजीज - वर्तमान संदर्भ में एक उभरती हुई बीमारी

अरुण प्रताप सिंह, भूपेंद्र कस्वां एवं अरविन्द कुमावत
सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर

लम्पी स्किन डिजीज एक वाहक जनित (मच्छर, मखियों, चिंचड़ द्वारा सूक्ष्मजीव का संचरण होता है) विषाणु जनित रोग है जो मुख्यतः गोवंश एवं भैंस वंश को प्रभावित करता है। इस रोग का रोग कारक केप्रीपॉक्स वायरस (लम्पीस्किन डिजीज वायरस) है जो की पॉक्सविरिडी परिवार एवं कॉर्डोपॉक्सविरिडी उपपरिवार एवं केप्रीपॉक्स वायरस वंश से संबंध रखता है। इस रोग का मुख्य लक्षण तेज बुखार, शरीर पर बड़ी गाँठो का बनना, श्वसन तंत्र का प्रभावित होना इत्यादि है। लम्पी स्किन रोग का फैलाव वाहक जैसे चिंचड, मच्छर मक्खियां इत्यादि द्वारा होता है अर्थात वायरस के लिए चिंचड़, मच्छर, मक्खियां वाहक का कार्य करते हैं।

रोग कारक

लम्पी स्किन डिजीज वायरस पोक्सविरिडी परिवार एवं कॉर्डोपॉक्सविरिडी उपपरिवार का सदस्य है। उक्त विषाणु केप्रीपोक्स वायरस वंश से संबंध रखता है।

फेलाव

उक्त रोग के विषाणु के फैलाव का मुख्य तरीका आर्थोपोडा (मच्छर, मख्खीया, चिंचड़) इत्यादि है
उक्त रोग का फैलाव रोगी पशु के सीधे संपर्क में आने से, रोगी पशु से संक्रमित चारा, पानी इत्यादि से भी हो सकता है।

रोग का इतिहास एवं वर्तमान स्थिति

लम्पी स्किन रोग सर्वप्रथम 1929 मे जांबिया (अफ्रीका) में देखा गया तत्पश्चात 1943 मे बोटसवाना में एवं तत्पश्चात संपूर्ण दक्षिण अफ्रीका में फैल गया था। भारतवर्ष में सर्वप्रथम 2019 मे इस बीमारी को देखा गया। वर्तमान स्थिति में राजस्थान राज्य में इस रोग का फैलाव देखा गया है।

रोग के लक्षण

1. शरीर का उच्च तापमान होना (105–106 °F)
2. सत्तही लिंफ नोड के आकार में वृद्धि होना
3. शरीर पर बड़ी गाँठो का बनना
4. आंख, नाक से पानी का आना, श्वसन तंत्र प्रभावित होता है।
5. शरीर पर उक्त बनी गाँठे फूट जाती है जिन से मवाद निकलती रहती है उक्त बने घावों में मक्खियों द्वारा अंडे छोड़ दिए जाते हैं जिससे घाव में कीड़े पड़ने की संभावनाएं बढ़ जाती है।
6. मुंह की श्लेष्मा झिली में छाले पड़ जाते हैं। वायरस के अधिक संक्रमण की स्थिति में उक्त छाले आंत और फेफड़ों इत्यादि में भी बन जाते हैं।
7. दुधारू पशुओं का दूध उत्पादन कम हो जाता है।
8. नर पशुओं में अपूर्ण अथवा पूर्णतया बांझपन
9. ग्याभिन मादा पशु में गर्भपात

रोग का उपचार

क्योंकि उक्त बीमारी वायरस जनित है अतः इसका कोई विशिष्ट उपचार नहीं है। परंतु द्वितीयक जीवाणु संक्रमण को रोकने के लिए एंटीबायोटिक, एंटीपायरेटिक्स इत्यादि का उपयोग किया जा सकता है।
त्वचा पर बनी जो गाँठे फूट गई है उन्हें गेंदे के फूल के रस में हल्दी एवं तेल मिश्रित कर लगाई जाए तो काफी अच्छा असर देखने को मिलता है।

रोग के बचाव एवं रोकथाम के उपाय

1. लम्पी स्किन डिजीज वायरस (एलएसडीवी) वैक्सीन
2. वर्तमान में इस बीमारी के बचाव हेतु केप्रीपॉक्स वैक्सीन का उपयोग इस रोग की रोकथाम के लिए भारतीय सरकार द्वारा लम्पी स्किन डिजीज से बचाव हेतू उपाय की एडवाइजरी में बताया गया है।
3. इस रोग से प्रभावित पशु को खुले में घूमने से रोकना चाहिए।
4. चूँकि रोग का फैलाव चिचड़ो, मच्छर, मक्खियों इत्यादि द्वारा होता है अतः पशुओं के बाह्य परजीवियों को नष्ट करने हेतु– साइपरमैथरीन का उपयोग किया जाना चाहिए।
5. उक्त रोग के उपचार हेतु अपने निकटतम पशु चिकित्सालय से संपर्क कर रोग का उपचार करवाना चाहिए।
6. पशुशाला के निष्क्रमण के लिये डिसइन्फैक्टैंट, सैनिटाइजर इत्यादि का उपयोग किया जा सकता है।

नमो ड्रोन दीदी : कृषि महिलाओं का सशक्तिकरण

प्रिया वैष्णव, सोनू जैन एवं शिवराज कुमावत
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

वैश्विक जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है और 2050 तक 9 बिलियन तक पहुंचने की उम्मीद है, जिससे कृषि खपत में उल्लेखनीय वृद्धि होगी। इस मांग को पूरा करने के लिए पर्याप्त खाद्य उत्पादन सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण हो गया है। लगभग 70 प्रतिशत भारतीय परिवारों की आय का मुख्य स्रोत कृषि विकास है। यह देखते हुए कि अधिकांश भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं, कृषि अत्यंत महत्वपूर्ण है। लगभग 54 प्रतिशत से अधिक भारतीय कृषि में कार्यरत हैं, जो देश के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 18 प्रतिशत है। कृषि एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बना हुआ है, लेकिन इसमें कई चुनौतियाँ हैं, जिसमें श्रम की कमी एक बड़ी चिंता का विषय है। अन्य मुद्दों में मौसम की स्थिति, अकुशल उर्वरक उपयोग, फसल संक्रमण और कवकनाशी, कीटनाशक और कीटनाशकों जैसे रासायनिक अनुप्रयोगों के कारण होने वाले विभिन्न स्वास्थ्य जोखिम शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, कीट और जानवरों के काटने से किसानों को और भी खतरा होता है। उन्नत तकनीकों, विशेष रूप से ड्रोन का एकीकरण, इनमें से कई चुनौतियों के लिए आशाजनक समाधान प्रदान करता है। फसल की निगरानी, उर्वरक अनुप्रयोग को अनुकूलित करने और समग्र उत्पादकता को बढ़ाने में सहायता करके कृषि दक्षता में सुधार करने में ड्रोन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फसल मूल्यांकन, भूमि रिकॉर्ड डिजिटलीकरण और कीटनाशकों और पोषक तत्वों के सटीक छिड़काव के लिए ड्रोन का उपयोग किया जा रहा है। इसका उद्देश्य खेती के तरीकों को आधुनिक बनाना है, उन्हें अधिक टिकाऊ और कुशल बनाना है।

ग्रामीण भारत में, लगभग 80 प्रतिशत महिलाएँ कार्यरत हैं और कृषि विकास पर निर्भर हैं। महिलाओं को उनके महत्व के बावजूद कृषि उत्पादन में अभी भी महत्वपूर्ण बाधाएँ हैं। वास्तव में, वे भूमिहीन मजदूरों का बहुमत बनाती हैं, और उत्तराधिकार कानून और प्रथाएँ उनके खिलाफ भेदभाव करती हैं। मृत्यु या तलाक के कारण उनके परिवार के अलग होने की स्थिति में भी उनके पास बहुत कम वास्तविक सुरक्षा होती है।

1. महिलाओं की आर्थिक असमानता

रोज़गार – पीएलएफ़एस की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार, 2021–22 में कामकाजी आयु (15 वर्ष और उससे अधिक) की केवल 32.8 प्रतिशत महिलाएँ ही श्रम बल में थीं।

अनौपचारिकीकरण – अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार, भारत में महिलाओं के रोज़गार का 81.8 प्रतिशत अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में केंद्रित है। यह दर्शाता है कि भारत में अधिकांश महिला श्रमिक उच्च वेतन वाली नौकरियों में नहीं आ पाती हैं।

मज़दूरी का अंतर – भारत में लिंगों के बीच वेतन का अंतर दुनिया में सबसे ज़्यादा है। ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट 2021 के अनुसार, भारत में महिलाओं को औसतन पुरुषों की आय का 21 प्रतिशत भुगतान किया जाता है।

2. भारतीय कृषि में महिलाओं की वर्तमान स्थिति

महिलाएं कृषि विकास और संबद्ध क्षेत्रों में महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका निभाती हैं। कृषि में महिलाओं की भागीदारी की प्रकृति और सीमा क्षेत्र–दर–क्षेत्र बहुत भिन्न होती है। लेकिन इन भिन्नताओं के बावजूद, महिलाएँ विभिन्न कृषि गतिविधियों में सक्रिय रूप से शामिल हैं। जनगणना 2011 के अनुसार, कुल महिला श्रमिकों में से 55 प्रतिशत कृषि मजदूर थीं और 24 प्रतिशत किसान थीं। हालाँकि, केवल 12.8 प्रतिशत परिचालन जोत महिलाओं के स्वामित्व में थी, जो कृषि में भूमि जोत के स्वामित्व में लैंगिक असमानता को दर्शाता है। इसके अलावा, सीमांत और छोटी जोत श्रेणियों में महिलाओं द्वारा परिचालन जोत (25.7 प्रतिशत) का संकेन्द्रण है। वर्तमान समय में सांख्यिकी और योजना मंत्रालय के अनुसार 2022–23 में देश में महिलाओं (24 प्रतिशत) का श्रमिक जनसंख्या अनुपात पुरुषों (54.4 प्रतिशत) की तुलना में कम है। ग्रामीण महिलाओं के लिए कार्यबल भागीदारी दर शहरी महिलाओं की भागीदारी दर 20.20 प्रतिशत की तुलना में 30.5 प्रतिशत अधिक है।

3. कृषि में महिलाओं का योगदान

महिलाएँ कृषि में कई तरह की भूमिकाएँ निभाती हैं, जिनमें मज़दूर, उद्यमी और किसान शामिल हैं।भारत में ग्रामीण महिलाओं का काम देश के खाद्य उत्पादन के 60–80 प्रतिशत के लिए ज़िम्मेदार है। इसके अलावा, ग्रामीण महिलाएँ बागवानी, पशुपालन, कटाई के बाद की गतिविधियाँ, कृषि/सामाजिक वानिकी, मछली पकड़ने आदि जैसे संबंधित उद्योगों में काम करती हैं। महिलाएँ कृषि में श्रम–गहन शारीरिक कार्यों को संभालती हैं, जिसमें मवेशियों का प्रबंधन, चारा इकट्ठा करना, दूध दुहना, थ्रेसिंग, विनोइंग आदि शामिल हैं।

4. नमो ड्रोन दीदी योजना

नमो ड्रोन दीदी एक केंद्रीय क्षेत्र की योजना है 15 अगस्त, 2023 को, माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने "नमो ड्रोन दीदी" योजना शुरू करने की घोषणा की, जिसका उद्देश्य महिलाओं को एक स्थायी व्यवसाय मॉडल में शामिल करके उन्हें सशक्त बनाना है, जहां इस पहल से प्रत्येक एसएचजी के लिए प्रति वर्ष कम से कम 1 लाख रुपये की अतिरिक्त आय उत्पन्न होने की उम्मीद है, जो आर्थिक सशक्तीकरण और स्थायी आजीविका सृजन में योगदान देगा। जिसका उद्देश्य महिलाओं के नेतृत्व वाले स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) को कृषि सेवाएँ प्रदान करने के लिए ड्रोन तकनीक से लैस करके उन्हें सशक्त बनाना है। इस योजना का उद्देश्य 2024–25 से 2025–2026 की अवधि के दौरान 15000 चयनित महिला एसएचजी को कृषि उद्देश्य (वर्तमान में तरल उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग) के लिए किराये की सेवाएँ प्रदान करने के लिए ड्रोन प्रदान करना है।

(क) नमो ड्रोन दीदी योजना की मुख्य विशेषताएं

वित्तीय सहायता और पहुँच – महिला एसएचजी को पर्याप्त वित्तीय सहायता मिलती है, जो ड्रोन और सहायक उपकरण की लागत का 80 प्रतिशत कवर करती है, जो 8 लाख रुपये तक है। यह सहायता ड्रोन तकनीक से जुड़े उच्च अग्रिम खर्चों को कम करने में मदद करती है। शेष 20 प्रतिशत लागत के लिए, एसएचजी राष्ट्रीय कृषि अवसंरचना वित्तपोषण सुविधा (एआईएफ) से 3 प्रतिशत ब्याज अनुदान के साथ ऋण ले सकते हैं।

सहयोगात्मक प्रयास – यह योजना कृषि और किसान कल्याण विभाग, ग्रामीण विकास विभाग और उर्वरक विभाग के साथ–साथ प्रमुख उर्वरक कंपनियों (एलएफसी) और अन्य सहायक संस्थाओं के बीच एक सहयोगात्मक उद्यम है। इन विभागों के संसाधनों का अभिसरण ग्रामीण क्षेत्रों में एसएचजी के लिए प्रभावी संसाधन आवंटन, मांग–आधारित तैनाती और निरंतर समर्थन सुनिश्चित करता है।

क्लस्टर आधारित कार्यान्वयन – योजना का कार्यान्वयन ग्रामीण क्षेत्रों में डीएवाई–एनआरएलएम के तहत क्षेत्र/क्लस्टर और एसएचजी समूहों के उचित चयन पर निर्भर करता है, जहां कृषि सेवाएं प्रदान करने के लिए ड्रोन की मांग है। इस प्रकार, ड्रोन सेवाओं के लिए किसानों की ओर से उनकी ओर से कुछ प्रतिबद्धता के आधार पर मांग का मूल्यांकन क्षेत्र/क्लस्टर के चयन के लिए किया जाएगा, जो तब एसएचजी के चयन का आधार बन जाएगा। उपयुक्त क्लस्टर की पहचान की जाएगी, जहां ड्रोन का उपयोग आर्थिक रूप से व्यवहार्य है।

महिला स्वयं सहायता समूह सदस्यों के लिए विशेष प्रशिक्षण – योग्य महिला स्वयं सहायता समूह के सदस्यों में से एक को 15 दिवसीय प्रशिक्षण के लिए चुना जाएगा, जिसमें 5 दिवसीय अनिवार्य ड्रोन पायलट प्रशिक्षण और पोषक तत्व और कीटनाशक अनुप्रयोग के लिए कृषि उद्देश्य के लिए अतिरिक्त 10 दिवसीय प्रशिक्षण शामिल है।

(ख) नमो ड्रोन दीदी योजना के लाभ

महिलाओं का सशक्तिकरण – यह योजना ड्रोन तकनीक में विशेष प्रशिक्षण प्रदान करती है, जिससे महिलाओं को उन्नत कौशल से लैस किया जाता है जो आधुनिक कृषि में तेजी से मूल्यवान होते जा रहे हैं। यह ज्ञान उन्हें फसल निगरानी, मिट्टी विश्लेषण और सटीक खेती जैसे कार्यों को अधिक कुशलता से करने में सक्षम बनाता है।

कृषि दक्षता में वृद्धि – ड्रोन तकनीक कीटनाशकों और उर्वरकों के सटीक अनुप्रयोग को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ाती है, जिससे पारंपरिक कृषि प्रथाओं में बदलाव आता है। उन्नत जीपीएस और सेंसर तकनीक से लैस, ड्रोन को खेतों पर सटीक उड़ान पथों का अनुसरण करने के लिए प्रोग्राम किया जा सकता है, यह सटीकता रसायनों के अत्यधिक उपयोग को कम करती है, पर्यावरणीय प्रभाव को कम करती है और किसानों के लिए लागत कम करती है।

कौशल विकास और ज्ञान विस्तार – यह योजना ड्रोन तकनीक में विशेष प्रशिक्षण प्रदान करती है, जिससे महिलाओं को आधुनिक कृषि पद्धतियों जैसे उर्वरकों, कीटनाशकों और शाकनाशियों को सटीक रूप से लागू करने, समान वितरण और इष्टतम उपयोग सुनिश्चित करने में उन्नत कौशल प्राप्त करने में सक्षम बनाया जाता है। महिलाएँ कम या ज़्यादा पानी की ज़रूरत वाले क्षेत्रों की पहचान करके, रिसाव का पता लगाकर और जल संसाधनों का कुशलतापूर्वक प्रबंधन करके सिंचाई प्रबंधन को भी बढ़ा सकती हैं।

समुदाय और नेटवर्किंग के अवसर – महिलाएँ साथी प्रतिभागियों के सहायक नेटवर्क से जुड़ सकती हैं, जिससे समुदाय और सहयोग की भावना को बढ़ावा मिलता है। उन्हें मंचों और कार्यशालाओं में शामिल होने का मौका मिलता है जहाँ वे अपने अनुभव, चुनौतियाँ और सर्वोत्तम अभ्यास साझा कर सकते हैं, जिससे उनका सामूहिक ज्ञान और कौशल बढ़ता है।

5. ड्रोन तकनीक की जरूरत

उर्वरक क्षेत्र में चुनौतियों का सामना करना – भारत दूसरा सबसे बड़ा उर्वरक उत्पादक होने के बावजूद सीमित प्राकृतिक संसाधनों के कारण चुनौतियों का सामना कर रहा है, जिससे आयात पर भारी निर्भरता है। आत्मनिर्भर भारत योजना, सरकार की व्यापक रणनीति का हिस्सा है, जो बंद हो चुकी उर्वरक इकाइयों को पुनर्जीवित करने और नई इकाइयाँ स्थापित करने पर केंद्रित है। यह किसानों के लिए स्थिर उर्वरक मूल्य सुनिश्चित करता है और कोविड–19 महामारी और वैश्विक भू–राजनीतिक तनावों से उत्पन्न चुनौतियों का समाधान करता है।

स्वदेशी अनुसंधान और अभूतपूर्व समाधान – आत्मनिर्भर भारत योजना का उद्देश्य केवल उर्वरक क्षेत्र को बनाए रखना नहीं है, बल्कि स्वदेशी अनुसंधान को प्रोत्साहित करना है। इसके परिणामस्वरूप अभूतपूर्व तरल नैनो उर्वरक सामने आए हैं, जो कृषि में आत्मनिर्भरता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यह योजना बाहरी स्रोतों पर निर्भरता को कम करने और कृषि के लिए स्वदेशी समाधानों को बढ़ावा देने के बड़े लक्ष्य के साथ संरेखित है।

6. कृषि आर्थिक प्रभाव और रोजगार सृजन

विविध आर्थिक अवसर – यह योजना महिलाओं के लिए नए आर्थिक अवसर खोलती है, जिससे कृषि और आपदा प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में आय सृजन की उनकी क्षमता का विस्तार होता है।

कृषि पद्धतियों का आधुनिकीकरण – कृषि में ड्रोन के उपयोग के माध्यम से, यह योजना कृषि पद्धतियों के आधुनिकीकरण, उत्पादकता को बढ़ावा देने और कीटनाशकों और तरल उर्वरकों के छिड़काव जैसी गतिविधियों में समय और श्रम की बचत की आवश्यकता को संबोधित करती है।

दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँच और डेटा संग्रह – ड्रोन का उपयोग डेटा संग्रह और निगरानी के लिए दूरदराज के क्षेत्रों तक पहुँच को सक्षम बनाता है, जो सामुदायिक विकास और कुशल संसाधन प्रबंधन में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

ड्रोन से संबंधित क्षेत्रों में रोजगार – यह ड्रोन निर्माण, पायलटिंग, मैकेनिक्स और स्पेयर–पार्ट डीलरशिप में रोजगार की संभावनाएँ भी पैदा करता है, जिससे ड्रोन तकनीक के इर्द–गिर्द एक नया उद्योग पारिस्थितिकी तंत्र विकसित होता है।

नमो ड्रोन दीदी योजना के माध्यम से भारत सरकार ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को सशक्त बनाते हुए कृषि पद्धतियों को आगे बढ़ाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठा रही है। यह पहल महिलाओं के नेतृत्व वाले विकास को बढ़ावा देने और कृषि जैसे पारंपरिक क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी को शामिल करने के सरकार के व्यापक लक्ष्यों के अनुरूप है। यह योजना कृषि पद्धतियों में क्रांति लाने, स्वयं सहायता समूहों के लिए एक स्थायी आय स्रोत प्रदान करने और ग्रामीण भारत में महिला उद्यमियों की एक नई पीढ़ी को प्रेरित करने का वादा करती है। नमो ड्रोन दीदी योजना कृषि परिवर्तन के लिए उत्प्रेरक के रूप में उभरती है, जो तकनीकी नवाचार को महिला सशक्तिकरण के प्रति प्रतिबद्धता के साथ जोड़ती है। कृषि परिदृश्य में ड्रोन तकनीक को रणनीतिक रूप से एकीकृत करके, यह पहल न केवल तत्काल चुनौतियों का समाधान करती है, बल्कि ग्रामीण समुदायों के लिए अधिक टिकाऊ और समावेशी भविष्य का मार्ग भी प्रशस्त करती है।

किसानों के लिए फायदेमंद आधुनिक कृषि तकनीकें

मृणाल पांडे एवं संदीप कुमार
शोध छात्र, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ लगभग 60% आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। किसानों की आय बढ़ाने और कृषि उत्पादकता में सुधार लाने के लिए आधुनिक कृषि तकनीकों का उपयोग करना आवश्यक है। यह लेख किसानों के लिए फायदेमंद कुछ आधुनिक कृषि तकनीकों पर प्रकाश डालता है, जो उनकी आय बढ़ाने और कृषि को अधिक स्थायी बनाने में मदद कर सकते हैं।

1. सटीक कृषि

सटीक कृषि एक आधुनिक तकनीक है जिसमें उपग्रह, जीपीएस, और सेंसर का उपयोग करके खेतों की स्थिति का सटीक विश्लेषण किया जाता है। इस तकनीक से किसानों को यह पता चलता है कि किस हिस्से में कितनी पानी, उर्वरक, या कीटनाशक की आवश्यकता है। इससे संसाधनों का सही उपयोग होता है और लागत कम होती है।

फायदेः

- उर्वरक और पानी का सही उपयोग
- उत्पादकता में वृद्धि
- पर्यावरण को कम नुकसान

2. जैविक खेती

जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के बजाय प्राकृतिक तरीकों का उपयोग किया जाता है। इससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और उत्पादों की गुणवत्ता भी बेहतर होती है। जैविक उत्पादों की मांग बाजार में तेजी से बढ़ रही है, जिससे किसानों को अच्छे दाम मिलते हैं।

फायदेः

- मिट्टी की सेहत में सुधार
- उत्पादों की बेहतर गुणवत्ता
- पर्यावरण के अनुकूल

3. ड्रिप सिंचाई

ड्रिप सिंचाई एक पानी बचाने वाली तकनीक है जिसमें पानी को सीधे पौधों की जड़ों तक पहुँचाया जाता है। इससे पानी की बर्बादी कम होती है और फसलों को सही मात्रा में पानी मिलता है। यह तकनीक विशेष रूप से उन क्षेत्रों के लिए उपयोगी है जहाँ पानी की कमी है।

फायदेः

- पानी की बचत
- फसलों की बेहतर वृद्धि
- लागत में कमी

4. हाइड्रोपोनिक्स और एरोपोनिक्स

हाइड्रोपोनिक्स और एरोपोनिक्स ऐसी तकनीकें हैं जिनमें मिट्टी के बिना पौधे उगाए जाते हैं। हाइड्रोपोनिक्स में पौधों को पानी में पोषक तत्व मिलाकर उगाया जाता है, जबकि एरोपोनिक्स में पौधों की जड़ों को हवा में लटकाकर पोषक तत्व दिए जाते हैं। यह तकनीक छोटे क्षेत्र में अधिक उत्पादन देती है और शहरी क्षेत्रों के लिए भी उपयुक्त है।

फायदेः

- कम जगह में अधिक उत्पादन
- पानी की बचत
- कीटों और बीमारियों का कम खतरा

5. कृषि ड्रोन

कृषि ड्रोन का उपयोग खेतों की निगरानी, फसलों का विश्लेषण, और कीटनाशकों का छिड़काव करने के लिए किया जाता है। यह तकनीक किसानों को समय और श्रम की बचत करती है और फसलों की स्थिति का सही आकलन करने में मदद करती है।

फायदेः

- समय और श्रम की बचत
- फसलों का सही विश्लेषण
- कीटनाशकों का सही उपयोग

6. मृदा स्वास्थ्य कार्ड

मृदा स्वास्थ्य कार्ड एक सरकारी योजना है जिसमें किसानों को उनकी मिट्टी की गुणवत्ता का विश्लेषण करके एक कार्ड दिया जाता है। इस कार्ड में मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी और उसके लिए आवश्यक उर्वरकों की जानकारी दी जाती है। इससे किसान सही मात्रा में उर्वरक का उपयोग कर सकते हैं।

फायदेः

- मिट्टी की सेहत में सुधार
- उर्वरकों का सही उपयोग
- लागत में कमी

किसानों के लिए फायदेमंद आधुनिक कृषि तकनीकें

7. फसल चक्रण और मिश्रित खेती

फसल चक्रण और मिश्रित खेती पारंपरिक तरीके हैं जो आधुनिक कृषि में भी उपयोगी हैं। फसल चक्रण से मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है और कीटों का प्रकोप कम होता है। मिश्रित खेती में एक साथ कई फसलें उगाई जाती हैं, जिससे जोखिम कम होता है और आय बढ़ती है।

फायदेः

- मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है
- कीटों का प्रकोप कम होता है
- आय के स्रोत बढ़ते हैं

निष्कर्ष

आधुनिक कृषि तकनीकें किसानों के लिए एक वरदान साबित हो सकती हैं। इन तकनीकों का उपयोग करके किसान न केवल अपनी उत्पादकता बढ़ा सकते हैं, बल्कि पर्यावरण को भी बचा सकते हैं। सरकार और कृषि विशेषज्ञों को इन तकनीकों के प्रति किसानों को जागरूक करने और उन्हें प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। किसानों को भी नई तकनीकों को अपनाने के लिए तैयार रहना चाहिए ताकि वे अपनी आय बढ़ा सकें और कृषि को अधिक स्थायी बना सकें।

–: किसानों का सशक्तिकरण ही देश का सशक्तिकरण है :–

प्रधानमंत्री कुसुम योजना : किसानों के लिए सौर ऊर्जा की ओर एक कदम

सुन्दर, सुभिता कुमावत एवं प्रेम सिंह शेखावत
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

प्रधानमंत्री कुसुम योजना का उद्देश्य भारतीय किसानों को सौर ऊर्जा के उपयोग के लिए प्रोत्साहित करना है। यह योजना 2019 में भारत सरकार द्वारा शुरू की गई थी और इसका प्रमुख उद्देश्य कृषि क्षेत्र में ऊर्जा की समस्या का समाधान करना और किसानों की आय बढ़ाना है। इस योजना के तहत किसानों को सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा के विकल्प उपलब्ध कराए जाते हैं, जिससे वे अपने कृषि पंपों को सौर ऊर्जा से चला सकें और अतिरिक्त ऊर्जा को राष्ट्रीय ग्रिड में बेच सकें। मार्च 2026 तक, तीनों कार्यक्रम घटकों से कुल 34,422 करोड़ रुपये की केंद्रीय वित्तीय सहायता के साथ सौर क्षमता में लगभग 34,800 मेगावाट की वृद्धि होने की उम्मीद है (राष्ट्रीय पोर्टल, पीएम–कुसुम, नवीन नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार)। राजस्थान राज्य सौर जल पंपों को बढ़ावा देने में तीसरे स्थान पर है, जिसके पास 82253 पंप हैं, जो 2023–2024 तक देश में स्थापित कुल सौर पंपों की संख्या का 16.47% है (राष्ट्रीय पोर्टल, पीएम–कुसुम, नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार)। राजस्थान सरकार ने सौर ऊर्जा का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए 2008–2009 में प्रायोगिक आधार पर 14 सौर पंप लगाए। 2011–12 में, राज्य ने संघीय और राज्य सरकारों के कई कार्यक्रमों को मिलाकर एक एकीकृत सौर जल पंप कार्यक्रम बनाया। राजस्थान को लगभग 6–7 kWh/sq m. दिन सौर विकिरण प्राप्त होता है और यहाँ सालाना 325 धूप वाले दिन होते हैं, जो इसे सबसे अधिक धूप वाले राज्यों में से एक बनाता है।

राजस्थान सौर ऊर्जा का उपयोग करके 142 गीगावाट बिजली पैदा कर सकता है। सरकार इस क्षमता का लगातार उपयोग करने का इरादा रखती है और उसने 2024–25 तक 30 गीगावाट क्षमता का लक्ष्य रखा है, जो राज्य और देश के ऊर्जा परिदृश्य को बदल देगा।

योजना के मुख्य घटक :

1. घटक ए : 10,000 मेगावाट के विकेन्द्रीकृत ग्राउंड ग्रिड की स्थापना।

किसानों द्वारा अपनी भूमि पर सौर या अन्य नवीकरणीय ऊर्जा आधारित बिजली संयंत्रों को जोड़ा जाना चाहिए। इस घटक के तहत किसानों को सौर पंप लगाने के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है। ये पंप सिंचाई के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं, ताकि किसानों को बिजली की समस्या का समाधान मिल सके। सौर पंप उन क्षेत्रों के लिए एक आदर्श समाधान है जहां बिजली की आपूर्ति की समस्या है। इसे लगाने पर किसानों को नियमित रूप से बिजली मिलती है, जो कृषि कार्यों में सहायक होती है।

2. घटक बी : 14 लाख एकल सौर कृषि पंपों की स्थापना। इस घटक के तहत किसानों को उनकी ज़मीन पर सौर पैनल स्थापित करने का अवसर दिया जाता है। इससे वे अपनी ज़मीन पर सौर ऊर्जा उत्पन्न कर सकते हैं। किसान अपनी आवश्यकता से अधिक ऊर्जा उत्पन्न कर सकते हैं, जिसे वे राष्ट्रीय ग्रिड से जोड़ सकते हैं और इससे अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं।

3. घटक सी : 35 लाख ग्रिड से जुड़े फीडर स्तर का सौरीकरण। इस घटक के अंतर्गत किसानों को छोटे और बड़े पैमाने पर सौर ऊर्जा पंप स्थापित करने के लिए पूंजीगत सहायता दी जाती है। इसमें सरकारी सहायता के अलावा, बैंक से भी ऋण प्राप्त करने का विकल्प होता है।

सब्सिडी राशि : पीएम–कुसुम योजना के तहत केंद्र और राज्य सरकार दोनों की ओर से 30% सब्सिडी दी जाती है। इसके अलावा बैंकों से 30% तक लोन की सुविधा भी ली जा सकती है। कार्यान्वयन एजेंसियों को सेवा शुल्क सहित 34,422 करोड़ रुपये की कुल संघीय वित्तीय सहायता के साथ, इस परियोजना का लक्ष्य 2023 तक सौर क्षमता को 30,800 मेगावाट तक बढ़ाना है।

प्रधानमंत्री कुसुम योजना की प्रमुख विशेषताएँ :

1. स्वच्छ और सस्ती ऊर्जा :

यह योजना किसानों को सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा उपलब्ध कराती है, जिससे पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों जैसे बिजली, डीजल आदि पर निर्भरता कम होती है।

2. आर्थिक लाभ :

किसानों को अतिरिक्त बिजली उत्पन्न करने का अवसर मिलता है, जिसे वे राष्ट्रीय ग्रिड से जोड़कर बेच सकते हैं, और इससे उनकी अतिरिक्त आय हो सकती है।

3. ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार :

इस योजना के तहत सौर पंपों और सौर पैनल की स्थापना और रखरखाव के लिए नई रोजगार संभावनाएँ पैदा होती हैं, जिससे ग्रामीण युवाओं को रोजगार मिलता है।

4. पारिस्थितिकी को लाभ :

सौर ऊर्जा का उपयोग पर्यावरण के लिए लाभकारी होता है, क्योंकि यह प्रदूषण मुक्त होता है और जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता को कम करता है।

5. किसानों के लिए वित्तीय सहायता :

इस योजना में किसानों को सौर पंप और सौर पैनल की लागत में सब्सिडी दी जाती है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति पर भार नहीं पड़ता।

- **परिणाम :**

  देश की स्थापित सौर ऊर्जा क्षमता 31 मार्च, 2014 तक 2.82 गीगावाट से बढ़कर 2023 तक 73.32 गीगावाट तक पहुंच गई है (राष्ट्रीय पोर्टल, पीएम–कुसुम, नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार)। यह उल्लेखनीय वृद्धि भारत की अपने नवीकरणीय ऊर्जा पोर्टफोलियो का विस्तार करने और पारंपरिक जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता कम करने की दृढ़ प्रतिबद्धता को रेखांकित करती है।

- **सारांश :**

  प्रधानमंत्री कुसुम योजना का उद्देश्य किसानों को सौर ऊर्जा का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना है, ताकि वे सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा का इस्तेमाल कर सकें और अपनी आय में वृद्धि कर सकें। इस योजना से कृषि कार्यों में सुधार होता है, बिजली की निर्बाध आपूर्ति सुनिश्चित होती है, और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा मिलता है।

पात्रता और आवेदन प्रक्रिया :

- **पात्रता :**

  इस योजना का लाभ भारतीय किसान, सहकारी समितियाँ, ग्रामीण कृषि समितियाँ, और कृषि संस्थाएँ उठा सकती हैं।

- **आवेदन प्रक्रिया :**

  आवेदन प्रक्रिया राज्य सरकारों और केंद्रीय मंत्रालय के माध्यम से की जाती है। इच्छुक किसान अपनी राज्य सरकार की वेबसाइट पर जाकर आवेदन कर सकते हैं।

इस योजना के माध्यम से, भारत सरकार ग्रामीण क्षेत्र में कृषि सुधारों और स्वच्छ ऊर्जा के प्रचार–प्रसार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठा रही है।
किसान https:@pmkusum-mnre-gov-in/#/landing वेबसाइट से अपना आवेदन एवं अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते है।

पीएम धन–धान्य कृषि योजना

सोनू जैन[1], धर्मेन्द लाखराण[2] एवं आकांक्षा पारीक[2]

[1]सहायक आचार्य, [2]विद्यावाचस्पति विद्यार्थी, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

केन्द्र सरकार ने पीएम धन–धान्य कृषि योजना की शुरूआत की है, जिसका उद्देश्य 100 कम उत्पादकता वाले जिलों में किसानों की सहायता करना और कृषि क्षेत्र को सशक्त बनाना है, इस योजना की घोषणा वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने केन्द्रीय बजट 2025 के दौरान की थी, योजना के तहत लगभग 1.7 करोड़ किसानों को लाभ मिलेगा।

मोदी सरकार ने किसानों को एक और तोहफा देते हुए पीएम धन–धान्य कृषि योजना (PM Dhan-Dhanyan Krishi Yojana) शुरू की है, जिसका उद्देश्य भारत भर के 100 जिलों में कम फसल की पैदावार बढ़ाना है साथ ही ऋण तक किसानों की आसान पहुंच को सुनिश्चित करना है यह पहल लगभग 1.7 करोड़ किसानों को लाभ पहुंचाने के लिए डिजाइन की गई है, जिसमें उन्नत कृषि तकनीक, फसल विविधीकरण, सिंचाई, सुधार और वित्तीय संसाधनों तक बेहतर पहुंच पर केन्द्रित हैं। बता दें कि केंन्द्रिय बजट 2025 के दौरान वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने इस योजना की घोषणा की यह कार्यक्रम मौजूदा कृषि योजनाओं को विशेष हस्तक्षेपों के साथ एकीकृत करके ग्रामीण समृद्धि में सुधार करेगा।

क्या है योजना का उद्देश्य :

- फसल विविधीकरण को बढ़ावा
- सिंचाई बुनियादी ढ़ांचे का विस्तार
- किसानों के लिए सस्ती वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना

योजना का नाम पीएम धन–धान्य कृषि योजना 2025

शुरूआत	वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण
लाभार्थी	वे किसान जो कम उपजाऊ और विकसित क्षेत्रों में आते हैं
लाभ	किसानों को उच्च गुणवत्ता वाले बीज, उर्वरक और रसायन प्रदान करना ताकि उत्पादन बढ सके
उद्देश्य	कृषि उत्पादन में वृद्धि करना
लक्ष्य	1.7 करोड़ से अधिक किसानों को लाभ पहुंचाना
योजना लॉन्च तिथि	01 फरवरी 2025

कौन है इसके पात्र (Eligibility) :

इस योजना के तहत सीमांत छोटे किसान भूमिहीन परिवार महिला किसान एवं युवा किसानों पर खास ध्यान दिया गया है, यहां आप पात्रता डिटेम्स देख सकते हैं।

कवरेज : देश के 100 कम उत्पादकता वाले जिले

लाभार्थी : सीमांत छोटे किसान भूमिहीन परिवार महिला किसान एवं युवा किसान

वित्तीय स्थिति : ऐसे किसान जिनकी कृषि संसाधनों तक पहुंच सीमित है।

कौन से डॉक्यूमेंट्स है जरूरी (Required Documents) :

1. आधार कार्ड–पहचान प्रमाण के लिए
2. भूमि स्वामित्व दस्तावेज–खेती की जमीन का प्रमाण
3. बैंक खाता जानकारी–लाभ सीधे बैंक खाते में जमा करने के लिए
4. आय प्रमाण पत्र–यदि आवश्यक हो तो आर्थिक स्थिति का प्रमाण
5. अन्य दस्तावेज–राज्य सरकार या स्थानीय प्रशासन द्वारा मांगे जाने पर

क्या है आवेदन प्रकिया :

पात्र पाए गए किसानों को योजना के तहत लाभ मिलेगा, पीएम धन–धान्य कृषि योजना के लिए आवेदन करने की प्रकिया की जानकारी यहां दी गयी हैः–

स्थानीय कृषि कार्यालय जाएं	: अपने जिले के कृषि कार्यालय में संपर्क करें।
आवेदन पत्र भेरें	: आवश्यक दस्तावेज संलग्न कर फॉर्म जमा करें।
वेरिफिफेशन	: स्थानीय अधिकारियों द्वारा दस्तावेजों की जांच होगी।
मंजूरी और लाभ हस्तांतरण	: पात्र पाए गए किसानों को योजना के तहत लाभ मिलेगा।

यह योजना ग्रामीण अथव्यवस्था को सशक्त बनाने, रोजगार के नए अवसर पैदा करने और कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भरता लाने की दिशा में एक बड़ा कदम हैं।

प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना

सोनू जैन[1], आकांक्षा पारीक[2] एवं एस.एस. शर्मा[1]

[1]सहायक आचार्य, [2]विद्यावाचस्पति विद्यार्थी, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना (पी.एम.एम.एस.वाई.योजना) मत्स्यपालन विभाग, मत्स्यपालन, पशुपालन और डेयरी मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा संचालित हैं। इस योजना के तहत मछुआरों के कल्याण सहित मत्स्यपालन क्षेत्र के समग्र विकास के लिए 20,050 करोड़ रूपये के अनुमानित निवेश से भारतवर्ष में मत्स्यपालन क्षेत्र में सतत तथा उत्तरदायी विकास के माध्यम से नीली क्रांति लाने के लिए चलाई जा रही हैं। प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना वित्त वर्ष 2020–21 से वित्त वर्ष 2024–25 तक 05 वर्ष की अवधि के लिए सभी राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों में कार्यन्वित की जा रही हैं।

प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना को मछली उत्पादन, उत्पादकता और गुणवत्ता से लेकर प्रौदयोगिकी, कटाई के बाद के बुनियादी ढांचे और विपणन तक मत्स्य पालन मूल्य श्रृंखला में महत्वपूर्ण अंतराल को दूर करने के लिए डिजाइन किया गया है। इसका मूल उद्देश्य मूल्य श्रृंखला को आधुनिक बनाना और मजबूत करना, पता लगाने की क्षमता को बढ़ाना और एक मजबूत मत्स्य प्रबंधन ढांचा स्थापित करना है, साथ ही साथ मछुआरों और मछली किसानों के सामाजिक–आर्थिक कल्याण को सुनिश्चित करना हैं।

अवधि

यह योजना वित्त वर्ष 2020–21 से वित्त वर्ष 2024–25 तक 05 वर्ष की अवधि के लिए सभी राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों में कार्यन्वित की जा रही हैं।

परिवर्तन की लहर : नीली क्रांति से प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना तक

पूर्व नीली क्रांति योजना की उत्पत्ति भारत के प्रधानमंत्री के विजन से हुई है।, ''अशोक चक्र के नीले रंग में दर्शाई गई नीली क्रांति की शुरूआत करने का समय आ गया है'', तदनुसार, मत्स्यपालन क्षेत्र के ''एकीकृत, उत्तरदायी, जिम्मेदार और समग्र विकास और प्रबंधन'' को उत्प्रेरित करने के लिए 5 वर्षो (2015–16 से 2019–20) के लिए 3000 करोड़ के परिव्यय के साथ एक केन्द्र प्रायोजित योजना के रूप में नीली क्रांति दिसंबर 2015 में शुरू की गई थी।

नीली क्रांति के तहत मात्स्यिकी क्षेत्र में उपलब्धियां

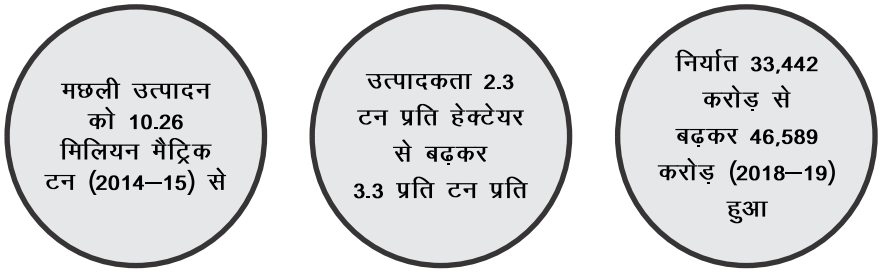

पी. एम. एम. एस. वाई. के उद्देश्य

- एक स्थायी जिम्मेदार, समावेशी और न्यायसंगत तरीके से मत्स्य पालन क्षेत्र की क्षमता का दोहन।
- भूमि और पानी के विस्तार, गहनीकरण, विविधीकरण और उत्पादन उपयोग के माध्यम से मछली उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाना।
- फसलोत्तर प्रबंधन और गुणवत्ता सुधार सहित मूल्य श्रृंखला का आधुनिकीकरण और सुट्टढ़ीकरण।
- मछुआरों और मछली किसानों की आय दुगुनी करना और सार्थक रोजगार सृजित करना।
- कृषि संबंधी जीवीए और निर्यात में मत्स्यिकी क्षेत्र के योगदान को बढ़ाना।
- मछुआरों और मछली किसानों के लिए सामाजिक, भौतिक और आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करना।
- एक मजबुत मत्स्यिकी प्रबंधन और नियामक ढांचा तैयार करना।

पी. एम. एम. एस. वाई. के लक्ष्य

1. मछली उत्पादन और उत्पादकता

- वर्ष 2018–19 में 13.75 मिलियन मैट्रिक टन से 2024–25 तक मछली उत्पादन बढ़ाकर 22 मिलियन मैट्रिक टन करना।
- जलीय कृषि उत्पादकता को वर्तमान राष्ट्रीय औसत 3 टन से बढ़ाकर 5 टन प्रति हेक्टेयर करना।
- प्रति व्यक्ति धरेलू मछली की खपत को 5 किलो से बढ़ाकर 12 किलो प्रति व्यक्ति करना।

2. आर्थिक मूल्य संवर्धन

- वर्ष 2018–19 में 7.28 प्रतिशत से वर्ष 2024–25 तक कृषि जी.वी.ए. में मत्स्यपालन क्षेत्र का योगदान करीब 9 प्रतिशत तक बढ़ाना।
- 2018–19 में 46,589 करोड़ रूपये से 2024–25 तक निर्यात आय को दुगुना करके 1,00,000 करोड़ रूपये करना।
- मात्स्यिकी क्षेत्र में निजी निवेश और उधमिता के विकास को सुगम बनाना।
- मछली के पोस्ट हार्वेस्ट नुकसान को 20–25 प्रतिशत से घटाकर लगभग 10 प्रतिशत तक कम करना।

3. आय और रोजगार सृजन में वृद्धि

- मूल्य श्रृंखला के साथ 55 लाख प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रोजगार के अवसर पैदा करना।
- मछुआरों और मछली किसानों की आय को दुगुना करना।

मरुभूमि में विविध परिदृश्य : फतेहपुर-शेखावाटी और कृषि-पर्यटन

संगीता झाझड़िया एवं सुभिता कुमावत
सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

जब सुनहरी धूप लहरदार रेत के टीलों पर गिरती है और पर्यटकों का एक समूह पारंपरिक जल संरक्षण तकनीकों एवम कृषि पद्धतियाँ के दर्शन करते हुए एक अनुभवी कृषि वैज्ञानिक के आसपास इकट्ठा होता है। यह विशिष्ट रेगिस्तानी दृश्य नहीं अपितु यह दृश्य है – कृषि महाविद्यालय फतेहपुर–शेखावाटी के फार्म का, जहाँ कृषि राजस्थान के कठोर परिदृश्य को चुनौती देती है और इसे एक अद्वितीय कृषि–पर्यटन स्थल बनाती है जो लचीलेपन और नवीनता की कहानी कहती है।

फतेहपुर–शेखावाटी एवं कृषि महाविद्यालय का अनोखा कृषि कैनवास

राजस्थान के अर्ध–शुष्क क्षेत्र में बसा फतेहपुर–शेखावाटी, कृषि अनुकूलनशीलता में एक आकर्षक अध्ययन प्रस्तुत करता है। क्षेत्र के असमान परिदृश्य – रेतीली मिट्टी और बिखरी चट्टानों ने किसानों को पीढ़ियों से खेती के सरल तरीके विकसित करने के लिए मजबूर किया है। कुंड और बावड़ी जैसी पारंपरिक जल संचयन संरचनाएं पूरे परिदृश्य में फैली हुई हैं, जो कृषि जीवन रेखा और पर्यटक आकर्षण दोनों के रूप में काम करती हैं।

पर्यटन में एक नया अध्याय

फतेहपुर–शेखावाटी को कृषि–पर्यटन स्थल में बदलना एक जमीनी स्तर के आंदोलन के रूप में शुरू हुआ। आर्थिक दबावों का सामना कर रहे स्थानीय कृषि समुदायों ने बाहरी लोगों के लिए अपनी कृषि पद्धतियों की अनूठी अपील को पहचाना। आज, यह क्षेत्र आगंतुकों को पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक टिकाऊ प्रथाओं के साथ जोड़कर रेगिस्तानी कृषि का एक व्यापक अनुभव प्रदान करता है।

अनोखी पेशकश

बीड़ क्षेत्र में स्थित, कृषि महाविद्यालय, फतेहपुर–शेखावाटी के फार्म बनाया गया यह छायादार स्थल एक महत्वपूर्ण बैठक स्थल के रूप में कार्य करता है। यह संरचना कृषि संबंधी चर्चाओं और परामर्श के लिए विशेष रूप से डिजाइन की गई है।

इस स्थल की मुख्य विशेषताओं में एक स्थायी मेज है, जो केंद्र में स्थित है। इसके चारों ओर बैठने की व्यवस्था की गई है, जिसमें स्थायी और पोर्टेबल दोनों प्रकार की कुर्सियां शामिल हैं। छत को सहारा देने वाले खंभे गर्मी के मौसम में छाया प्रदान करते हैं। यह स्थल ऊंचाई पर स्थित है, जहां से आसपास के कृषि क्षेत्रों का विहंगम दृश्य दिखाई देता है।

यह संरचना कृषि अधिकारियों, शोधकर्ताओं और किसानों के बीच विचार–विमर्श के लिए एक आदर्श स्थान है। खुले वातावरण में बनी यह संरचना सीधे खेतों से जुड़ी हुई है, जो कृषि संबंधी चर्चाओं के लिए एक प्राकृतिक माहौल प्रदान करती है।

स्थायी निर्माण सामग्री का उपयोग, जैसे कंक्रीट की मेज और स्थायी बैठक व्यवस्था, इस बात का संकेत है कि यह दीर्घकालिक उपयोग के लिए बनाया गया है। ऊंचाई पर स्थित होने के कारण यहां से खेतों की निगरानी और फसल प्रबंधन की रणनीतियों पर चर्चा करना सुविधाजनक होता है।

फतेहपुर–शेखावाटी में कृषि–पर्यटनः

- पारंपरिक रेगिस्तानी खेती तकनीकों में भागीदारी
- प्राचीन जल संरक्षण प्रणालियों की खोज
- स्थानीय फसलों और उनके प्रसंस्करण का व्यावहारिक अनुभव
- पर्यटन के लिए अनुकूलित पारंपरिक फार्महाउस
- कृषि उत्सवों और स्थानीय व्यंजनों के माध्यम से सांस्कृतिक विसर्जन

चुनौतियाँ और अनुकूलन

असमान परिदृश्य जो फतेहपुर–शेखावाटी को अद्वितीय बनाता है, कृषि–पर्यटन विकास के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करता है। सीमित जल संसाधनों और अत्यधिक तापमान के कारण सावधानीपूर्वक योजना और संसाधन प्रबंधन की आवश्यकता होती है। हालाँकि, स्थानीय समुदायों ने इन चुनौतियों को शिक्षा और नवाचार के अवसरों में बदल दिया है।

सांस्कृतिक संगम

फतेहपुर–शेखावाटी की कृषि विरासत इसकी सांस्कृतिक पहचान के साथ गहराई से जुड़ी हुई है। क्षेत्र की प्रसिद्ध हवेलियाँ, जो कभी धनी व्यापारियों का घर हुआ करती थीं, अब कृषि प्रदर्शनों और कृषि कार्यशालाओं की पृष्ठभूमि के रूप में काम करती हैं। फसल उत्सवों के दौरान, पर्यटक पारंपरिक समारोहों में भाग ले सकते हैं जो कृषि प्रथाओं को स्थानीय रीति–रिवाजों के साथ मिश्रित करते हैं।

महाविद्यालय में राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों से आने वाले विद्यार्थियों का समागम एक समृद्ध शैक्षणिक वातावरण का निर्माण करता है। यह विविधता राज्य की सांस्कृतिक विरासत को प्रतिबिंबित करती है, जहां शेखावाटी, मारवाड़, मेवाड़, हाड़ौती और अन्य क्षेत्रों के छात्र एक साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं।

इस विविधता का शैक्षणिक महत्व अत्यंत गहरा है। विभिन्न क्षेत्रों के विद्यार्थी अपने साथ स्थानीय ज्ञान, परंपराएं और नवीन दृष्टिकोण लेकर आते हैं। राजस्थानी की विभिन्न बोलियों का आदान–प्रदान भाषाई समृद्धि को बढ़ाता है। जैसलमेर जैसे शुष्क क्षेत्रों और उदयपुर जैसे हरे–भरे क्षेत्रों के छात्रों के बीच कृषि संबंधी ज्ञान का आदान–प्रदान विशेष महत्व रखता है।

महाविद्यालय का सामाजिक वातावरण इस क्षेत्रीय विविधता से समृद्ध होता है। विभिन्न क्षेत्रीय त्योहारों, रीति–रिवाजों और परंपराओं का साझा उत्सव आपसी समझ और सम्मान को बढ़ावा देता है। पारंपरिक वेशभूषा, क्षेत्रीय व्यंजन और स्थानीय कला रूप सांस्कृतिक आदान–प्रदान के माध्यम बनते हैं।

व्यावसायिक विकास की दृष्टि से भी यह विविधता महत्वपूर्ण है। छात्र पूरे राज्य में फैला एक नेटवर्क विकसित करते हैं, जो उनके भविष्य के करियर में मूल्यवान साबित होता है। वे विभिन्न क्षेत्रों के व्यावसायिक अभ्यासों, कृषि तकनीकों और औद्योगिक ज्ञान से परिचित होते हैं।

शैक्षणिक संस्थान सांस्कृतिक कार्यक्रमों, क्षेत्रीय खाद्य महोत्सवों और शैक्षणिक परियोजनाओं के माध्यम से इस क्षेत्रीय एकीकरण को सक्रिय रूप से बढ़ावा देते हैं। यह दृष्टिकोण छात्रों को एक अधिक परस्पर जुड़े विश्व के लिए तैयार करता है, जबकि उनकी क्षेत्रीय जड़ों से जुड़ाव भी बना रहता है।

जैसे–जैसे पर्यटन को वैश्विक प्रमुखता मिल रही है, फतेहपुर–शेखावाटी का रेगिस्तानी कृषि–पर्यटन आशाजनक क्षमता रखता है।

विरासत का संरक्षण, भविष्य को अपनाना

फतेहपुर–शेखावाटी में कृषि–पर्यटन की सफलता दर्शाती है कि कैसे चुनौतीपूर्ण परिदृश्य अद्वितीय संपत्ति बन सकते हैं। चूँकि जलवायु परिवर्तन पारंपरिक कृषि ज्ञान को अधिक मूल्यवान बनाता है, इस क्षेत्र का अनुभव लचीलापन और अनुकूलन में महत्वपूर्ण सबक प्रदान करता है।

असमान परिदृश्य, जो एक समय एक सीमा प्रतीत होता था, इस क्षेत्र का सबसे मजबूत विक्रय बिंदु बन गया है। प्रत्येक उतार–चढ़ाव कृषि नवाचार की एक कहानी बताता है, प्रत्येक पारंपरिक अभ्यास टिकाऊ खेती में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, और प्रत्येक आगंतुक रेगिस्तानी कृषि की गहरी सराहना के साथ जाता है।

यह समझने के लिए कि कैसे पारंपरिक कृषि पद्धतियां सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करते हुए आधुनिक समय के अनुकूल हो सकती हैं – फतेहपुर–शेखावाटी न केवल एक गंतव्य बल्कि एक प्रेरणा प्रदान करता है। राजस्थान के इस कोने में, कृषि और पर्यटन का भविष्य एक असमान कैनवास पर लिखा जा रहा है, जो टिकाऊ विकास की एक तस्वीर बना रहा है जो परंपरा और नवाचार दोनों का सम्मान करता है।

कृषि अनुसंधान और नवाचार को समर्थन देने में डिजिटल पुस्तकालयों की भूमिका

राजेश ऐचरा एवं तगाराम चौधरी

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

कृषि हमेशा से वैश्विक आर्थिक विकास और खाद्य सुरक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। जलवायु परिवर्तन, खाद्य संकट और टिकाऊ प्रथाओं की आवश्यकता के बढ़ते चुनौतीपूर्ण माहौल में, कृषि अनुसंधान और नवाचार पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। इस संदर्भ में, डिजिटल पुस्तकालय कृषि अनुसंधान और नवाचार को बढ़ावा देने में अहम भूमिका निभाते हैं। ये आधुनिक सूचना प्रणालियाँ विशाल मात्रा में ज्ञान तक त्वरित पहुंच प्रदान करती हैं, जो शोधकर्ताओं, किसानों और कृषि नीति निर्माताओं के बीच एक सेतु का कार्य करती हैं। इस लेख में यह बताया गया है कि डिजिटल पुस्तकालय कृषि अनुसंधान को कैसे समर्थन देते हैं, नवाचार को बढ़ावा देते हैं और टिकाऊ कृषि प्रथाओं के विकास में योगदान करते हैं।

डिजिटल पुस्तकालय क्या है

डिजिटल पुस्तकालय ऑनलाइन रिपॉजिटरी होते हैं, जो पुस्तकों, पत्रिकाओं, लेखों, डेटाबेस, रिपोर्टों और मल्टीमीडिया संसाधनों का डिजिटल संग्रह प्रदान करते हैं। पारंपरिक पुस्तकालयों के विपरीत, डिजिटल पुस्तकालय भौतिक स्थान की आवश्यकता को समाप्त करते हैं और जानकारी तक त्वरित और वैश्विक पहुंच प्रदान करते हैं। कृषि में डिजिटल पुस्तकालयों में शोध पत्र, कृषि डेटाबेस और नीति दस्तावेजों का विशाल संग्रह होता है, जो उपयोगकर्ताओं को कृषि क्षेत्र में नवीनतम प्रवृत्तियों, प्रौद्योगिकियों और पद्धतियों के साथ अद्यतित रखने में मदद करता है।

कृषि अनुसंधान को समर्थन देना

1. अपडेटेड अनुसंधान और डेटा तक पहुंच

कृषि अनुसंधान डेटा, केस स्टडी और कृषि प्रथाओं, मौसम पैटर्न और फसल उत्पादकता का निरंतर विश्लेषण करने पर आधारित होता है। डिजिटल पुस्तकालय शोधकर्ताओं को अद्यतन अनुसंधान निष्कर्षों, ऐतिहासिक डेटा और महत्वपूर्ण कृषि सांख्यिकीय जानकारी तक पहुँचने का अवसर प्रदान करते हैं। विकासशील क्षेत्रों में शोधकर्ताओं को पारंपरिक अनुसंधान संसाधनों तक सीमित पहुंच हो सकती है, लेकिन अब वे AGRIS (कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी संकेतक) और FAO के डिजिटल कृषि पुस्तकालय जैसे ऑनलाइन डेटाबेस से एक विशाल जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

डिजिटल पुस्तकालय वैश्विक कृषि ज्ञान तक पहुँच प्रदान करके संस्थानों, विश्वविद्यालयों और शोध केंद्रों के बीच सहयोग को बढ़ावा देते हैं। इस प्रकार अनुसंधान जल्दी से सिद्धांत से व्यावहारिक रूप में बदल सकता है, क्योंकि शोधकर्ता दुनिया भर से प्रकाशित कागजात, नई पद्धतियों और प्रयोगात्मक परिणामों तक त्वरित पहुंच प्राप्त कर सकते हैं।

2. अंतरविषयक ज्ञान साझा करना

कृषि एक अंतरविषयक क्षेत्र है, जिसमें जीवविज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, अर्थशास्त्र और प्रौद्योगिकी जैसी कई शाखाएँ शामिल हैं। डिजिटल पुस्तकालय प्लेटफॉर्म के रूप में कार्य करते हैं, जहाँ विभिन्न क्षेत्रों के शोधकर्ता अपने ज्ञान और निष्कर्षों को साझा कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, मृदा स्वास्थ्य पर शोध करने वाले शोधकर्ता मृदा प्रबंधन के लिए कृषि इंजीनियरिंग तकनीकों तक पहुँच सकते हैं, या जैव प्रौद्योगिकीविद् जो आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों पर काम कर रहे हैं, वे अपने नवाचारों के पर्यावरणीय प्रभावों का अध्ययन कर सकते हैं।

डिजिटल पुस्तकालयों के माध्यम से, शोधकर्ता विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञों के साथ सहयोग कर सकते हैं, जिससे कृषि प्रथाओं में प्रगति के लिए संभावित रूप से महत्वपूर्ण सहयोग उत्पन्न हो सकता है।

कृषि में नवाचार को बढ़ावा देना

1. नवीनतम प्रौद्योगिकियों और प्रथाओं तक पहुंच बढ़ाना

जैसे–जैसे कृषि क्षेत्र को नए–नए चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, वैसे–वैसे नवीन समाधान की आवश्यकता होती है। डिजिटल पुस्तकालयों में कृषि में सटीक खेती, ड्रोन प्रौद्योगिकी, कृषि में IoT और आनुवंशिक इंजीनियरिंग जैसी अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियों से संबंधित जानकारी का खजाना होता है। इन नवाचारों को प्रभावी और टिकाऊ तरीके से लागू करने के लिए ज्ञान का आदान–प्रदान आवश्यक है।

डिजिटल पुस्तकालय इन जानकारी को शोधकर्ताओं, किसानों और कृषि इंजीनियरों के लिए उपलब्ध करवा कर एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। मल्टीमीडिया सामग्री जैसे ट्यूटोरियल, वीडियो और वेबिनार की मदद से डिजिटल पुस्तकालय नवाचारशील खेती की तकनीकों और प्रौद्योगिकियों के प्रचार को बढ़ावा देते हैं, जिन्हें क्षेत्र स्तर पर लागू किया जा सकता है।

2. ओपन एक्सेस ज्ञान साझा करना

ओपन एक्सेस डिजिटल पुस्तकालय कृषि ज्ञान का लोकतंत्रीकरण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कई पारंपरिक कृषि पत्रिकाएँ और अनुसंधान पत्र पेड वॉल्स के पीछे होते हैं, जिससे किसानों और शोधकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण जानकारी तक पहुंच मुश्किल हो जाती है। डिजिटल पुस्तकालय, जैसे CGSpace रिपॉजिटरी, आर्थिक अनुसंधान और कृषि विकास से संबंधित खुले तौर पर अनुसंधान सामग्री प्रदान करते हैं, जिससे इंटरनेट कनेक्शन वाले किसी भी व्यक्ति के लिए अत्याधुनिक जानकारी उपलब्ध हो जाती है।

ओपन एक्सेस प्लेटफॉर्म भी कृषि अनुसंधान में पारदर्शिता को बढ़ावा देते हैं, जो कृषि प्रथाओं, तकनीकों और नीतियों के निरंतर सुधार के लिए आवश्यक है। इस प्रकार, ये पुस्तकालय इन नवाचारों को सार्वजनिक डोमेन में लाने में मदद करते हैं, जिससे किसान सीधे लाभान्वित हो सकते हैं।

कृषि शिक्षा और विस्तार सेवाओं को बढ़ावा देना

1. किसानों के लिए प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण : डिजिटल पुस्तकालय केवल अनुसंधान का समर्थन नहीं करते, बल्कि किसानों और कृषि पेशेवरों की शिक्षा में भी योगदान करते हैं। कृषि विस्तार सेवाएँ डिजिटल पुस्तकालयों का उपयोग करके विस्तारण कर्मचारियों को संबंधित अनुसंधान सामग्री और सर्वोत्तम प्रथाओं तक पहुँच प्रदान करती हैं। विस्तार कार्यकर्ता कृषि में आधुनिक खेती की प्रथाओं, कीट प्रबंधन, फसल रोगों और सिंचाई तकनीकों पर किसानों को मार्गदर्शन करने के लिए ऑनलाइन कृषि पाठ्यक्रम, शोध निष्कर्ष और प्रशिक्षण सामग्री का उपयोग कर सकते हैं।

इन संसाधनों का उपयोग करके किसान सूचित निर्णय ले सकते हैं, जो फसल उत्पादकता को बढ़ाते हैं, टिकाऊपन में सुधार करते हैं, और लागत को घटाते हैं। डिजिटल पुस्तकालय किसानों को जलवायु स्मार्ट खेती, कीट प्रतिरोधी फसलें और जैविक खेती की जानकारी भी प्रदान करते हैं, जिससे वे नवीनतम और टिकाऊ प्रथाओं से अद्यतित रहते हैं।

2. कृषि नीति विकास का समर्थन : नीति निर्माताओं की भूमिका कृषि क्षेत्र में नियमों, प्रोत्साहनों और कार्यक्रमों को लागू करने में महत्वपूर्ण होती है। डिजिटल पुस्तकालय नीति निर्माताओं को कृषि अनुसंधान से संबंधित खुली पहुँच रिपोर्ट, नीति पत्र और प्रभाव अध्ययन जैसे संसाधन प्रदान करते हैं, जो नीति निर्णयों को सूचित करने में मदद करते हैं।

उदाहरण के लिए, जल प्रबंधन, भूमि उपयोग या फसल सब्सिडी से संबंधित कृषि नीतियाँ व्यापक, शोध–आधारित जानकारी से डिजाइन की जा सकती हैं। इस प्रकार, ये पुस्तकालय नीति निर्माताओं को नवीनतम अनुसंधान निष्कर्षों, प्रौद्योगिकी नवाचारों और क्षेत्रीय आवश्यकताओं से मेल खाते हुए सूचित नीति निर्णय लेने में सहायता करते हैं।

उदाहरण

1. **CGSpace :-** ***CGSpace*** एक डिजिटल रिपॉजिटरी है जो CGIAR के कृषि अनुसंधान परिणामों की मेजबानी करती है। यह कृषि और विकास से संबंधित डेटा, शोध पत्र और प्रकाशनों का विशाल संग्रह प्रदान करता है। शोधकर्ताओं, नीति निर्माताओं और कृषि विकास पेशेवरों के लिए यह एक महत्वपूर्ण संसाधन है, क्योंकि यह वैश्विक कृषि चुनौतियों पर शोध तक पहुंच प्रदान करता है।
2. **FAO का डिजिटल पुस्तकालय:-** खाद्य और कृषि संगठन (FAO) ने कृषि, खाद्य सुरक्षा और टिकाऊ खेती की प्रथाओं पर अपना ज्ञान वैश्विक स्तर पर उपलब्ध कराने के लिए एक डिजिटल पुस्तकालय विकसित किया है। इसमें कृषि नीतियाँ, रिपोर्ट्स और केस स्टडीज शामिल हैं, जो कृषि शोधकर्ताओं और किसानों के लिए अनमोल हैं।

डिजिटल पुस्तकालय कृषि अनुसंधान और नवाचार के समर्थन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शोधकर्ताओं को समय पर डेटा, अनुसंधान पत्र और तकनीकी नवाचारों तक पहुँच प्रदान करके, ये पुस्तकालय कृषि प्रौद्योगिकी और प्रथाओं के विकास और कार्यान्वयन में तेजी लाते हैं। ये शोधकर्ताओं, किसानों और नीति निर्माताओं के बीच सहयोग को बढ़ावा देते हैं, कृषि ज्ञान के अंतर को पाटने में मदद करते हैं। जैसे–जैसे कृषि को नई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे जलवायु परिवर्तन, संसाधन संकट और वैश्विक खाद्य सुरक्षा, डिजिटल पुस्तकालय कृषि अनुसंधान, नवाचार और टिकाऊ प्रथाओं के लिए एक कोने के पत्थर के रूप में कार्य करते रहेंगे।

वर्तमान परिपेक्ष्य में कृषि एवं किसानों का डिजिटल सशक्तीकरण

चरत लाल बैरवा
सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

डिजिटल कृषि एक परिचय :

डिजिटल कृषि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) और डेटा पारिस्थतिकी तंत्र है जो सभी के लिये सुरक्षित पौष्टिक तथ किफायती भोजन प्रदान करते हुए खेती को लाभदायक एवं टिकाऊ बनाने हेतू समय पर लक्षित सुचना एवं सेवाओं के विकास व वितरण का समर्थन करता है।

उदाहरण :

- कृषि जैव प्रौद्योगिकी पारंपरिक प्रजनन तकनीकों सहित उपकरणों की एक श्रृंखला है, जो उत्पादों को बनाने या संशोधित करने के लिये जीवित या जीवों के कुछ हिस्सों को बदल देती है। पौधों या जनावरों मे सुधार या विशिष्ट कृषि उपयोगों के लिये सूक्ष्मजीवों का विकास करती है।
- परिशुद्ध कृषि (Precision Agriculture-PA) के अंतर्गत सेंसर, रिमोट सेंसिंग, डीप लर्निंग और आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस तथा इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IOT) में हुए विकास को व्यवहार मे लाकर दक्षता एवं पर्यावरणीय निरंतरता का सवंर्द्धित उपयोग कर मृदा, पौधों एवं पर्यावरण की निगरानी के माध्यम से कृषि उत्पादकता बढ़ाने पर चर्चा करना है।
- डेटा मापन, मौसम निगरानी, रोबोटिक्स / ड्रोन प्रौद्योगिकी आदि के लिये डिजिटल और वायरलेस प्रौद्योगिकियॉ।

लाभ :

- कृषि उत्पादकता को बढ़ाती है।
- मृदा के क्षरण को रोकती है।
- फसल उत्पादन मे रासायनिक अनुप्रयोग को कम करती हे।
- ज्ल संसाधनों का कुशल उपयोग।
- गुणवत्ता, मात्रा और उत्पादन की कम लागत के लिये आधुनिक कृषि पद्धतियों का प्रसार करती है।
- किसानों की सामाजिक–अर्थिक स्थिति में बदलाव लाती है।

चुनौतियाँ

उच्च पूंजी लागत : यह किसानों को खेती के डिजिटल तरीकों को अपनाने के लिए हतोत्साहित करती है।

- छोटी जोत : भारतीय खेत आकार में बहुत छोटे होते हैं और 1–2 एकड़ खेत के भूंखड काफी आम है। साथ ही भारत में कृषि भूमि को पट्टे पर देना भी व्यापक रूप से प्रचलित है।
- भूमि किराए पर लेने और साझा करने की प्रथाएँ : सीमित वित्तीय संसाधनों और छोटे खेत के भूंखडों के कारण ट्रेक्ट्रर, हार्वेस्टर आदि जैसे उपकरण और मशीनरी हेतू एकमुश्त खरीद के बजाय भूमि को किराए पर देना और साझा करना काफी आम है।
- ग्रामीण क्षेत्र में निरक्षरता : बुनियादी कंप्यूटर साक्षरता की कमी ई–कृषि के तीव्र विकास में एक बड़ी बाधा है।

भारत सरकार के प्रयास :

सरकार कृषि क्षेत्र में डिजिटल टेक्नोलॉजी का तेजी से समावेश कर रही है और किसानों को डिजिटल सशक्त बनाने, उनकी आउटरीच बढ़ाने अैर सेवाओं की डिलीवरी मे तेजी लाने पर पूरी सक्रियता से कार्य कर रही है। 'डिजिटल कृषि' की अवधारणा भारत में तेजी से आती जा रही है तथा इससे कार्यकुशलता बढ़ाने, उत्पादकता सुधारने और कृषि में स्थायित्व सुनिश्चित करने में सफलता मिलेगी। इस पर और बल देने के लिए वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण मे कहा, ''प्रायोगिक परियोजना की सफलता से प्रेरित होकर हमारी सरकार राज्यों की भागीदारी से कृषि में डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर लागू करेगी।'' इस वर्ष के दौरान चालू खरीफ मौसम मे डीपीआई की मदद से 400 जिलों में डिजिटल फसल सर्वे कराया जाएगा। साथ ही, देशीभर में किसान भूमि रजिस्ट्रयों में शामिल कर लिया जाएगा। पिछले वर्ष केन्द्र सरकार ने राज्यों से कहा था कि केन्द्रशासित प्रदेशों से फसलों की गिरदावरी को ऑटोमेटिक या डिजिटल प्रक्रिया के तहत लाने का कार्य भी डिजिटल फसल सर्वे अपनाकर किया सकता है। 12 राज्यों के लिए एक प्रायोगिक परियोजना भी सफलतापूर्वक तैयार की गई है।

सरकार ने खुले संसाधन, खुले मानक और आपस में अदल–बदलकर काम करने योग्य डीपाआई विकसित करने का संकल्प व्यक्त किया है। इस बहुआयामी व्यवस्था में कृषि से जुडें विविध पहलुओं के समग्र और किसान–केन्द्रित समाधान खोजने की दृष्टि से संबद्ध जानकारी ली जा सकेगी। कृषि की डीपीआई के मुख्य रूप से तीन अंग हैं, कृषि स्टैक, कृषि–डीएसएस और कृषि मैपर (केएम)। एग्रीस्टैक की तीन मूल रजिस्ट्रियां होती हैं जिन्हें डाटाबेस कहते है। और इनमें किसानों, गांवों के नक्शें अैर खेतों में उगी फसलों को दर्ज किया जाता है। इसकी मदद से प्रशासन को किसानों की आईडी तक पहुंचने, कृषि प्लॉटों की जियों टैगिंग करने और उगाई गई फसल का डिजिटल का फॉर्मेट में डाटा प्राप्त हो सकता है। कृषि निर्णय समर्थन प्रणाली डाटा के समन्वयन और भंडारण के लिए विकसित की जाती है, जैसे – रिमोट सेंसिंग डाटा, मौसम का डाटा, मिट्टी का डाटा इत्यादि। इसमें कृषि और किसानों के कल्याण से जुड़ी सरकारी योजनाओं के आंकडें भी स्टोर किए जाते है। और इन योजनाओं के लाभार्थियों के डाटा भी रखे जाते है। केएम जियो–स्पैशियल (भू–स्थानिक) मोबाईल एप्लीकेशन है जो जमीन से संबद्ध सभी योजनाओं के लिए प्रयोग होती है। और मिट्ट की सेहत से जुड़े हस्तक्षेपों की उपयुक्तता आंकने के लिए व्यापक मृदा उर्वरता और प्रोफाइल मैपिंग के काम आती ह। केएम रैंडमली (यूं ही अचानक कोई भी) चुने गए प्लॉटों पर फसल कटाई परीक्षणों से फसल उत्पादन का सही और सटीक माप करने के सर्वे का डिजिटल उपकरण है। भारत में डिजिटल कृषि के विकास में सहायता के लिए मजबूत इकोसिस्टम मौजूद है जिसे 1,000 से ज्यादा एग्रीटेक स्टार्टअप्स का समर्थन मिला हुआ है जिनमें महिलाओं के नेतृत्व वाले स्टार्टअप भी शामिल है। कृषि में डिजिटल व्यवस्था बहुत तेजी से समाविष्ट होती जा रही है।

भारत में कृषि शिक्षा : वर्तमान स्थिति और भविष्य की संभावनाएँ

बी. एल. ढाका[1] एवं शीशराम ढाका[2]

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, सवाई माधोपुर, [2]निदेशक प्रसार शिक्षा, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

भारत में कृषि शिक्षा

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। कृषि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को कृषि के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान प्रदान करना है, जिससे वे आधुनिक तकनीकों का उपयोग कर इस क्षेत्र को विकसित कर सकें। भारत में कृषि शिक्षा का इतिहास प्राचीन काल से जुड़ा है। ऋग्वेद, महाभारत आदि में कृषि और उसकी तकनीकों का उल्लेख मिलता है। प्रारंभिक काल में यह ज्ञान पारंपरिक रूप से हस्तांतरित होता था। ब्रिटिश शासन के दौरान कृषि शिक्षा को औपचारिक रूप दिया गया।

भारत की स्वतंत्रता के बाद, कृषि शिक्षा को एक संगठित और व्यवस्थित रूप में आगे बढ़ाने के लिए कई कदम उठाए गए। भारतीय कृषि के विकास के लिए औपचारिक शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता महसूस की गई और इसी संदर्भ में कृषि विश्वविद्यालयों और संस्थानों का गठन किया गया।

महत्वपूर्ण घटनाएँ और सुधार

- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ICAR की स्थापना 1966 में की गई, जिसका उद्देश्य कृषि क्षेत्र में अनुसंधान और शिक्षा को बढ़ावा देना था। ICAR ने भारतीय कृषि संस्थानों में उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा और शोध कार्य को बढ़ावा दियज्ञं
- 1960 के दशक में पंजाब कृषि विश्वविद्यालय (PAU), भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) जैसे महत्वपूर्ण संस्थान स्थापित किए गए। इन विश्वविद्यालयों ने कृषि शिक्षा को एक ठोस ढांचा प्रदान किया और कृषि शिक्षा के क्षेत्र में कई पहलें शुरू कीं।
- राष्ट्रीय कृषि नीति (National Agricultural Policy) के तहत, भारत सरकार ने कृषि के क्षेत्र में सुधार करने के लिए कई योजनाओं की शुरुआत की, जिसमें कृषि शिक्षा को भी प्राथमिकता दी गई।

आधुनिक कृषि शिक्षा

आज कृषि शिक्षा में तकनीकी नवाचारों का समावेश हो रहा है। स्मार्ट कृषि, ड्रोन तकनीक, जैविक खेती, जलवायु–स्मार्ट कृषि जैसी नई विधियाँ अपनाई जा रही हैं। यह शिक्षा अब खाद्य प्रसंस्करण, पशुपालन, मत्स्य पालन और कृषि व्यवसाय प्रबंधन तक विस्तृत हो चुकी है। डिजिटल शिक्षा, ऑनलाइन पाठ्यक्रम और दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से इसे और व्यापक बनाया जा रहा है। भारत में कृषि विश्वविद्यालयों और कॉलेजों की संख्या बढ़ रही है। प्रमुख संस्थानों में (ICAR- IARI) पंजाब कृषि विश्वविद्यालय आदि शामिल हैं। कृषि शिक्षा में कौशल विकास, व्यावसायिक प्रशिक्षण और महिलाओं को सशक्त बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

कृषि शिक्षा में चुनौतियाँ

हालाँकि, कृषि शिक्षा में कई चुनौतियाँ भी हैं। शिक्षकों की कमी ग्रामीण क्षेत्रों तक उच्च गुणवत्ता वाली कृषि शिक्षा की सीमित पहुँच, संस्थानों और उद्योगों के बीच समन्वय की कमी, अपर्याप्त सुविधाएँ और बुनियादी ढाँचा, नौकरी के अवसरों की कमी, आर्थिक और वित्तीय बाधाएँ, और महिला सशक्तिकरण की कमी जैसी समस्याएँ इस क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता दर्शाती हैं। शिक्षकों की कमी के कारण विशेषज्ञ प्रशिक्षकों की संख्या सीमित है। उच्च शिक्षा शुल्क और सरकारी सहायता के अभाव के कारण कई छात्र कृषि शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। महिलाओं के लिए कृषि शिक्षा में समान अवसरों की कमी।

कृषि शिक्षा का भविष्य

भविष्य में कृषि शिक्षा को अधिक व्यावसायिक दृष्टिकोण से देखा जाएगा। इसे केवल खेती तक सीमित न रखकर कृषि व्यापार, विपणन, और प्रबंधन से जोड़ा जाएगा। तकनीकी नवाचारों में ड्रोन, स्मार्ट सिंचाई, AI और IoT जैसी तकनीकों का समावेश बढ़ेगा। सतत कृषि को बढ़ावा देने के लिए जैविक खेती, मिश्रित खेती और जलवायु–स्मार्ट कृषि पर ध्यान दिया जाएगा। कृषि शिक्षा में स्टार्टअप्स, मार्केटिंग और कृषि उपकरण निर्माण को भी महत्व दिया जाएगा। अंतरराष्ट्रीय कृषि अनुसंधान और नवीन तकनीकों को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाएगा। महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए विशेष प्रशिक्षण और पाठ्यक्रम विकसित किए जाएँगे। सरकार और निजी कंपनियाँ मिलकर कृषि शिक्षा को आधुनिक बनाने के प्रयास करेंगी।

कृषि शिक्षा में सुधार से भारत के कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव आ सकते हैं। सरकार, उद्योग और शिक्षण संस्थानों को मिलकर कार्य करना होगा, ताकि कृषि शिक्षा को आधुनिक और प्रभावी बनाया जा सके। इससे न केवल कृषि उत्पादकता बढ़ेगी, बल्कि युवाओं के लिए नए रोजगार और व्यावसायिक अवसर भी खुलेंगे।

खिलाड़ी की कार्यक्षमता को प्रभावित करने में पर्यावरण की भूमिका

नरेंद्र
सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

खेलों की दुनिया में सफलता पाने के लिए खिलाड़ी का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। खिलाड़ी की कार्यक्षमता का निर्धारण उसके शारीरिक शक्ति, मानसिक स्थिति, और पर्यावरणीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है। पर्यावरण शब्द के अंतर्गत न केवल बाहरी जलवायु और स्थान की स्थिति आती है, बल्कि खिलाड़ी का मानसिक और सामाजिक परिवेश भी शामिल है। इस लेख में हम इस पर चर्चा करेंगे कि किस प्रकार एक खिलाड़ी का पर्यावरण उसकी कार्यक्षमता को प्रभावित करता है, और इसे कैसे बेहतर किया जा सकता है।

1. शारीरिक पर्यावरण और खिलाड़ी की कार्यक्षमता

शारीरिक पर्यावरण का प्रभाव खिलाड़ी के प्रदर्शन पर सीधा और स्पष्ट होता है। यहां हम मौसम, स्थलाकृतिक स्थितियां, वायुमंडलीय दबाव, और वायु गुणवत्ता जैसी चीजों पर ध्यान देंगे।

- **मौसम और तापमान** : हर खिलाड़ी की कार्यक्षमता का बहुत कुछ मौसम और तापमान पर निर्भर करता है। अत्यधिक गर्मी में खेलना जैसे कि क्रिकेट या फुटबॉल, खिलाड़ी को जल्दी थका सकता है, जिससे उसकी कार्यक्षमता में कमी आ सकती है। इसी तरह, अत्यधिक ठंडे मौसम में खेलते समय मांसपेशियों में अकड़न आ सकती है, जो खिलाड़ियों के लिए नुकसानदायक हो सकती है। उदाहरण के लिए, बर्फीली सतहों पर स्कीइंग या शीतकालीन खेलों में यह समस्या ज्यादा देखने को मिलती है।
- **वायु गुणवत्ता** : वायु प्रदूषण भी एक महत्वपूर्ण कारक है। जिस क्षेत्र में प्रदूषण अधिक होता है, वहां खिलाड़ियों को अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है, जिससे थकान और सांस लेने में कठिनाई हो सकती है। उच्च प्रदूषण वाले इलाकों में खेलों का आयोजन खिलाड़ियों के स्वास्थ्य पर दीर्घकालिक प्रभाव डाल सकता है, जिससे उनके प्रदर्शन में गिरावट आ सकती है।
- **वायुमंडलीय दबाव और ऊंचाई** : कुछ खेलों में जैसे कि एथलेटिक्स या माउंटेन क्लाइम्बिंग, ऊंचाई पर स्थित वातावरण का भी प्रभाव होता है। ऊंचाई पर ऑक्सीजन की कमी के कारण शारीरिक क्षमता में गिरावट आ सकती है। यह खिलाड़ियों की सहनशक्ति, ताकत और एकाग्रता को प्रभावित करता है।

2. मानसिक पर्यावरण और खिलाड़ी की कार्यक्षमता

किसी भी खिलाड़ी के लिए मानसिक स्थिति भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है, जितना कि शारीरिक स्थिति। मानसिक तनाव, चिंता, आत्मविश्वास, और ध्यान का स्तर सीधे खेल प्रदर्शन को प्रभावित करते हैं।

- **मानसिक तनाव और दबाव** : खेलों में प्रतिस्पर्धा और दबाव खिलाड़ियों को मानसिक रूप से थका सकते हैं। जब किसी खिलाड़ी पर बहुत अधिक मानसिक दबाव होता है, तो वह अपनी क्षमताओं का पूरी तरह से उपयोग नहीं कर पाता। उदाहरण के लिए, एक खिलाड़ी अगर ओलंपिक के फाइनल में खेल रहा हो, तो उस पर मानसिक दबाव बढ़ जाता है, जिससे उसकी कार्यक्षमता प्रभावित हो सकती है।
- **आत्मविश्वास और मानसिक शक्ति** : आत्मविश्वास का स्तर भी बहुत मायने रखता है। यदि खिलाड़ी को यह विश्वास है कि वह किसी चुनौती को पार कर सकता है, तो वह मानसिक रूप से स्थिर रहता है और अपने खेल में बेहतरीन प्रदर्शन करता है। इसके विपरीत, यदि खिलाड़ी मानसिक रूप से कमजोर महसूस करता है, तो उसके प्रदर्शन में गिरावट आ सकती है।
- **मनोबल और प्रेरणा** : खेलों में मानसिक रूप से मजबूत रहना बेहद जरूरी होता है। किसी भी टीम को जितने के लिए सिर्फ शारीरिक शक्ति ही नहीं, बल्कि मनोबल भी महत्वपूर्ण होता है। एक सकारात्मक मानसिक वातावरण, जहां कोच और साथी खिलाड़ी खिलाड़ी को प्रेरित करते हैं, उसकी कार्यक्षमता को बढ़ा सकता है।

3. सामाजिक पर्यावरण और खिलाड़ी की कार्यक्षमता

सामाजिक पर्यावरण का भी खिलाड़ी की कार्यक्षमता पर गहरा असर पड़ता है। इसका मतलब है कि खिलाड़ी का अपने परिवार, मित्रों, सहकर्मियों और कोच के साथ का संबंध।

- **टीमवर्क और सामूहिक सहयोग** : खेलों में टीमवर्क और सामूहिक सहयोग की आवश्यकता होती है। यदि खिलाड़ी को अपनी टीम और कोच से पर्याप्त समर्थन मिलता है, तो वह अपनी क्षमता के अनुरूप प्रदर्शन कर सकता है। उदाहरण के लिए, एक फुटबॉल टीम में प्रत्येक खिलाड़ी का योगदान महत्वपूर्ण होता है, और जब सभी खिलाड़ी एक–दूसरे के सहयोग से खेलते हैं, तो टीम का प्रदर्शन बेहतर होता है।
- **समाज और परिवार का दबाव** : समाज और परिवार की अपेक्षाएं भी मानसिक दबाव उत्पन्न कर सकती हैं। कभी–कभी समाज खिलाड़ियों से असाधारण प्रदर्शन की उम्मीद करता है, जो उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है। यदि खिलाड़ी अपने परिवार और समाज से समर्थन महसूस करते हैं, तो वह मानसिक रूप से स्थिर रह सकता है, जिससे उसके प्रदर्शन में सुधार हो सकता है।

4. आहार और पोषण : पर्यावरण का अहम हिस्सा

खिलाड़ियों को सही पोषण की आवश्यकता होती है, ताकि वे शारीरिक और मानसिक रूप से मजबूत रहें। एक अच्छा आहार न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को बनाए रखता है, बल्कि मानसिक स्थिति को भी प्रबल करता है।

- **संतुलित आहार** : खिलाड़ियों को प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स, विटामिन, मिनरल्स, और पानी की सही मात्रा की आवश्यकता होती है। सही पोषण से मांसपेशियों की मरम्मत होती है, ऊर्जा मिलती है और खेल के दौरान सहनशक्ति बनी रहती है। इसके अलावा, पोषण से शरीर में सही तरह से हाइड्रेशन बनी रहती है, जो खिलाड़ियों के मानसिक और शारीरिक प्रदर्शन को बेहतर बनाए रखता है।

5. पर्यावरणीय अन्य पहलू और मानसिक स्वास्थ्य

खिलाड़ी का मानसिक स्वास्थ्य, उसकी कार्यक्षमता को प्रभावित करता है। खेल के दौरान उन्हें अपनी व्यक्तिगत समस्याओं से ध्यान हटाकर खेल पर ध्यान केंद्रित करना होता है। जब खिलाड़ी को अपने व्यक्तिगत जीवन में संतुलन मिलता है, तो वह मानसिक रूप से स्थिर रहता है और बेहतर प्रदर्शन करता है।

- मानसिक शांति : एक खिलाड़ी का मानसिक शांति बनाए रखना अत्यंत आवश्यक होता है। यदि उसे खेल के दौरान मनोवैज्ञानिक तनाव, चिंता, या निराशा का सामना करना पड़ता है, तो उसके खेल की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है।

किसी भी खिलाड़ी की कार्यक्षमता उसके पर्यावरण से प्रभावित होती है, चाहे वह शारीरिक, मानसिक, या सामाजिक पर्यावरण हो। इन सभी कारकों का खिलाड़ी के खेल पर गहरा प्रभाव पड़ता है। एक खिलाड़ी को अपनी कार्यक्षमता में सुधार लाने के लिए एक सकारात्मक और अनुकूल पर्यावरण की आवश्यकता होती है, जिसमें शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्थिरता, और सामाजिक समर्थन शामिल हों। इसलिए, खेलों में सफलता पाने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें खेल के सभी पहलुओं पर ध्यान दिया जाए, ताकि खिलाड़ी अपनी पूरी क्षमता का उपयोग कर सके।

प्रसार शिक्षा निदेशालय

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर